ओ३म्

सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड को भाण्डाफोड़

भाण्डाफोड़ लेखक :

धर्मगुरू पं० रतिराम आर्य

श्रीमान् जी,

पुस्तक प्राप्ति की सूचना शीघ्रातिशीघ्र भेजने के साथ बड़े बड़े आर्य विद्वानों के अधिक से अधिक नाम, आर्य समाजों व गुरुकुलों के नाम पूरे पतों सहित भेजें ताकि उनको भी यह पुस्तक भेजी जा सके।

विशेष :- आप इस पुस्तक को पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधी सभाओं, परोपकारिणी सभा, आर्य पत्र-पत्रिकाओं व आर्य साहित्य प्रकाशकों आदि को लिखकर इस आशय को विस्तृत करने का कष्ट करें ताकि महर्षि दयानन्द के वैदिक मिशन को बचाया जा सके।



ओ३म् !

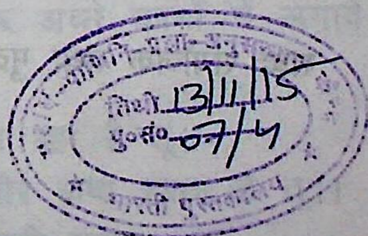
सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड का भाण्डाफोड़

भाण्डाफोड़ लेखक :

धर्मगुरु पं॰ रतिराम आर्य
3321, अरबन इस्टेट
जीन्द (हरयाणा)

प्रकाशक :– वैदिक धर्म सभा, 3321 अरबन इस्टेट,
जीन्द (हरयाणा)

संस्करण – प्रथम 3000 प्रतियाँ



आगामी संस्करण छपवाने के लिए

सहायता राशि 50/– रुपये

सन् 2004 ई॰

पुस्तक मिलने का पता :
कार्यालय, वैदिक धर्म सभा
म॰न॰ 3321 'सी' ब्लाक
अरबन इस्टेट, जीन्द (हरयाणा)
दूरभाष – 01681–246421

शब्द संयोजक तथा मुद्रक :
जगमोहन प्रिन्टर्ज
आर्य समाज रोड़,
आशरी गेट, जीन्द (हरि॰)
01681-252729

गायत्री मन्त्र

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं।
भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।।

शब्दार्थ :–

ओ३म्	=	रक्षक
भूः	=	प्राणाधार
भुवः	=	दुःखनाशक
स्वः	=	सुखदाता
तत्	=	वह परमात्मा
सवितुः	=	उत्पन्नकर्त्ता (माता–पिता)
वरेण्यम्	=	स्वीकार करने योग्य (सर्वश्रेष्ठ)
भर्गः	=	निष्पापकर्त्ता
देवस्य	=	परमात्मा देव का
धीमहि	=	ध्यान करते हैं
धियः	=	बुद्धियों को
यः	=	जो परमात्मा
नः	=	हमारी
प्रचोदयात्	=	प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में लगावे।

भावार्थ :–

तूने हमें उत्पन्न किया, पालन कर रहा है तू।
तुझसे ही पाते प्राण हम, दुःख और कष्ट हरता है तू।।
तेरा महान तेज है, छाया हुआ सभी स्थान।
सृष्टि की वस्तु–वस्तु में, तू हो रहा है विद्यमान।।
तेरा ही धरते ध्यान हम, मांगते तेरी दया।
ईश्वर हमारी बुद्धि को, श्रेष्ठ मार्ग पर चला।।

दानवीरों की सूची

11000/-	ग्यारह हजार रुपये=	श्री रमेश सिंहमार सुपुत्र श्री रतिराम, 3321, अ॰ इ॰, जीन्द।
11000/-	ग्यारह हजार रु॰ =	करुणा शास्त्री व दलबीर सिंह, आर्य सदन म॰न॰ 933, अमरदीप कालोनी, हिसार।
5100/-	इक्यावन सौ रु॰ =	श्री सदाराम कादियान, महावीर इन्क्लेव, नई दिल्ली।
5100/-	इक्यावन सौ रु॰ =	चीफ एकाऊंट अफसर श्री वेद प्रकाश सिंहमार, 3300 अ॰इ॰, जीन्द।
5100/-	इक्यावन सौ रु॰ =	श्री राम कुमार आर्य, न्यू ऋषि नगर, हिसार।
5100/-	इक्यावन सौ रु॰ =	श्री कपूर सिंह आर्य सुपुत्र श्री थाम्बू राम, ग्रा॰ गोसाईं खेड़ा, जीन्द।
5100/-	इक्यावन सौ रु॰ =	आचार्य आर्य परमार्थी, आर्यधाम जशौर खेड़ी, बहादुरगढ़ (ह॰)
5000/-	पांच हजार रु॰ =	कप्तान रणधीर सिंह, ग्रा॰ लाखन माजरा, रोहतक।
2100/-	इक्कीस सौ रु॰ =	श्री श्याम लाल आर्य, रेलवे ड्राईवर, जीन्द जंक्शन।
2100/-	इक्कीस सौ रु॰ =	श्री महासिंह आर्य, मन्त्री आर्य समाज, रेलवे रोड़, जीन्द जं॰।
2100/-	इक्कीस सौ रु॰ =	श्री पृथ्वी सिंह चहल प्रधान आर्य समाज, रेलवे रोड़, जीन्द जं॰।
2100/-	इक्कीस सौ रु॰ =	श्री सुरेश कुमार सुपुत्र श्री भरत सिंह ग्रा॰ अकालगढ़, जीन्द।

1200/-	बारह सौ रु०	=	श्री रोहताश आर्य सुपुत्र श्री उमेद सिंह, ग्रा० अकालगढ़, जीन्द।
1101/-	ग्यारह सौ एक रु०	=	स्त्री समाज, आर्य समाज मंदिर, जीन्द शहर।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	चौधरी मंगली राम स्मृति योगदान स्मृति बहबलपुर, जीन्द।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	सुरेश कुमार सुपुत्र श्री ईश्वर सिंह ने अपने पूज्य दादा चौधरी दरियाव सिंह गांव गोसाईं खेड़ा की स्मृति में।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	श्रीमती राममूर्ति व प्रिंसीपल इंद्रदेव शास्त्री सुपुत्र श्री चंदूलाल गांव शाहपुर, जीन्द।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	डॉ० जयदेव, संस्कृत प्राध्यापक 4280, डिफेंस कालोनी, जीन्द।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	श्री शमशेर सिंह आर्य सुपुत्र श्री सुल्तान सिंह, ग्रा० गोसाईं खेड़ा, जीन्द।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	श्रीमती बिमला देवी माता सोमबीर, ओमबीर, मनबीर, ग्रा० गढ़वाली खेड़ा, जीन्द।
1100/-	ग्यारह सौ रु०	=	श्री नरेश कुमार सुपुत्र श्री महासिंह पटवारी, ग्रा० अकालगढ़, जीन्द।
600/-	छः सौ रु०	=	श्री बिजेन्द्र सिंह सुपुत्र श्री बलबीर सिंह ग्रा० अकालगढ़, जीन्द।
525/-	पांच सौ पच्चीस रु०	=	श्री चंतर सिंह आर्य ग्रा० कोथ कलां म०न० 367/5, रेलवे रोड़, जीन्द जं०।

525/–	पांच सौ पच्चीस रु॰	=	श्रीमती शोना देवी आर्या धर्मपत्नी पं॰ दया कृष्ण आर्य पुरोहित आर्य समाज रेलवे रोड़, जीन्द जं॰
505/–	पांच सौ पांच रु॰	=	श्री हवा सिंह ग्राम शामलो कलां, जीन्द।
505/–	पांच सौ पांच रु॰	=	श्री दीप कुमार ब्रह्मचारी, गुरूकुल आर्य नगर, हिसार।
505/–	पांच सौ पांच रु॰	=	श्री राजेन्द्र नहरा ग्रा॰ जौली, सोनीपत।
501/–	पांच सौ एक रु॰	=	श्री सुरेन्द्र, दौलत राम आर्य सुपुत्रान विजय सिंह ग्रा॰ गढ़वाली खेड़ा, जीन्द।
501/–	पांच सौ एक रु॰	=	श्रीमती सत्या भाटिया आर्या, 228/3 हकीकत नगर, जीन्द।
500/–	पांच सौ रु॰	=	के॰ पर्वता (जाकार्ता) इंडोनेशिया।
500/–	पांच सौ रु॰	=	श्री नरेश कुमार सुपुत्र राजड़, ग्रा॰ गोसाईं खेड़ा, जीन्द।
500/–	पांच सौ रु॰	=	श्री राजकरण आर्य ग्रा॰ गुलिया बादली, रोहतक।
500/–	पांच सौ रु॰	=	सूबेदार श्री भगवान आर्य ग्रा॰ गुलिया बादली, रोहतक।
500/–	पांच सौ रु॰	=	ए॰ई॰ धीरपाल आर्य ग्रा॰ गुलिया बादली, रोहतक।
500/–	पांच सौ रु॰	=	श्री शमशेर सिंह आर्य सुपुत्र सूबेदार राजसिंह ग्रा॰ गुलिया बादली, रोहतक।
500/–	पांच सौ रु॰	=	श्री कुलदीप आर्य सुपुत्र श्री सीताराम सिंहमार ग्रा॰ गोसाईं खेड़ा, जीन्द।
500/–	पांच सौ रु॰	=	ब्रह्म प्रकाश व जयप्रकाश पुत्रान श्री रत्न प्रकाश आर्य, महम, रोहतक।

उपरोक्त दानवीरों के अतिरिक्त जिन महानुभावों ने पांच सौ रुपये से कम दान दिया है उनकी संख्या बहुत ज्यादा है। अतः विस्तार भय से उनके नाम नहीं दिये गये हैं। मैं सभी दानवीरों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ। आप सब लोगों ने सत्यार्थप्रकाश के उद्धार के लिये यह महापुण्य किया है। इसके लिये परमपिता परमात्मा से नम्रतम प्रार्थना करता हूँ कि वह प्रभु अपनी! महती कृपा से आप सब को सदा सुखी रक्खे तथा ऐसा अनुग्रह करे कि –

आपकी जेब रहे न खाली।
सबकी मने रोज दीवाली।
ओ३म् पिता के भवसागर में धर्मी का जहाज चलेगा।
कर दिया दान रख दिया मान तुम्हारा सहस्र गुना फलेगा।।

विशेष :

(क) मेरे छोटे सुपुत्र श्री रमेश कुमार सिंहमार ने मेरे द्वारा हस्तलिखित 'भाण्डाफोड़' की मूलप्रति से अपने सुन्दर सुलेख में मुद्रण प्रति (प्रेस कॉपी) तैयार करने में रात दिन अपार परिश्रम किया है। तत्पश्चात् इन्होंने अपनी छोटी सुपुत्री आर्या अनिशा सिंहमार की सहायता से मूलप्रति तथा मुद्रण प्रति का संशोधन बड़ी कुशलता से किया है। एतदर्थ इन दोनों को शुभ आशीर्वाद देते हुए इनके चिरंजीवी और सुखी जीवन के लिये परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ –

मंगल भवन अमंगल हारी।
द्रवहु सु व्यापक सर्व विहारी।।

(ख) इस 'भाण्डाफोड़' पुस्तक का आगामी संस्करण छपवाने के लिये अपना शुभदान निम्नलिखित पते पर भेजने का कष्ट करें –

पं॰ रतिराम आर्य
मकान नं॰ 3321 सी ब्लाक
अर्बन एस्टेट, जीन्द (हरियाणा)
फोन – 01681–246421

शुभ कामनाओं सहित
रतिराम

विषय विवरण

2. अथ उदयाचल

(1) उदयाचल की व्याख्या

प्रश्न – आपने अपनी पुस्तक के आरम्भिक पाठ का नाम उदयाचल रक्खा है। उदयाचल किसे कहते हैं और ऐसा नाम क्यों रक्खा है?

उत्तर – जिस भूभाग की आड़ से सूर्य उदय होता है, निकलता है भूमि के उस भाग को उदयाचल कहते हैं। वास्तव में 'अचल' कहते हैं 'पर्वत' को तथा 'उदय' का अर्थ है ऊपर को उठना। इस प्रकार उदय + अचल = उदयाचल शब्द बना है। जिस तरह कोई मनुष्य हिमालय पर्वत (अचल) से परली तरफ के नीचे के भाग से पर्वत पर ऊपर को चढ़ना शुरू करे और अपनी स्वाभाविक चाल से चलता हुआ जब हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँच कर तेन सिंह (तेनजिंग) और हिलेरी की तरह हिमालय के माऊंट एवरैस्ट की चोटी पर झण्डा गाड़ दे तब वह सारे संसार को दिखाई देगा तथा सारा संसार उसको दिखाई देगा। यहां पर हिमालय पर्वत उस मनुष्य के लिए उदयाचल (ऊपर उठकर दिखाई देने का पहाड़) बन गया। ठीक इसी प्रकार भूमि की दैनिक गति के कारण जब सूरज ऊपर उठते उठते पूर्व दिशा के जिस भूभाग की आड़ से निकल कर संसार को दिखाई देता है पृथ्वी के उस भाग को उदयाचल (सूर्य उदय होने, निकलने, दिखाई देने की आड़) कहते हैं।

इस पाठ का नाम 'उदयाचल' इसलिये रक्खा है कि मैंने अपनी आत्मा की उपमा वा दृष्टान्त उदयाचल से दिया है। जिस प्रकार सूर्य उदय होकर अन्धेरे को मिटा देता है और अन्धकार में छिपे हुए हानिकारक प्राणियों तथा कांटे, गढ़ों, ठोकर लगने के स्थानों इत्यादि को दिखा देता है, ठीक इसी प्रकार मेरे आत्मारूपी उदयाचल से निकला हुआ ज्ञानरूपी सूर्य सत्यार्थप्रकाश में छिपाये हुए

भ्रष्टीकरणों को संसार के सब मनुष्यों को दिखा देगा।।

प्रश्न – लेखक लोग अपनी पुस्तक के आरम्भ से पूर्व भूमिका, पुस्तक परिचय, दो शब्द, निवेदन इत्यादि में से कोई एक लिखते हैं। आपने ऐसा नहीं लिखा। इसका क्या कारण है?

उत्तर – इसका यही कारण है कि मैंने भूमिका आदि के स्थान पर 'उदयाचल' लिखा है। जो वर्णन भूमिका में आता है वही उदयाचल में आयेगा। जैसे भूमिका के पीछे पुस्तक में ज्ञान का प्रकाश होता है। उसी प्रकार मेरे आत्मारूपी उदयाचल के पीछे से निकलकर ज्ञानरूपी सूर्य सत्यार्थप्रकाश में किये गये भ्रष्टीकरणों को दिखा देगा।

इस पुस्तक में सब के हित का विशेष ध्यान रक्खा है। किसी के दिल दुखाने के लिये वा वैरभाव से एक भी शब्द नहीं लिखा है। सब मनुष्यमात्र तथा विशेष विद्वानों का यही मुख्य कर्त्तव्य है कि पक्षपात छोड़ के सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहें। जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही कहना, लिखना तथा मानना सत्य कहाता है। पांच परीक्षाओं द्वारा ही सत्य असत्य का पता लगता है। सो इस ग्रन्थ में इन सब बातों का ध्यान रक्खा है।

मेरी इस किताब में जो कहीं कहीं भूल से या शोधने तथा छापने में गलती रह जाय उसको मेरे द्वारा जानने एवम् मनुष्य मात्र के हितैषी किसी अन्य के द्वारा मुझे जनाने पर सत्यअनुसार ठीक कर दिया जायगा, परन्तु मेरे जीवित रहते या मृत्यु के बाद भी इस में अदल बदल तथा किसी प्रकार का भी परिवर्तन करने का अधिकार किसी को न होगा।

इस पुस्तक में यह अभिप्राय रक्खा है कि जो जो सत्यार्थप्रकाश में भिन्न–भिन्न समय में मिलावट, हटावट, बदलावट इत्यादि होते रहे हैं उन उन का दिग्दर्शनमात्र कराया जाय ताकि सब को मालूम हो जाय कि असली सत्यार्थप्रकाश कौन सा है और नकली कौन सा है। जिससे सत्य असत्य के खण्डन मण्डन में आसानी रहे।।

मेरे इन आगामी लेखों को जो कोई स्वार्थबुद्धि, पक्षपात, हठ,

दुराग्रह, साम्प्रदायिकता तथा विपरीत ज्ञान आदि दोषों को छोड़कर पढ़ेगा उसको तो सब कुछ ठीक–ठीक समझ में आ जायेगा। परन्तु जो कोई विरूद्ध भावना से देखेगा उस को कुछ भी मतलब समझ में नहीं आयेगा क्योंकि वाक्य का अर्थ समझने में चार कारण होते हैं :–

(1) आकांक्षा = इच्छा को आकांक्षा कहते हैं। यदि लेखक के किसी वाक्य में एक वा अनेक शब्द ध्यान न रहने से छूट जायें तो पाठक को यह देखना चाहिये कि इस वाक्य में लेखक की इच्छानुसार कौन से शब्द लगने से वाक्य सार्थक बन सकता है। जब शब्दों का निश्चय हो जाय तब वही शब्द अपने मन में वाक्य के साथ लगाकर वाक्यार्थ समझ लेना चाहिये जैसे लिखा हो, 'मोहन को गैस की बीमारी है। इसलिये वह डॉक्टर साहब की सलाह मानकर चावल, चाय और आलू क्योंकि ये गैस पैदा करने वाली वस्तुएँ हैं।' इस वाक्य का अर्थ ठीक से समझ में नहीं आता। वाक्य को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि आलू के बाद 'नहीं खाता है' ये तीन शब्द लगाने से वाक्य का अर्थ लेखक की इच्छानुसार पूरा हो जायगा। यदि हम इस अधूरे वाक्य में 'खाता है' ये दो ही शब्द जोड़कर अर्थ करें तो वाक्य तो पूरा हो जायेगा, परन्तु इसका अर्थ लेखक की इच्छा के विपरीत होगा क्योंकि लेखक ने वाक्य में 'डॉक्टर की सलाह मानकर' भी लिखा है जोकि गैस बढ़ाने वाले आलू आदि को न खाने की सलाह है। इसलिये उक्त वाक्य में आलू के बाद 'नहीं खाता है' शब्द जोड़ने से ही लेखक की इच्छा (आकांक्षा) अनुसार वाक्य पूरा होता है। इसी को आकांक्षा कहते हैं। परन्तु सावधान! सावधान!! सावधान!!! उपरोक्त वाक्य में आलू के बाद 'नहीं खाता है' शब्द पाठक ने अपने मन मन में ही जोड़ने है, पुस्तक में नहीं घुसेड़ने चाहियें अन्यथा पुस्तक भ्रष्ट हो जायेगी, लेखक की न रहकर पब्लिक प्रोपर्टी हो जायेगी। ऐसे ही भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं ने महर्षियों के आर्ष ग्रन्थ अनार्ष बना डाले। ऋषियों के शब्दों की गहराई को न पाकर अपनी तुच्छ अनार्ष बुद्धि द्वारा इन ग्रन्थों में अनेकों परिवर्तन करके अपनी झूठी योग्यता का डिमडिम ढोल पीट रहे

हैं। अपने गुरूओं की पगड़ी उछालना किसी को भी शोभा नहीं देता। इसीलिये किसी लेखक के ग्रन्थ में बिन्दु विसर्ग मात्रा का भी परिवर्तन नहीं करना चाहिये। यदि किसी ऋषि ने गलती की है तो गलती रहने दीजिये ताकि पाठकों को पता लगे कि महर्षि भी गलती कर सकते हैं क्योंकि वे भी तो अल्पज्ञ जीवात्मा हैं, सर्वज्ञ परमात्मा नहीं हैं। अतएव महर्षियों का संशोधन करके उनको परमात्मा मत बनाइये, उन्हें ऋषि ही रहने दीजिये। हां, यदि 'गुरू गुड़ और चेला शक्कर' उदाहरण बने बिना आप से नहीं रहा जाता तो अपना अमूल्य परामर्श पादटिप्पणी अर्थात् फुटनोट में दिखा दीजिये परन्तु किसी के ग्रन्थ में अनुचित घुसपैठ करके पापों और अपराधों की गठड़ी अपने सिर पर मत धरिये।

बन्धी पड़ी कुकर्म की गठड़ी मतना सिर पै धर बन्दे।
पापी पाप रिपट जायगा, लागे धरती में सिर बन्दे।।

(2) वाक्यार्थ बोध में दूसरा कारण है 'योग्यता'। योग्यता का अर्थ है क्षमता, समर्थता, कर सकने की शक्ति। जिससे जो हो सके उसको योग्यता कहते हैं जैसे जल में सींचने की योग्यता है और अग्नि में जलाने की क्षमता है। इन दोनों को वैसा ही समझना 'योग्यता' है, लेकिन पानी को जलाने वाला समझना तथा आग को सींचने वाला समझना योग्यता के विरूद्ध है।

प्रश्न – इसे साफ साफ समझाओ कि वाक्य का अर्थ समझने में 'योग्यता' का प्रयोग कैसे करें?

उत्तर – जैसे किसी पुस्तक में लिखा हो कि शृंगी ऋषि के सिर पर सींग थे, पत्थर का गणेश दूध पीता है, हनुमान के पूंछ थी, कर्ण कुन्ती के कान में से पैदा हुआ, कान से पुस्तक पढ़ता था, आंख से सुनता था और

[1]पग बिनु चलै सुनै बिनु काना।
[2]कर बिनु करै कर्म विधि [3]नाना।।
[4]आनन रहित [5]सकल रस भोगी।
बिनु वाणी वक्ता बड़ जोगी।। = चौपाई

इस प्रकार के और भी। जहां ऐसे ऐसे वाक्य आयें तो समझ लो कि सर्वथा गलत हैं क्योंकि मनुष्य के सिर में सींग पैदा करने की योग्यता नहीं, पत्थर में दूध पीने की क्षमता नहीं, मनुष्य की कमर में पूंछ पैदा करने का सामर्थ्य नहीं, कान में सन्तान पैदा करने की शक्ति नहीं, आंख में सुनने की तथा कान में पढ़ने की योग्यता नहीं इत्यादि।।

(3) तीसरा कारण 'आसत्ति' = निकटता, समीपता का नाम 'आसत्ति' है। जिस शब्द के साथ जिसका सम्बन्ध हो उसी के समीप उस शब्द को बोलने वा लिखने से ही सही अर्थ समझा जा सकता है। जैसे (1) किसी दुकान में केवल देशी घी बिकता है और दुकान पर लिखा है 'यहां पर देशी घी मिलता है' परन्तु पढ़ने वाला 'पर' और 'देशी' को मिला कर ऐसे पढ़ता है – ' यहां परदेशी घी मिलता है' तो वाक्य का अर्थ दुकानदार के तात्पर्य के उलट हो गया इसलिये 'पर' और 'देशी' को अलग अलग ही पढ़ने से सही अर्थ समझा जा सकता है। इसी का नाम 'आसत्ति' है।

(2) क – सत्यार्थप्रकाश प्रथम समुल्लास –" इस संसार में तीन प्रकार के दुःख हैं – एक 'आध्यात्मिक' जो आत्मा शरीर में अविद्या, राग–द्वेष, मूर्खता और ज्वर पीड़ादि होते हैं", इस वाक्य में आत्मा और शरीर दोनों के दुःख अलग–अलग बताये हैं। उन्हें समझने के लिये हमें वाक्य को अपने मन–मन में ऐसे पढ़ना चाहिये – 'जो आत्मा में अविद्या, रागद्वेष, मूर्खता और शरीर में ज्वर पीड़ादि होते हैं।' तभी वाक्य का सही अर्थ

1. पांव, 2 हाथ, 3. अनेक, 4. मुख 5. सारे

समझ में आयेगा, परंतु ऐसा संशोधित वाक्य पुस्तक में नहीं लेखना चाहिये अन्यथा पुस्तक लेखक की न रहकर, भ्रष्ट होकर गाल गली की हो जायेगी।

ख – सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास – "तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का भी समय है।" इस वाक्य में "भी" का सही स्थान 'पूर्व' और 'अग्निहोत्र' के बीच में है। सही वाक्य ऐसा होगा – "तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व भी अग्निहोत्र करने का समय है" इस प्रकार शब्द या शब्दों को मन–मन में आगे पीछे करके अर्थ समझ लेना चाहिये।

प्रश्न – लेखक स्वयं ही उपरोक्त संशोधित वाक्यों की तरह क्यों नहीं लिखते ? ऐसे उलझ पुलझ क्यों लिखते हैं ?

उत्तर – इसके तीन कारण हैं – (1) वाक्य रचना की रुचि सबकी पृथक–पृथक होती है। (2) लेखक से भी भूल चूक हो सकती है, क्योंकि लेखक सर्वज्ञ परमात्मा नहीं, अपितु अल्पज्ञ जीवात्मा है। इसी प्रकार छापने और शोधने में भी भूल चूक रह सकती है। (3) हो सकता है लेखक का ही वाक्य ठीक हो और हम लेखक की वाक्य रचना की गम्भीरता को न समझकर गलत संशोधन कर बैठें। इसीलिये किसी के ग्रन्थ में परिवर्तन करके अपयश नहीं कमाना चाहिये। यह लेखक और मानव जाति के साथ अन्याय होगा। दूसरे यह कानूनन अपराध और नैतिक पाप होगा। तीसरे मूल लेख को पलटने से लेखक की मान हानि है, अपमान है। कोई भी उनका भक्त ऐसे लोगों पर मुकदमा कर सकता है। पर आपस की लिहाज में यह नौबत अभी तक नहीं आई है। किसी के ग्रन्थ के भ्रष्टीकरणकर्त्ता अपराधियों को भगवान् बुद्धि प्रदान करे और उन्हें इस घृणित पाप से बचावे।

परिवर्तन कर मूल ग्रन्थ में बुरा न किसी का कर बन्दे।
तू करता है बुरा और का तेरा करेगा हर बन्दे।।

जिन के ऊपर चढ़ा फिरै है कट कट जल जाएं पर बन्दे
लेखा है राई राई का तू मत सूना चर बन्दे।।
जैसी करनी वैसी भरनी करनी करके डर बन्दे।
दुःखों की अग्नि में जलेगा रोवेगा पीट पीट सिर बन्दे।।

(4) वाक्य का अर्थ समझने के लिए चौथा कारण है 'तात्पर्य' प्रयोजन को तात्पर्य कहते हैं। बोलने वाले वा लिखने वाले ने जि प्रयोजन के लिये बोला वा लिखा है उसका वही अर्थ समझ तात्पर्य कहलाता है। जैसे कोई मनुष्य जूता खरीदने के लिये बाजा में गया। उसने किसी दुकानदार से पूछा, "यहां कहीं जूते मि जायेंगे ?" दुकानदार ने हंस कर कहा, "जूते तो बहुत मिल जायें आपका सिर पक्का चाहिये।" यहां पर दुकानदार ने बोलने वाले तात्पर्य के विरूद्ध अर्थ लगा लिया। वक्ता ने सिर में पड़ापड़ लग के लिये जूता नहीं पूछा था बल्कि पाँव में पहनने के लिये पूछा था इस प्रकार वक्ता के प्रयोजन के विरूद्ध अर्थ लगाना 'तात्पर्य' न कहलाता अपितु बोलने वा लिखने वाले के अनुसार ही अर्थ लगान 'तात्पर्य' कहलाता है। जैसे राम ने श्याम से कहा कि जो अध्याप सरकार से वेतन लेकर भी स्कूल में बच्चों को नहीं पढ़ाते वे निरे ग हैं। यहां पर निरे गधे का अर्थ कुम्हार वाला गधा न लेकर 'महामूर्ख अर्थ लेना ही वक्ता के मतलब के अनुसार होगा। इसी को 'तात्पर्य कहते हैं। इसी प्रकार जो लोग महर्षि दयानन्द के ग्रंथों का तात्प न समझकर उसके ग्रन्थों में परिवर्तन करते हैं वे भी निरे गधे हैं सत्यार्थप्रकाश तो सभी आर्यों की माँ है। स्वयं आर्य होकर भी अपन माता सत्यार्थप्रकाश को दूषित करना, भ्रष्ट करना परम घृणित क है। सत्यार्थप्रकाश में आजतक कम से कम 10947 (दश हजार न सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण कर दिये हैं। सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानन्द की आत्मा (दयानन्दात्मा से निकला ज्ञान) है। इन दयानन्दात्म के हत्यारों को परमात्मा यजुर्वेद 40/3 के अनुसार अवश्य

दण्ड देगा। वहां उक्त वेद में लिखा है :–

जो लोग आत्मा की हत्या करते हैं अर्थात् आत्मा के विरुद्ध कार्य करते हैं, वे इस जीवन में तथा मरकर भी जहां असुर, राक्षस निवास करते हैं, उन गहरे अन्धकार से ढके हुए घोर दुःखदायक स्थानों को प्राप्त होकर चिरकाल तक दुःख पाते रहते हैं (यजुर्वेद 40/3)। इन मातृ हत्यारे प्रातः स्मरणीय श्रीमानों की ऐसी घिनौनी चेष्टायें देखकर मुझे भी सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड का भाण्डा फोड़ना ही पड़ेगा ताकि सब लोगों को पता लग जाये कि सत्यार्थप्रकाश रूपी अमृत से भरे सोने के घड़े में जहर भी मिला दिया है।

मन मलीन तनु सुन्दर कैसे।
विष रस भरा कनक घट जैसे। कनक = सोना



(2) भाण्डा फोड़

प्रश्न – आपकी पुस्तक का नाम 'सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड व भाण्डाफोड़' कुछ लठमार सा लगता है। क्या आप इस सारे नाम व अलग–अलग करके समझाने का कष्ट करेंगे ?

उत्तर – हां ! अवश्य करेंगे। असल बात यह है कि जब कोई मामल सारे प्रयत्न करने पर भी नहीं सुलझता, तब लठमार नुसखे आसानी से सुलझ जाता है।

जैसे :– (क) सतयुग में असुर (राक्षस) लोग देवताओं को ह तरह से सताने लगे। कभी उनके राज्य की भूमि के कुछ भाग प नाजायज कब्जा कर लेते, कभी ग्वालों से उनकी गायें छीन ले जा कभी देवताओं की बहन बेटी को उठा ले जाते। देवताओं ने असु को समझाने के लिये हर प्रकार का प्रयत्न किया परन्तु राक्षस लो अपनी घटिया हरकतों से बाज न आये। कहते हैं 'तंगामद बजंगाम अर्थात् तंग किया हुआ आदमी लठ बजा बैठता है। इसी प्रक देवताओं ने तंग आकर असुरों से लठ बजा लिया। देवासुर संग्रा हुआ। बहुत से असुर इस युद्ध में मारे गये जो थोड़े से बचे वे जा बचा कर विदेशों आदि में भाग गये।

(ख) त्रेता युग में रावण बड़ा बलवान् राक्षस था। उसने बहु से राजाओं को युद्ध में हराकर कुछ को अपने आधीन कर लिया औ कुछ को कैद कर लिया। अन्त में महाराज दशरथ के राज्य का कु भू–भाग दबाकर खर दूषण नामी दो सेनापतियों के नीचे चौदह सैनिक इस भू–भाग के रखवाले छोड़ दिये। बड़े–बड़े समझदारों रावण को समझाया, उसके भाई विभीषण तथा कुम्भकर्ण औ उसकी विदुषी धर्मपत्नी मन्दोदरी ने भी समझाया। कहावत कि 'हगाया और हुमाया रुक नहीं सकता।' रावण को घम का हुमायापन चढ़ा हुआ था। वह राम के बनवास काल

दण्डक वन से राम की पत्नी सीता को चोरी से उठा ले गया। आखिर में लठमार नुसखे के अनुसार राम–रावण युद्ध हुआ। माता सीता ने युक्तिपूर्वक रावण को नागिन फिल्म की तर्ज में ऐसे समझाया :–

सुन रावण रे, इक सिखावन रे, तेरी बुद्धि बड़ी अज्ञान,
अबला मत समझै रे नादान।

(1) धरती लीपन अर्थ धनुष को मैं एक हाथ से लेती ठा।
स्वयम्बर में दो हाथों से पापी तुझ से नहीं उठा।।
तनैं लिया आजमा, फिर क्यों भरम्या, तेरी मार मिटादूं शान,
अबला मत समझै रे नादान।।

परन्तु रावण के समझ में नहीं आई, क्योंकि 'कागा उजला ना होता चाहे सौ मन साबुन ला।' फिर क्या हुआ ? फिर यह हुआ कि

(2) रामचन्द्र की फौज सजी सेतुबन्ध को बान्ध लिया।
सर सर चाले बाण लखन के मेघनाथ को बान्ध लिया।।
भिड़ गये बन्दर, मारा दशकन्दर, फरके झण्डे असमान,
अबला मत समझै रे नादान।।

रावण के घमण्ड के कारण ही लंका का सर्वनाश हुआ। इसीलिये आज कल के अयोगी घमण्डी विद्वानों को अपने आप को महायोगी महर्षि दयानन्द सरस्वती से बड़ा समझकर उसके ग्रंथों में परिवर्तन करके इनको भ्रष्ट नहीं करना चाहिये। रे घमण्डियो ! बाज आजाओ !!

क्यों घमण्ड करे इन्सान, घमण्ड से दूर हटै भगवान,
घमण्डी मरा करै।।
बन में जाकै सीता ठाली रावण समझो धेले का।
सबके दिल में खटकै है छन्द विष्णुदत्त के चेले का।।
जमनादास कण्डेले का सब रटो हरी का नाम घमण्डी मरा

करै।

(ग) द्वापर युग में दुर्योधन, शकुनी, कनक शास्त्री और महादानी कर्ण की चाण्डाल चौकड़ी के द्वारा महात्मा पाण्डवों को बहुत लम्बे दीर्घकाल तक सताया जाता रहा। सब जनता ने समझाया, दुर्योधन के पिता धृतराष्ट्र और माता गान्धारी ने समझाया, महात्मा विदुर ने समझाया, महर्षि वेदव्यास ने समझाया और सब से अन्त में महायोगी नीतिवान् श्री कृष्ण जी ने समझाया परन्तु उपरोक्त चाण्डाल चौकड़ी के समझ में न आया। कहावत है :-

सब रोगों की दवाई शास्त्रों में बताई है।
पर मौत और मूर्ख की कोई नहीं दवाई है।।

अन्त में लठमार नियम के अनुसार ऐसे हुआ कि :-

(तर्ज = हो तेरा क्या कहना)

चले अर्जुन के बाण, सारथी कृष्ण जी भगवान,
दिखा दिया न्याय करके।।

(1) पाण्डवों ने महाभारत में पृथ्वी हिलादी, पृथ्वी हिलादी।
नदियां नाले दरिया भारी खून की चला दीं, खून की चला दीं।।
द्रोपदि के खुले केश, याद कर कुन्ती माँ का वेश,
काट दिये चाह् करके। चले अर्जुन के ....।।

(2) भीष्म द्रोण कर्ण मारे, जयदरथ स्वर्ग सिधारे, वीर अर्जुन के बाण से।
जो भी शख्स आगे आया, हवा के में उसे उड़ाया, मार दिया जान से।।
तानकर कान तक कमान, खींच लिये लाखों नरों के प्राण,
जोश में आकर के । चले अर्जुन के बाण ....।।

(3) भीम की गदा भारी, तोल तोल तोलमारी, कर दिये वारे न्यारे।
जांघ तोड़ सीने को फोड़ा, दुःशासन के हाथों को निचोड़ा
द्रोपदी केश संवारे।।
कुन्ती मां का ध्यान, मार रहा भीम गदा को तान,

गर्व में छा करके।। चले अर्जुन के बाण ....।।

(4) सहदेव ने खड़ग उठाके, नकुल ने तलवार चला के,
आर पार वार किये।
अभिमन्यु ने धरती तोली, भारत माँ उससे न्यूं बोली,
रे जन्म सैकडों बार लिये।।
रतिराम से ज्ञान सीखले, धर्मगुरू की मान,
जीन्द शहर में आकरके।।

इस प्रकार अट्ठारह क्षोणी सेना में से केवल नौ आदमी बचे और दुर्योधन गोत्र हत्यारा कहलाया।

इसीलिये विद्वान् होने के नाते से मेरा कर्त्तव्य बनता है कि मैं सत्यार्थप्रकाश के भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं को समझाऊँ कि वे गुरूहत्यारे न कहलावें अन्यथा कहीं ऐसा न हो कि कोई ऋषि दयानन्द का भक्त लठमार नुसखे का प्रयोग कर बैठे।

पाठकगण! आप मेरे उपर लिखे विवरण से समझ ही गये होंगे कि मैंने इस पुस्तक का नाम लठमार सा क्यों रक्खा है? अब इस सारे नाम को अलग–अलग समझने का कष्ट कीजिंये। 'सत्य + अर्थ +प्रकाश,' 'हत्या +काण्ड,' 'का,' 'भाण्डा + फोड़' इन आठ शब्दों से इस पुस्तक का नाम बना है। इन का अर्थ इस प्रकार है :–

(1) सत्य – जो जैसी चीज हो उसको वैसी ही मानना, वैसी ही बोलना वा लिखना, वैसी ही करना सत्य कहाता है अर्थात् जैसा आत्मा में, वैसा मन में, जैसा मन में वैसा वचन वा लेखन में और वैसा ही कर्म में करने को सत्य कहते हैं यानी सच को सच कहना तो सच है ही और झूठ को झूठ कहना भी सत्य है। इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश में सच को सच और झूठ को झूठ कहा है।

(2) अर्थ = मतलब, माने, अनुवाद, भाषान्तर, प्रयोजन, तात्पर्य, भाव इत्यादि स्पष्टीकरण को 'अर्थ' कहते हैं। सत्यार्थप्रकाश में चारों

वेदों और ब्रह्मा से लेके जैमीनि तक ऋषि मुनियों के लगभग तीन हजार आर्ष ग्रन्थों का साररूप हिन्दी (आर्य) भाषा में अनुवाद है।
प्रश्न – इसका क्या प्रमाण है कि सत्यार्थप्रकाश संस्कृत के तीन हजार आर्ष ग्रन्थों का साररूप हिन्दी अनुवाद है?

उत्तर – महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत 'भ्रान्ति–निवारण' पुस्तक में पं॰ महेशचन्द्र न्यायरत्न के प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज लिखते हैं, "मैं अपने निश्चय और परीक्षा के अनुसार ऋग्वेद से लेके पूर्व मीमांसा पर्य्यन्त अनुमान से तीन हजार ग्रन्थों के लगभग मानता हूँ।" इसमें विचारणीय है कि तभी तो मानेगा जब पहले पूरी पुस्तक अच्छी प्रकार पढ़कर निश्चित जान लेगा कि यह पुस्तक आरम्भ से लेकर अन्त तक सब ठीक है। इससे यह निश्चय है कि ऋषि दयानन्द ने अनेकों ग्रन्थ परीक्षापूर्वक पढ़े और पढ़े हुए सब ग्रन्थों में से छांटकर तीन हजार ग्रन्थ माननीय ठहराये।

आत्मा, परमात्मा और सृष्टि रचनायुक्त सब संसार का ज्ञान उक्त तीन हजार ग्रन्थों में आ जाता है। इससे अलग़ कोई ज्ञान होता ही नहीं तथा सत्यार्थप्रकाश में भी आत्मा, परमात्मा और सृष्टि रचनारूप संसार का सब ज्ञान है। अतः सिद्ध है कि जैसे घी सम्पूर्ण दूध का सार होता है वैसे ही सत्यार्थप्रकाश संस्कृत के तीन हजार आर्ष ग्रन्थों का साररूप हिन्दी अनुवाद है।

(3) प्रकाश = रोशनी को प्रकाश कहते हैं। अन्धेरे में छिपी हुई वस्तुओं को प्रकाश दिखा देता है। सत्य + अर्थ + प्रकाश = सत्यार्थप्रकाश अर्थात् सच्चे अर्थों को देखने की रोशनी से ही हम कर्त्तव्याकर्त्तव्य, धर्माधर्म और सत्यासत्य का विवेक कर सकते है। 'द्रव्य गुण कर्मसु अर्थः' इस दर्शन सूत्र के अनुसार द्रव्यों का यथार्थज्ञान, गुणदोषों का यथार्थज्ञान और सुकर्म कुकर्म का यथार्थज्ञान कराने वाले प्रकाश को सत्यार्थप्रकाश कहते हैं।

(4) हत्या – किसी को मारने को हत्या कहते हैं जैसे गोहत्या = गाय को मारना, ब्रह्महत्या = विद्वान् को मारना, आत्महत्या = अपने आप मर जाना, सत्यार्थप्रकाश हत्या = सच्चेअर्थों को दिखाने वाली रोशनी को बुझाना अर्थात् सत्यार्थप्रकाश को मिथ्यार्थ प्रकाश बना देना ही सत्यार्थप्रकाश की हत्या करना है जैसे सत्यार्थप्रकाश में 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालिस) भ्रष्टीकरण करके सत्यार्थप्रकाश का मिथ्यार्थप्रकाश बना दिया।

(5) काण्ड – गन्ने या बांस आदि की पोरी, एक जोड़ (सन्धि) से दूसरे जोड़ तक, भाग, टुकड़ा, प्रकरण, विभाग, अध्याय (स्कन्ध, खण्ड), डण्ठल, शाखा, ब्रांच तथा अन्य अनेक। ये सब काण्ड के अर्थ हैं परन्तु यहां पर काण्ड का अर्थ 'प्रकरण', 'प्रसंग,' 'सन्दर्भ,' 'विषय,' आदि ही लिया जायगा। सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड अर्थात् सत्यार्थप्रकाश की हत्या का विषय (प्रकरण) यह अर्थ हुआ।

(6) का – यह सम्बन्ध का बताने वाला है जैसे यह राम का घोड़ा है। 'का' ने राम का सम्बन्ध घोड़े से और घोड़े का सम्बन्ध राम से बताया। ठीक इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड और भाण्डाफोड़ का सम्बन्ध भी 'का' ही बता रहा है।

(7) भाण्डा – धातु या मिट्टी के पात्र या बर्तन को भाण्डा कहते हैं।

(8) फोड़ – इसका अर्थ है फोड़ने का कार्य।

यहां पर भाण्डाफोड़ का ऐसे अर्थ लगेगा कि जैसे किसी बन्द बर्तन में कोई चीज या चीजें हैं और किसी को भी पता नहीं कि इस बर्तन में क्या क्या चीजें छिपा रक्खी हैं। अब कोई एक आदमी इस बन्द बर्तन को उठाकर धड़ाम से पत्थर पर मारकर फोड़ देता है। बर्तन में छिपाई हुई चीजें जमीन पर बिखर जाती हैं। बर्तन में छिपाई हुई सब वस्तुएँ सबको दीख जाती हैं। ठीक इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश में छिपाये हुए कम से कंम 10947 (दस हजार नौ सौ सन्तालीस)

भ्रष्टीकरण मेरी इस पुस्तक के पढ़ने से सबको दिखाई दे जायेंगे। इसीलिये इस पुस्तक का नाम 'सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड का भाण्डाफोड़' रक्खा है।

एक दिन मैं निकला सैर को तो दिल में कुछ अरमान थे।
मन में मेरे दयानन्द और भ्रष्टीकरणकर्त्ता श्रीमान् थे।।
चलते चलते ख्याल आया इनका अन्तर कैसे वर्णन करूँ।।
ये श्रीमान् बाज आ जायें मैं कुछ ऐसा जतन करूँ।।
अचानक एक कीड़ी पर नजर पड़ी जो हाथी को धमकावै थी।
तुझे पाँवों तले कुचल दूंगी वो अपना रौब जमावै थी।।
हाथी मस्ती में सो रहा था कीड़ी हाथी पर जाय चढ़ी।
लात और घूंसे मार रही बनाना चहावै इसकी कढ़ी।।
अचानक करवट बदली हाथी ने कीड़ी नीचे मसली गई।
उसका कचूमर निकल गया, ना हड्डी रही न पसली रही।।
इसी तरह ये श्रीमान् कहते हैं हम दयानन्द का सुधार करेंगे।
मुझको तो ऐसा लगता है ये बिन आई मौत मरेंगे।।

यदि कोई प्राइमरी श्रेणी का विद्यार्थी कालिज में एम॰ए॰ श्रेणी को पढ़ाने वाले योग्यतम प्रोफेसर की गलतियां निकालने लग जाए और उसकी छपी पुस्तकों में भी परिवर्तन आरम्भ कर दे तो क्या लोग उस बालक की महामूर्खता पर हंसेंगे नहीं ? अवश्य ही हंसेंगे। कहां कीड़ी और कहां हाथी !!! कहां ऋषि दयानन्द का अखण्ड ब्रह्मचर्य से दमकता चेहरा और कहां इन श्रीमानों का बासी पूड़े सा व्यभिचारी चेहरा। कहां दयानन्द का परम उच्चकोटि का योग और कहां इन श्रीमानों का अप्राकृतिक विषय रोग ! कहां ऋषि का 3000 (तीन हजार) से भी अधिक ग्रन्थों का अध्ययन और कहां इन श्रीमानों का दो चार या दश बीस शास्त्रों की अनार्ष टीकाओं का पठन। कहां ऋषि दयानन्द का 10 (दश) हजार वेद मन्त्रों के अर्थों का समाधि में साक्षात्

करना और कहां इन श्रीमानों का एक भी मन्त्र के अर्थ का साक्षात् न कर सकना। कहां दयानन्द की अठारह–अठारह घण्टे की समाधि और कहां इनका प्रतिक्षण चंचल मन जो एक मिनट की भी समाधि न लगा सकें। कहां शास्त्रार्थ युद्ध में शेर की तरह दहाड़ने वाला दयानन्द और कहां शास्त्रार्थ के नाम से छेरने और डरकर बिलों में छिपने वाले ये श्रीमान् गीदड़!! कहीं भी तो मुकाबला नहीं। महर्षि दयानन्द रूपी समुद्र के सामने ये तुच्छ श्रीमान् एक बून्द भी नहीं।

क्या ऋषि की गलतियां निकालने वाले इन श्रीमानों से भी स्वामी विशुद्धानन्द और बालशास्त्री गए बीते थे, जो वे दयानन्द की एक भी गलती न पकड़ सके और इन सत्यार्थप्रकाश के भ्रष्ट करने वाले श्रीमानों ने कम से कम 10947 (दस हजार नौ सौ सन्तालीस) परिवर्तन तो अकेली सत्यार्थप्रकाश में कर डाले। स्वामी विशुद्धानन्द और बालशास्त्री तो काशी की नाक थे। ये तो काशी के पूरे से विद्यार्थी भी नहीं। ऋषि की दिग्विजय से कुछ शिक्षा लेकर इन श्रीमानों को आर्ष ग्रन्थों में घुसपैठ छोड़ देनी चाहिए अन्यथा लानत मलामत के सिवाय कुछ भी प्राप्त नहीं होगा।

क्यों भाई! नहीं मानोगे मेरी बात ? मैं दुश्मन हूँ तुम्हारा ? गलत सलाह दूंगा तुम्हें ? यदि मानोगे तो आर्य समाज के चौथे नियम का पालन करो। यह आर्य समाज का चौथा नियम केवल आर्यों श्रेष्ठों के लिये ही है क्योंकि आर्य ही "सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए" इस आर्य समाज के चौथे नियम का पालन कर सकते हैं अर्थात् आर्य ही असत्य को छोड़कर सत्य का ग्रहण करते हैं अनार्य नहीं। उदाहरण देखो : महर्षि दयानन्द को भी कितनी बार असत्य चिपट गया परन्तु सत्य का ज्ञान होते ही असत्य को छोड़ते रहे जैसे – (1) शिवलिङ्ग पूजा छोड़ना,

(2) वैरागियों का संग छोड़ना, (3) चाण्डालगढ़ में भांग पीना छोड़ना, (4) अनार्ष ग्रन्थ यमुना में फेंक देना, (5) जयपुर में शैवों का मण्डन तथा अपने हाथ से अनेकों मनुष्यों, हाथी, घोड़ों को रुद्राक्ष की मालाएँ पहनाईं, फिर सत्य मालूम होने पर शैवों का खण्डन प्रारम्भ, (6) पहले मुक्ति को अनन्त मानते और प्रचार करते थे, फिर सत्य जानने पर मुक्ति को सान्त मानने और प्रचार भी सान्त मुक्ति का करने लगे। इन सब का तात्पर्य यही है कि बड़े से बड़ा विद्वान् ऋषि महर्षि भी असत्य को पकड़ लेता है, क्योंकि जीव अल्पज्ञ है, परन्तु असत्य को छोड़ देना ही आर्यत्व है।

असत्य को छोड़ने से दयानन्द की बदनामी नहीं हुई तो आप की भी नहीं होगी इसलिये मेरे भाई! विश्व में आर्यों द्वारा चलाई हुई साप्ताहिक, मासिक सब पत्रिकाओं में विज्ञापन दो कि अमुक अमुक सत्यार्थप्रकाश नकली होने से कैन्सिल की जाती हैं और सत्यार्थ–प्रकाश के अग्रिम प्रकाशन महर्षि दयानन्द के जीवनकाल में छपे द्वितीय संस्करण के अनुसार किये जायेंगे।

परमपिता परमात्मा से नम्रतम निवेदन है कि हम सब आर्यों को आर्यसमाज के चौथे नियम पर चलने की शक्ति, सद्बुद्धि और साहस दे जिस से हम सब धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों फलों को शीघ्र ही प्राप्त कर सकें।



(3) भ्रष्टीकरण का स्पष्टीकरण

प्रश्न – आपने लिखा है कि सत्यार्थप्रकाश में भ्रष्टीकरण कर दिये। भ्रष्टीकरण किसे कहते हैं और आप कितने प्रकार के भ्रष्टीकरण मानते हैं?

उत्तर – भ्रष्ट करने की क्रिया को भ्रष्टीकरण कहते हैं। भ्रष्ट का अर्थ है दूषित, अपवित्र, गन्दा, झूठा इत्यादि। सत्यार्थप्रकाश को भ्रष्ट करने का अर्थ है इसका नया प्रकाशन करते समय इस में नये शब्द मिला देना, इसके निज के शब्दों को छोड़ देना या असली शब्दों को बदली कर देना इत्यादि। इस प्रकार के परिवर्तन को भ्रष्ट करना कहा है और परिवर्तन करने के कार्य को भ्रष्टीकरण कहा है। भ्रष्टीकरणों के प्रकार को जानने के लिए एक सूत्र (फार्मूला) अपनाया है जो निम्न प्रकार है।

अंग्रेजी भाषा का एक शब्द है – **Welcome,** इसमें सात अक्षर हैं। **W + E + L + C + O + M + E** – इनमें आरम्भ के छः अक्षर फार्मूले में प्रयुक्त किये हैं जैसे –

(1) **W** लिया है **Wrong** (गलत, गलती, गलतावट) के लिये अर्थात् सत्यार्थप्रकाश में जो शब्द ग़लत लिख दिये उनके लिये **W** लिख दिया ताकि पता लग जाय कि यह भ्रष्टीकरण गलत है।

(2) **E** लिया है **Extended** या **Extension** (परिवर्द्धित या परिवर्द्धन = मिलावट) के लिये अर्थात् जो शब्द, वाक्य या पैरा महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में लिखा ही नहीं था परन्तु बाद के प्रकाशकों, सम्पादकों, संशोधकों आदि ने मिला दिया, बढ़ा दिया उसके लिये **E** लिख दिया ताकि पता लग जाये कि यह बढ़ाया हुआ, मिलाया हुआ भ्रष्टीकरण है।

(3) **L** लिया है **Left** (परित्यक्त = हटावट) के लिये।

इसका मतलब है कि दयानन्द द्वारा लिखा हुआ शब्द छोड़ दिया, हटा दिया। इस के लिये भ्रष्ट सत्यार्थप्रकाश में मैंने L लिख दिया। इस L के देखने से पता लग जाये कि यहां हटाया हुआ हटावट भ्रष्टीकरण है।

(4) C लिख दिया है Change (परिवर्तित, बदलावट) के स्थान पर अर्थात् जो शब्द बदल दिये गये जैसे 'निश्शेष' हटाकर इसके स्थान पर 'कमती' लिख दिया ऐसे भ्रष्टीकरण के लिये C लिख दिया जिससे पता लग जाय कि यह बदलावट किस्म का भ्रष्टीकरण है।

(5) O का अर्थ लिया है Old (पुराना) जिन भ्रष्ट किये गये सत्यार्थप्रकाशों का मैं खण्डन करने जा रहा हूँ उनमें जो भ्रष्टीकरण इन से पहले के सत्यार्थप्रकाशों से लिया गया है उस पर O लिख दिया है ताकि पता लगे O चिन्ह वाले भ्रष्टीकरण प्राचीन सत्यार्थप्रकाशों से आये हैं ऐसे पुराने भ्रष्टीकरणों की संख्या 733 (सात सौ तेंतीस) है। इस से मालूम हुआ कि महर्षि दयानन्द सरस्वती की मृत्यु के उपरान्त ही इन श्रीमानों ने सत्यार्थप्रकाश और इसकी हस्त लिखित मूलप्रति में कलमें चलानी शुरू कर दी थीं। जब जब जिस जिसके अधिकार में हस्तलिखित मूल प्रति आई तब तब ही उस उस ने अपने दूषित अनार्ष विचारों का शुभ प्रदर्शन इसमें कर ही दिया। बिगाड़ते बिगाड़ते, परिवर्तन करते कराते नौबत यहां तक पहुँचा दी कि मूलप्रति का गोरख धन्धा बना दिया, सत्यार्थप्रकाश का असत्यार्थप्रकाश बना दिया। यह परोपकारिणी सभा अजमेर और सारे संसार के आर्यों के माथे पर ऐसा कलंक लग गया जो कभी नहीं उतरेगा। अब तो केवल एक ही उपाय है कि इस भ्रष्ट की हुई हस्तलिखित मूल प्रति को जला दिया जाय और स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपे सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण के अनुसार आगामी सत्यार्थप्रकाश छापने आरम्भ कर दें।

(6) M – जिन शब्दों, वाक्यों या पैरों को इनके असली स्थान से हटाकर आगे पीछे रख दिया है, उन पर M का चिन्ह लगाया है। इसका अर्थ है Misplaced (स्थानान्तरित–टहलावत)

नोट – Welcome का अन्तिम अक्षर E है। यह इसमें पहले भी आ चुका है। इसलिये इसको पहले वाला Extended या Extension ही शब्द होने से माफ कर दिया है अर्थात् छोड़ दिया है।

इस प्रकार Wrong, Extended, Left, Changed, Old, Misplaced इन अंग्रेजी के छः शब्दों में से प्रत्येक का आरम्भिक अक्षर लेकर Welcome सूत्र (फार्मूला) बनाकर भ्रष्ट किये गये सत्यार्थ प्रकाशों में W-E-L आदि चिह्न लगाये हैं। इन छः प्रकार के भ्रष्टीकरणों के अतिरिक्त यदि और अन्य प्रकार का भ्रष्टीकरण मिला है तो वहां लिखकर समझा दिया है कि यह अमुक प्रकार का भ्रष्टीकरण है। ऊपर लिखे परिवर्तनों का सामूहिक नाम भ्रष्टीकरण है। सारे चिह्नों की गिनती करने से मालूम हुआ कि महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखवाये, तीन बार संशोधित करके उनके अपने जीवनकाल में छपवाये सत्यार्थप्रकाश में कम से कम 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण कर दिये आर्यों ने। धन्य हो ! धन्य हो !! धन्य हो !!! दयानन्द के चेलों को धन्य हो !!!! किसी ने सच ही कहा है, "गुरु गुड़ और चेला शक्कर।"

प्रश्न – आपने ऊपर लिखा है 'कम से कम 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण – – – – – – –। इसमें 'कम से कम' ये तीन शब्द लिखने में क्या रहस्य है ?

उत्तर – 'कम से कम' ये तीन शब्द लिखने का यही रहस्य है कि भ्रष्टीकरण और भी हैं और निश्चित रूप से हैं।

प्रश्न – इसका कैसे पता लगा कि भ्रष्टीकरण निश्चित रूप से और भी हैं?

उत्तर – मैंने नकली सत्यार्थप्रकाशों को असली सत्यार्थप्रकाश से

आरम्भ से अंत तक बड़ी सावधानी से मिलाया है। जैसे असली सत्यार्थप्रकाश का आधा वाक्य पढ़कर नकली का भी वही आधा वाक्य पढ़ता था। यदि कोई भ्रष्टीकरण मिलता तो इस पर Welcome फार्मूले के हिसाब से निशान लगा देता फिर शेष आधे वाक्य का मिलान करता था। इस प्रकार चार नकली सत्यार्थप्रकाशों का असली से मिलान किया। एक नकली सत्यार्थप्रकाश को मिलाकर इस के भ्रष्टीकरणों की गिनती की तो कम से कम 1797 (एक हजार सात सौ सतानवें) हुई। दूसरे नकली सत्यार्थप्रकाश को मिलाते समय बीच–बीच में यह इच्छा भी होती थी कि देखूँ यह भ्रष्टीकरण पहले मिलान किये में है वा नहीं। देखने पर कभी कोई मिल जाता कभी नहीं मिलता, परन्तु इन मिले हुए भ्रष्टीकरणों में कोई इक्का–दुक्का बिना निशान लगा मिलता तो सोचता कि नजर वा ध्यान की भूल–चूक से छूट गया है। दूसरे भ्रष्ट किये सत्यार्थप्रकाश में कम से कम 9191 (नौ हजार एक सौ इक्यानवें) भ्रष्टीकरण हुए। यह पहले से ग्यारह वर्ष बाद में प्रकाशित किया गया है। इन दोनों का सम्पादन और प्रकाशन स्वनाम धन्य प्रातः स्मरणीय, श्री श्री 1008 कलयुगी नैष्ठिक ब्रह्मचारी, गुरुकुल झज्जर के स्नातक, महाविद्वान्, व्याकरण–दर्शन–इतिहासाचार्य, दयानन्द के सुधारक, स्वामी ओमानन्द सरस्वती के प्रिय शिष्य ऋषि दयानन्द के गुरु के नाम राशि महाराज अधिराज श्रीयुत् 'विरजानन्द दैवकरणि' जी के द्वारा हुआ है। मेरे द्वारा मिलान किये गये चारों भ्रष्ट नकली सत्यार्थप्रकाशों को बिगाड़ने का शुभ श्रेय इन्हीं महात्मा 'विरजानन्द दैवकरणि' जी महाराज को ही मिला है। इस संसार के अहोभाग्य हैं कि ऐसे–ऐसे अतुल्य महापुरुष इस धरती पर अवतरित हुए हैं।

इसी प्रकार तीसरे और चौथे नकली सत्यार्थप्रकाशों में भी भूल चूक से छूटे हुए बिना निशान लगाये भ्रष्टीकरण मिलते रहे। तीसरे

में भ्रष्टीकरणों की संख्या कम से कम 10095 (दश हजार पचानवें) है, यह उपरोक्त दूसरे सत्यार्थप्रकाश से चार वर्ष बाद में छपवाया है। चौथे भ्रष्ट सत्यार्थप्रकाश के भ्रष्टीकरणों की संख्या कम से कम 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) है। यह ऊपर लिखे तीसरे से चार वर्ष पीछे छपा है। महान् आश्चर्य ! क्या ? चारों भ्रष्ट सत्यार्थप्रकाशों की मूलप्रति एक, चारों का सम्पादक 'विरजानन्द दैवकरणि' एक परन्तु चारों में भ्रष्टीकरणों की संख्या सब की अलग–अलग।

एक बार ऐसी बारिस हुई, इस भारत के म्हां।
बड़ पीपल तो डूबे देखे, चिड़ियां प्यासी जांह्।।

चारों भ्रष्ट सत्यार्थप्रकाशों का मिलान हो चुका, चारों के भ्रष्टीकरण गिनकर लिख लिये, परन्तु अब भी जब कभी कहीं–कहीं से मिलान करता हूँ तो चारों में इक्का–दुक्का नया भ्रष्टीकरण मिल ही जाता है। मैं धर्मसंकट में फंस गया। अगर गिनी हुई संख्या लिखता हूँ तो पूरी सच्चाई न होगी। मैंने दुःखी होकर परमपिता परमात्मा से अत्यन्त दीनभाव से प्रार्थना की, "हे प्रभु ! आपको पता ही है कि मैंने सन् 1952 ई॰ में महात्मा गाँधी की आत्मकथा पढ़कर झूठ बोलना छोड़ दिया था। मुझे इस धर्मसंकट से बचाओ।" मन में विचार आया कि 'कम से कम' इन तीन शब्दों का प्रयोग करने से पूरी सच्चाई प्रकट हो सकती है। पाठकगण! आप मेरे 'कम से कम' इन तीन शब्दों के लिखने का रहस्य समझ गये होंगे।



(4) भ्रष्टीकरणकर्त्ता श्रीमानों का शुभ परिचय

आरती

ओइम् जय भ्रष्टीकरणकर्त्ता, स्वामी जय भ्रष्टीकरणकर्त्ता
भक्त जनों के सुख को, छिन में दूर करें, ओइम् जय भ्रष्टीकरण कर्त्ता।

(1) जो ध्यावे फल पावे, सुख विनशे मन का। स्वामी सुख विनशे——
दुःख विपत्ति घर आवे, चैन मिटे तन का।। ओइम् जय भ्रष्टीकरण कर्त्ता।

(2) सत्यार्थप्रकाश का मिथ्यार्थप्रकाश किया। स्वामी मिथ्या———
तुम बिन और न दूजा, सही ज्ञान का नाश किया।। ओइम् जय भ्र॰——

(3) तुम पूरण दुष्टात्मा, तुम कुपथगांमी। स्वामी तुम कुपथ॰——
तीन ऐषणा जग में, तुम इनके स्वामी।। ओइम् जय भ्रष्टीकरणकर्त्ता।

(4) तुम कुमति के सागर, रस में विष भर्ता। स्वामी रस———
हे मूरख खल कामी, कृपा करो भर्ता।। ओइम् जय भ्रष्टी॰——

(5) तुम हो एक अगोचर, पाप के प्राणपति। स्वामी पाप के———
चाहे ब्रह्मा भी समझावे, आवे ना सुमति।। ओइम् जय भ्रष्टी॰——।

(6) दुष्ट बन्धु सुख हर्त्ता, तुम तक्षक काले। स्वामी तुम———
ग्रन्थों को भ्रष्ट करो मत, पापी कलम उठाले।। ओइम् जय भ्रष्टीकरण कर्त्ता।

(7) अपने विकार मिटाओ, आत्मा तन मन के। स्वामी आत्मा———
सत्यार्थप्रकाश छपाओ, द्वितीय संस्करण से।। ओइम् जय भ्र॰——।

(8) भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं की आरती (इन दुष्टन की आरती) जो कोई भी गावे। स्वामी जो ———
कहत रतिराम आर्य, मन चाहे दुःख पावे।। ओ३म् जय भ्रष्टीकरण कर्ता।

(29–2–2004)

प्रश्न – ऊपर कहे हुए भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं का शुभ परिचय देते हुए बताने का कष्ट करें कि इन कलयुगी महापुरुषों ने किस–किस सत्यार्थप्रकाश में कितने–कितने भ्रष्टीकरण किये हैं ?

उत्तर – स्वामी दयानन्द सरस्वती के मोक्षधाम में जाने के शीघ्र ही पश्चात् प्रकाशकों, सम्पादकों इत्यादि महानुभावों ने सत्यार्थप्रकाश में मिलावट, हटावट, बदलावट, टहलावत आदि भ्रष्टीकरणों का शुभारम्भ कर दिया था। पहले पहल बहुत थोड़े परिवर्तन किये थे, ताकि लोगों को पता भी न लगे और इन महाशयों की अहमन्यता की प्यास (तृष्णा) भी बुझ जावे। पर ज्यों–ज्यों धीरे–धीरे यह तृष्णा बढ़ती गई त्यों–त्यों भ्रष्टीकरणों की संख्या भी बढ़ती गई। पहले वाले प्रकाशक आदि से बाद वाले यही सोचते रहे कि "हमारी भी खोटी चवन्नी चल जावे अर्थात् हम भी महर्षि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों में अपनी दूषित अनार्ष शब्दावली घुसेड़ कर दयानन्द के गुरु बनने का सौभाग्य प्राप्त कर लें। ठीक है हमारा नाम लेखक के रूप में न चमकेगा तो सम्पादक या प्रकाशक के रूप में तो चमक ही जावेगा।"

एक बार की बात है कि सनीमा हाल के पार्क में कुछ बच्चे 'चलगी ! चलगी !! का शोर गुल मचाकर उछल कूद रहे थे। पास ही खड़े पुलिस के सिपाही ने बच्चों से पूछा, "अरे कहां चलगी ?" बच्चों ने एक स्वर से ऊँची आवाज में कहा, "सनीमा हाल में चलगी।" सिपाही ने फटाफट टैलीफोन बूथ पर जाकर थानेदार साहब को फोन पर कहा, "साहब जी ! सनीमा हाल में चलगी।" थानेदार ने उसी समय एस॰पी॰ साहब को फोन किया और कहा, "साहब जी ! सनीमा

हाल में चलगी जी !" एस॰पी॰ साहब बहादुर ने डी॰सी॰ साहब को फोन पर बताया कि सनीमा हाल में चलगी। डी॰सी॰ साहब बहादुर ने हुक्म दिया कि सनीमा हाल का घेराव कर लो और मैं भी आ रहा हूँ। कुछ ही मिनटों में सनीमा के चारों ओर पुलिस ही पुलिस दिखाई दी। डी॰सी॰ साहब ने सनीमा के मैनेजर से पूछा "किस टाईम चलगी ? मैनेजर ने कहा, "साहब यहां तो नहीं चली।" डी॰सी॰ साहब ने एस॰पी॰ साहब से पूछा, "क्या चलगी ?" एस॰पी॰ साहब ने थानेदार से पूछा कि क्या चलगी ? थानेदार ने उस सिपाही से पूछा, "क्या चलगी ? सिपाही ने उन बच्चों से पूछा कि क्या चलगी ? बच्चों ने खुशी से उछलते हुए कहा, "सनीमा की टिकट लेते समय हमारी खोटी चवन्नी चलगी।"

ठीक इसी प्रकार इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं की खोटी–चवन्नी चलगी क्योंकि आर्य समाज के नेता और पाण्डित्यपूर्ण कर्णधार आपस की लिहाज या अपनी लीडरी आदि की रक्षा के लिये इस 'हत्याकाण्ड' पर मौन साधे बैठे हैं। भगवान दयानन्द का तप जागेगा, अवश्य जागेगा। अंगड़ाई लेगा और इस असह्य अत्याचार को भस्मसात् कर देगा, इसी विश्वास के साथ यह 'भाण्डाफोड़' किया जा रहा है। परेश सहाय हों।

ऊपर कहे भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं की संख्या एक नहीं, दो नहीं सैकड़ों में है। अब किस–किस का परिचय दिया जाए। किस–किस के कुकृत्य गिनाए जायें। सच पूछो तो इन सैकड़ों दुष्टों की जरूरत नहीं थी, बल्कि सत्यार्थप्रकाश रूपी बाग को उजाड़ने के लिये एक ही उल्लू काफी था। कहा भी है :–

इक बाग को खाली करने को जब एक ही उल्लू काफी है।
हर शाख पै उल्लू बैठा हो, अंजामे गुलिश्तां क्या होगा।।

जब से मुझे सन्देह हुआ कि अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में कुछ परिवर्तन हो रहे हैं तब से मैंने अनेकों प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित

सत्यार्थप्रकाश पढ़े। एक को छोड़कर बाकी सब में थोड़े या बहुत परिवर्तन अवश्य ही कर दिये हैं। पहले वाले सत्यार्थप्रकाशों में बहुत कम अदल बदल हुई, परन्तु आजकल तो परिवर्तनों की बाढ़ सी आ गई है जैसे :–

(1) वैदिक यन्त्रालय – अजमेर में छपे आज से 58 (अठावन) वर्ष पूर्व विक्रम संवत् 2002 (दो हजार दो) के संस्करण में कम से कम 733 (सात सौ तेंतीस) भ्रष्टीकरण हैं।

(2) परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर के ईस्वी सन् 1998 के प्रकाशन में कम से कम 10095 (दश हजार पचानवें) भ्रष्टीकरण हैं।

(3) भगवती लेजर प्रिंट्स, 46/5, ईस्ट आफ कैलाश, नई दिल्ली के ईस्वी सन् 2002 के प्रकाशन में कम से कम 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण हैं।

उपरोक्त सैकड़ों भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का शुभ परिचय देने में पुस्तक का कलेवर बहुत ही अधिक बढ़ जायेगा। इस विस्तार से बचने के लिये कुछ मुख्य मुख्य महानुभावों का परिचय देना ही उचित समझा है। (1) सत्यार्थप्रकाश रूपी बाग को उजाड़ने वाले बहुत बड़े दो उल्लू इस पवित्रित भूमि पर हुए थे। ये महाशय आजकल मनुस्मृति अध्याय 12/श्लोक 42 और 43 के अनुसार स्थावर वृक्षादि जैसे गूलर–बेर में कीड़े, मच्छी, सर्प, कछुआ, पशु, मृग और सूअर की योनि में जाकर मौज मस्ती कर रहे हैं। इनके मुबारक नाम हैं स्वामी वेदानन्द जी 'तीर्थ' तथा आचार्य उदयवीर जी शास्त्री। स्वामी वेदानन्द जी 'तीर्थ' 'स्वाध्याय सन्दोह' जैसे अनेक मार्के के ग्रन्थों के लेखक निधन से पूर्व आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री थे। सभा के प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष और उपदेशक विद्यालय लाहौर के आचार्य पद पर तथा अन्य अनेक उत्तरदायित्वपूर्ण आर्यसमाज के कार्यों को स्वामी जी महाराज करते रहे। इन्होंने सत्यार्थप्रकाश में

3822 (तीन हजार आठ सौ बाइस) के लगभग बिना नोट दिये परिवर्तन कर दिये हैं। इससे साधारण पाठक तो समझ ही नहीं पाता कि इसमें मिलावट, हटावट आदि भी किये गये हैं। 80 (अस्सी) के लगभग टिप्पणियां तो सभी को दिखाई देती हैं। स्वामी वेदानन्द जी तीर्थ की उपरोक्त टिप्पणियों के मेरे खण्डन से कोई यह न समझ ले कि यह स्वामी जी कोई साधारण विद्वान् थे, परन्तु वे एक सिद्धहस्त लेखक एवं वेदशास्त्र तथा अन्य संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ थे। हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, सिन्धी, काशमीरी, पश्तो, उर्दू आदि अनेक देशीय भाषाओं के मर्मज्ञ थे। इसके सिवाय अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, ग्रीक, हिब्रू, फ़ारसी, अरबी आदि विदेशीय भाषाओं के भी विद्वान् थे, परन्तु योगी हुए बिना तीनों ऐषणाओं पर काबू पाना असम्भव है। इन तीनों, दो या किसी एक के वशीभूत होकर मनुष्य ऐसी गलतियां कर बैठता है जैसी स्वामी जी महाराज ने की।

स्वामी वेदानन्द जी 'तीर्थ' ने आठ वर्षों के महान् परिश्रम से टिप्पणियाँ आदि तैयार की थी, परन्तु सन् 1947 में देश के विभाजन के कारण पुस्तकें, लेख, नोट्स आदि सब सामग्री नष्ट हो गई। भारत आकर अमृतसर में पुनः यह कार्य आरम्भ किया, परन्तु आंखों में मोतिया उतरने के कारण लेखन कार्य धीमा रहा। फिर अनेक ग्रंथ साथ लेकर ज्वालापुर (हरिद्वार) रहने लगे। सन् 1950 में स्वामी जी किसी कार्यवश दिल्ली आये तो यहां बीमार हो गये। काफी दिन इर्विन हस्पताल में इलाज चला। पीछे से ज्वालापुर वानप्रस्थाश्रम में कुछ ऐसी घटनायें हुई, जिनसे टिप्पणी लिखने के लिए इकट्ठे किये अनेकों ग्रन्थ, नोट्स, हस्तलेख आदि सब नष्ट भ्रष्ट हो गये।

स्वामी जी की बीमारी कुछ कम हुई तो 'दीदानहाल' में रहकर तीसरी बार फिर टिप्पणी लिखने का कार्य आरम्भ करके अप्रैल, 1955 में यह कार्य पूरा किया। इस प्रकार स्वामी वेदानन्द तीर्थ ने अपने जीवन के अनमोल सोलह वर्ष इस व्यर्थ के परिश्रम

में नष्ट किये। स्वामी जी की मृत्यु के बाद उनका यह भ्रष्ट किया हुआ सत्यार्थप्रकाश फरवरी, 1957 में विरजानन्द वैदिक संस्थान ने छपवाया।।

उपरोक्त स्वामी जी के प्रबल समर्थक हैं आचार्य उदयवीर जी शास्त्री। इनका जन्म 6 जनवरी 1894 बुलन्द शहर जिले के बनैल ग्राम में और मरणे 16 जनवरी 1991 में हुआ। ये महाराज विद्या भास्कर, वेदरत्न, न्याय–वैशेषिक, सांख्य–योग तीर्थ, वेदान्ताचार्य, विद्यावाचस्पति, शास्त्रशेवधि महान् विद्वान् थे। इन्होंने छः दर्शनों का हिन्दी में भाष्य किया है। भाष्य तो अच्छा है, परन्तु इन्होंने कपिल मुनि के सांख्य दर्शन में 77½ (साढ़े सतहत्तर) सूत्र प्रक्षिप्त बताये हैं। महर्षि दयानन्द ने इन प्रक्षिप्त बताये सूत्रों में से कई सूत्र अपने ग्रन्थों में प्रमाण रूप में दिये हैं। आचार्य उदयवीर शास्त्री ने स्वामी वेदानन्द जी की टिप्पणियों की पुष्टि करने के लिये एक बहुत लम्बी भूमिका लिखी है। स्वामी दयानन्द का सुधार करने के लिये इन दोनों महानात्माओं को बहुत–बहुत धन्यवाद देता हूँ। परमात्मा से प्रार्थना है कि ये दोनों पवित्र आत्मायें ऊपर लिखी मौज मस्ती की योनियों में सदा मौज करती रहें।

(2) ऊपर लिखे स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' तथा आचार्य उदयवीर शास्त्री ने जो सत्यार्थप्रकाश में भ्रष्टीकरण किये हैं वे सब विद्वत्तापूर्ण ढंग से किये हैं, परन्तु जिस महानात्मा का नीचे जिक्र करने जा रहा हूँ उन ने बड़े भद्दे और अनाड़ी ढंग से सत्यार्थप्रकाश को बिगाड़ा है। हाथ कंगन को आरसी क्या और पढ़े लिखे को फारसी क्या। अभी सामने आ जायेगा। जो नाम मेरी आत्मा से मन में और मन से वचन में तथा वचन से मेरे पैन की नोक पर आ गया है वह है कलियुगी नैष्ठिक ब्रह्मचारी 'विरजानन्द दैवकरणि'। ये महाराज गुरुकुल झज्जर के स्नातक और स्वामी ओमानन्द सरस्वती के प्रियतम शिष्यों में से एक हैं। पाठकगण ! यहां पर स्वामी ओमानन्द जी महाराज और गुरुकुल झज्जर का कोई अपराध नहीं, किन्तु कभी–कभी

गान्धारी जैसी सती साध्वी माता के भी दुर्योधन जैसा दुष्ट गोत्रहत्यारा, स्वदेश विनाशक और नीच भी जन्म ले लेता है स्वामी ओमानन्द जी महाराज जब कभी इनको प्यार भरे गुरु से धमकाया करते तो धूर्त ! पाखण्डी !! दुष्ट !!! इत्यादि आशीर्वाद रूपी अलंकारों से सजाया करते थे। इस महानात ने अपने आदरणीय गुरु के आशीर्वादों को झूठे नहीं हो दिया। ये दयानन्द की संस्था में पढ़े, खेले–कूदे और मुफ्त रोटियां खाते रहे और अन्त में यह बदला दिया कि जिस थाल में खाया उसी में छेंक कर दिया। सत्यार्थप्रकाश रूपी माँ का ज्ञान दूधी पीकर माँ को ही नंगा कर दिया। वाह रे माँ के कृतघ्न पुत्र ! तुझे धिक्कार है।

यह महाशय विरजानन्द दैवकरणि कभी गुरुकुल झज्जर में रहते तो कभी गुरुकुल गौतम नगर में चले जाते हैं। फिर कभी वापस गुरुकुल झज्जर में आ जाते हैं। भलाई और परोपकार की खुशबू बांटते फिर हैं। देखो भाई ! इन्होंने केवल और केवल मात्र चार ही सत्यार्थप्रकाश को बिगाड़ा है जिनका क्रमशः नीचे वर्णन किया जाता है।

(1) महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित परोपकारिणी सभा अजमेर (राजस्थान, आर्यावर्त) के वर्तमान प्रधान स्वामी ओमानन्द सरस्वती (गुरुकुल झज्जर रोहतक, कन्या गुरुकुल नरेला, दिल्ली) ने 'महर्षि दयानन्द सरस्वती की निर्वाण शताब्दी' के अवसर पर यह 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ विभिन्न लोगों के दान से दो लाख पचास सहस्र रुपये व्यय करके श्री विरजानन्द दैवकरणि ग्राम भगड़याणा तथा श्री यशपाल शास्त्री ग्राम मदाना के पुरुषार्थ से चार सौ पच्चीस ताम्र पत्रों पर उत्कीर्ण कराया 2040 विक्रम संवत् कार्तिक अमावस्या दीपावली पर्व सृष्टि संवत् – 196085308 कलिसंवत् – 5083, दयानन्दाब्द – 159।

उपरोक्त 'ताम्रपत्रों के अनुसार' सत्यार्थप्रकाश कागज पत्रों

पर भी स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी महाराज ने छपवाया था। इसका मिलान ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में छपे सत्यार्थप्रकाश से मैंने किया तो पता लगा कि कम से कम 1797 (एक हजार सात सौ सतानवें) भ्रष्टीकरण ताम्रपत्रों के सत्यार्थप्रकाश में भी उत्कीर्ण करा (खुदवा) दिये हैं ओमानन्द के प्रिय चेलों (शिष्यों) ने। इससे पता चलता है कि स्वामी ओमानन्द सरस्वती ने अपने विश्वास घातक शिष्यों पर विश्वास करके ताम्रपत्रों की खुदाई (उत्कीर्णता) पढ़ी नहीं अन्यथा इनको कच्चों को चबा जाते !!

(2) इस भले आदमी विरजानन्द दैवकरणि ने जो दूसरे सत्यार्थप्रकाश का गुड़ गोबर किया है उसका प्रकाशक है 'हरयाणा साहित्य संस्थान गुरुकुल झज्जर, रोहतक। यह ऐसे हुआ कि स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी ने अपना पुस्तकालय अलग से स्थापित कर लिया और गुरुकुल का पुस्तकालय अलग से रह गया। गुरुकुल पुस्तकालय के प्रकाशन विभाग का अध्यक्ष विरजानन्द दैवकरणि पहले से ही था। सत्यार्थप्रकाश की हस्तलिखित मूल प्रति इसके पास उसी समय से थी जिस समय ओमानन्द सरस्वती ने इसको ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराने के लिये परोपकारिणी सभा अजमेर से इसे दिलाई थी। स्वामी जी ताम्रपत्रों के अनुसार छपे सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशकीय में लिखते हैं, "शुद्ध पाठों हेतु परोपकारिणी सभा अजमेर से मूल प्रति प्राप्त करने का यत्न किया गया तो बड़ी कठिनता से मिल पाई।" यह महाशय ताम्रपत्रों में खुदवाने से पूर्व मूलप्रति में साथ की साथ कुछ– कुछ परिवर्तन करते रहे। मूलप्रति का जितना भाग खुदवाने के लिये भेजते उतने में परिवर्तन पहले ही कर देते। इस प्रकार धीरे–धीरे सम्पूर्ण मूलप्रति में गलतावट, मिलावट, हटावट, बदलावट, टहलावत इत्यादि रूप से परिवर्तन कर इसमें कम से कम 1797 (एक हजार सात सौ सतानवें) भ्रष्टीकरण कर दिये। जब स्वामी जी और गुरुकुल के पुस्तकालय अलग– अलग हो गए

तब इन महाशय विरजानन्द के खुले डंके हो गये। अब स्वामी ओमानन्द का भी भय न रहा कि वे कुछ टोका टाकी करें। मेरा अनुमान है कि विरजानन्द दैवकरणि ने इस समय यही सोचा होगा कि अब बहती गंगा में गोते लगाने का सुनहरी मौका है। महर्षि दयानन्द ने जिन– जिन का खंडन सत्यार्थप्रकाश में किया है उन उन लोगों से लाभ उठाने का यह शुभ अवसर हाथ से न निकलने देना चाहिये।

पी प्यारे पी, जी लगाकर पी।
जब निकल जायेगा जी, तो कौन कहेगा पी।।

इस भ्रष्ट फार्मूले के अनुसार इन्होंने परोपकारिणी सभा अजमेर से बड़ी कठिनता से मिली हुई मूलप्रति को जी लगाकर भ्रष्ट करके भ्रष्टीकरणों की संख्या कम से कम 9191 (नौ हजार एक सौ इक्यानवें) कर दी। इस भ्रष्ट मूल प्रति की एक नकल अपने पास रख के मूलप्रति जहां से ली थी, चुपचाप वहीं लौटा दी। वहां किसी ने खोल कर देखी ही नहीं तो कैसे पता लगता कि अमृत में जहर भी मिला दिया है।

भ्रष्ट की हुई मूलप्रति की नकल जो दैवकरणि के पास है उसके विषय में ये लिखते हैं, "मैंने सत्यार्थप्रकाश की मूल प्रति भारत सरकार से प्राप्त की है।" देखें 'भगवती लेज़र प्रिंटस, नई दिल्ली अक्तूबर–नवम्बर, 2003 का मासिक मुखपत्र पथ प्रदर्शिका पृष्ठ 12'

उपरोक्त भ्रष्ट नकली मूलप्रति की नकल से ही 'हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर (रोहतक) द्वारा प्रकाशित 21000 (इक्कीस हजार) सत्यार्थप्रकाश इसी विरजानन्द दैवकरणि की देख–रेख में ईस्वी सन् 1994 में छपे थे। इसमें कम से कम 9191 (नौ हजार एक सौ इकयानवें) भ्रष्टीकरणों की शुभप्राप्ति हुई है।

(3) ईस्वी सन् 1998 में छपे परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय, दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर द्वारा प्रकाशित

सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशकीय वक्तव्य में गजानन्द आर्य, सभामन्त्री लिखते हैं, "परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की अनेक वर्षों से यह इच्छा थी कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश आदि सभी ग्रन्थों को मूल हस्तलेखों से पुनः मिलान करके नवीन शुद्धतम संस्करण प्रकाशित किये जाएँ। सम्पादन कुशल श्री विरजानंन्द दैवकरणि ने अपनी सेवाएँ प्रदान कर इस कार्य को दक्षता एवं निष्ठा से सम्पन्न करते हुए अपने निष्काम कार्य के द्वारा ऋषि ऋण से अनृण होने का अवसर प्राप्त किया है।" उपरोक्त लेख के अगले ही पृष्ठ चार पर स्वयं विरजानन्द दैवकरणि लिखते हैं, "इस संस्करण में महर्षि दयानन्द सरस्वती के एक–एक अक्षर का मिलान करके उनके वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा गया है।"

उपरोक्त लेख से तीन बातें सिद्ध होती हैं :–

प्रथम यह कि भ्रष्टीकरण रूपी इस कुकृत्य में परोपकारिणी सभा के अधिकारी भी सम्मिलित हैं। अरि परोपकारिणी सभा ! तुझे जनानी होकर भी शर्म नहीं आई ! सर्वथा नंगी होकर ही बाजारों में घूमने लग गई। प्राकृतिक रेखाओं को तो ढाँप लिया होता !

दूसरी यह कि महर्षि दयानन्द के सभी ग्रन्थों को भ्रष्ट कर दिया है।

तीसरी यह है कि विरजानन्द दैवकरणि को अबके दूसरी बार मूलप्रति अनायास ही मिल गई है। इंजन हो गया फेल, खड़ी–खड़ी सिटी दे रही रेल, हो तेरा क्या कहना !! अब की बार मूलप्रति को और भी अधिक भ्रष्ट करके भ्रष्टीकरणों की संख्या कम से कम 10095 (दश हजार पचानवें) तक पहुंचा दी। इसीलिये तो सत्यार्थप्रकाश के इस ईस्वी सन् 1998 के संस्करण में परोपकारिणी के परोपकार रूपी भ्रष्टीकरणों की संख्या कम से कम 10095 (दश हजार पंचानवें) पाई गई है। आर्य समाज के आठवें नियम का सर्वथा विपरीत पालन करके अपनी योग्यता का शुभ प्रदर्शन किया है। वाह जी ! वाह जी !! वाह !!! ऋषिऋण से पूरी तरह उऋण हो गये।

(4) भगवती लेज़र प्रिंटस, 46/5, कम्यूनिटी सैंटर, ईस्ट आफ कैलाश, नई दिल्ली द्वारा ईस्वी सन् 2002 में छपे सत्यार्थप्रकाश के 'यह संस्करण' नामक लेख में श्री विजय कुमार 'झा' (प्रकाशक) लिखते हैं, "इस संस्करण में मूलप्रति से एक–एक अक्षर का मिलान करके महर्षि दयानन्द सरस्वती के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा गया है। परोपकारिणी सभा के अधिकारियों का पूर्ण सहयोग मिला तथा श्री विरजानन्द दैवकरणि ने इसके प्रूफ संशोधन और मूल से मिलान करने में अपार परिश्रम किया।"

इस लेख से दो बातें निकलती हैं – पहली यह कि परोपकारिणी सभा के अधिकारी तथा विरजानन्द दैवकरणि सत्यार्थप्रकाश के नष्ट भ्रष्ट करने में एड़ी से चोटी तक का सारा जोर लगा रहे हैं इनके किये भ्रष्टीकरणों का कुछ नमूना अगले पाठ 'मूलप्रति' में दिखायेंगे जिससे सब को मालूम हो जायेगा कि ये अपने गुरु दयानन्द की रचना सत्यार्थप्रकाश के हत्यारे हैं। दूसरी बात यह कि विरजानन्द दैवकरणि को तीसरी बार भी मूलप्रति प्राप्त हो गई और इसने इसे दिल खोलकर बिगाड़ा। यह महाशय जन्म से हकलाकर बोलते हैं इससे मालूम होता है कि इन्होंने पहले जन्म में वाणी का पाप बहुत ही कम किया है जिससे परमात्मा ने इनको हकलाकर बोलने की छोटी सी सजा दी है, परन्तु इस जन्म में तो इन्होंने ऋषि की वाणी चुराई है। मनुस्मृति अध्याय 11 श्लोक 51 में लिखा है कि वाणी का चुराने वाला गूंगेपन को प्राप्त होता है। आगे इसी अध्याय के श्लोक 88 में लिखा है कि गुरु का विरोध करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करे। क्या परमात्मा इन ब्रह्महत्यारों को माफ कर देगा ? कभी नहीं। ईस्वी सन् 2002 में भगवती लेज़र प्रिंट्स से छपने वाले सत्यार्थप्रकाश के सौभाग्यवान् प्रकाशकों का शुभ परिचय निम्न प्रकार है :

आर्यसमाज, 787–सतना बिल्डिंग, मालवीय चौक के पास, गोल बाजार, राइट टाउन, जबलपुर पिन–482002,

दूरभाष – 312040

प्रधान – आचार्य रामलाल आर्य।
उप–प्रधान – प्रोफेसर महेशदत्त मिश्र (अध्यक्ष मध्यप्रदेश स्वतंत्रता सेनानी महासंघ, पूर्व सांसद)
मन्त्री – राजेन्द्र कुमार साहू

इन तीनों के अतिरिक्त चौथा प्रकाशक है :

विजय कुमार 'झा' 46/5 सामुदायिक केन्द्र,
पूर्वी कैलाश, नई दिल्ली–65

इस चाण्डाल चौकड़ी ने उक्त सत्यार्थप्रकाश में कम से कम 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण विरजानन्द दैवकरणि से करा दिये।

नोट – एक दिन एक मीमांसक जी मिले। सत्यार्थप्रकाश पर चर्चा शुरू हो गई। बातें करते–करते इन्होंने कहा कि हमारे गुरु स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश में लिखने के लिये पूरी एक सौ टिप्पणियाँ तैयार कर रखी हैं। उन्होंने सत्यार्थप्रकाश के कई वर्षों के गहरे अध्ययन व कठिन परिश्रम के बाद सौ गलतियां इसमें पकड़ी हैं। मैंने कहा कि अपने गुरु स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती जी से कहना कि उक्त टिप्पणियों की जांच मुझ से करालें अन्यथा ऐसा न हो कि स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' की तरह सारी की सारी टिप्पणियां गलत लिख बैठें। मीमांसक जी तो चले गये।

मैंने बहुत दिनों तक इंतजार किया, परन्तु स्वामी जी महाराज की ओर से कोई आदेश नहीं मिला। बहुत समय के बाद मैंने स्वामी जी को पत्र में ऊपर कही बातें लिख भेजी। एक मास के बाद स्वामी जी का पत्र मिला। पत्र में उन्होंने सत्यार्थप्रकाश की आठ दश गलतियाँ दिखाई थीं। मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ कि संस्कृत का इतना बड़ा विद्वान्, अनेकों ग्रन्थों का लेखक, कई सौ वेद मन्त्रों का भाष्य

कर्त्ता भी दयानन्द की इन सर्वथा सही बातों को गलत कह रहा है मन में सोचा कि स्वामी जी तीन ऐषणाओं में से किसी ऐषणा के चपेटे में तो नहीं आ गये, क्योंकि ये ऐषणायें बड़े–बड़े विद्वानों को लपेटा लगा लेती हैं। खैर मैंने उन सब गलतियों को युक्ति प्रमाणपूर्वक सही ठहराकर स्वामी जी को लिख भेजा। एक साल से ऊपर हो गया। स्वामी जी का कोई उत्तर नहीं आया है।

प्रश्न :– प्राध्यापक राजेन्द्र 'जिज्ञासु' वेद सदन। कविता कुञ्ज अबोहर (पंजाब), ने एक सौ से अधिक पुस्तकें लिखी हैं। इन्होंने अपनी पुस्तक 'बहनों की बातें' के पृष्ठ 100 (सौ) पर लिखा है - 'स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' एक बहुत बड़े विद्वान् संन्यासी ने सत्यार्थप्रकाश की टीका की है उसे अवश्य मंगवायें, परन्तु आपने ऊपर कहा है कि स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' की लिखी सारी की सारी टिप्पणियाँ गलत हैं। अब किसकी बात सच मानें ?

उत्तर – स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' ने सत्यार्थप्रकाश में कम से कम 3822 (तीन हजार आठ सौ बाईस) बिना नोट दिये परिवर्तन कर दिये हैं। शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् लोग तो जान जायेंगे कि ये परिवर्तन हैं किसी ने बाद में मिलाये हैं, क्योंकि इनकी भाषा, भाव और शैली अनार्ष और वेद विरूद्ध है, परन्तु साधारण पाठक तो इन्हें ऋषि दयानन्द के ही शब्द–वाक्य समझकर आत्मसात् कर लेंगे और अवैदिक ज्ञानधारी हो जायेंगे। दूसरे 80 (अस्सी) के लगभग नोट तो सब को दिखते हैं। स्वामी वेदानन्द के किये मुख्य–मुख्य भ्रष्टीकरण की समीक्षा क्रमशः समुल्लासों में की जायेगी, परन्तु नमूने के तौर पर एक भ्रष्टीकरण समीक्षा सहित यहां दिया जाता है :–

सत्यार्थप्रकाश सातवें समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने आठ वसुओं में 'द्यौ' और 'अन्तरिक्ष' के स्थान पर 'जल' और 'आकाश' दिये हैं, परन्तु स्वामी वेदानन्द जी ने 'द्यौ' और अन्तरिक्ष ही दिये हैं और फुटनोट में लिखा है, "पृथिवी का अर्थ जल सहित पृथिवी है

अतः पृथिवी के आगे 'जल' न होकर 'द्यौ' होना चाहिये। वह वैसा ही कर दिया गया है और आकाश के स्थान में 'अन्तरिक्ष' कर दिया गया है।" स्वामी वेदानन्द जी ने अपनी पुष्टि में बृहदारण्यकोपनिषद् अ॰ 3 ब्राह्मण 9 का एक पाठ देकर दो बार लिखा है, "हमने डंके की चोट संशोधन किया है। हमने डंके की चोट संशोधन किया है।" देखो प्रथम संस्करण।।

समीक्षा – ऊपर कही 'डंके की चोट' वाली बातों से ऐसा लगता है कि वेदानन्द जी कह रहे हैं कि बताओ दयानन्द का ज्ञान अधिक है या हमारा। कहां गया दयानन्द का वेदशास्त्रों और योगसमाधि का ज्ञान। हमारी योग्यता और खोज दयानन्द से अधिक है क्योंकि 'गुरु गुड़ और चेला शक्कर।' पाठकगण! आओ देखें कि स्वामी वेदानन्द तीर्थ की डंके की चोट में कितना दम है। महर्षि दयानन्द सरस्वती को यह तो मालूम था कि आठ वसुओं में 'द्यौ' और 'अन्तरिक्ष' हैं। इसीलिये तो इस सत्यार्थप्रकाश से छः वर्ष पूर्व लिखे ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका ग्रन्थ के 'वेद विषय विचार' में शतपथ काण्ड 14 प्रपाठक 16 का प्रमाण देकर आठ वसुओं में 'द्यौ' और 'अन्तरिक्ष' ऋषि ने लिखे हैं। अब विचारणीय है कि 'द्यौ' के अनेकों अर्थ हैं जैसे – द्यौ = (1) वर्षा (यजुर्वेद अ॰ 23 मं॰ 12 + शतपथ 13–2–6–16),

(2) जल (शतपथ 6–4–1–9)

(3) अन्तरिक्ष,

(4) सूर्य (अथर्ववेद काण्ड 11 सूक्त 5 मन्त्र 4 = संस्कारविधि वेदारम्भ)

(5) प्रकाशयुक्त पदार्थ (यजुर्वेद अ॰ 36 मं॰ 17 = संस्कारविधि शान्तिकरणम् 18),

(6) स्वर्ग अर्थात् सुख (निरुक्त अ॰ 2 खं॰ 12),

(7) प्रकाशरूप लोक,

(8) विद्युत (यजुर्वेद अ॰ 23 मं॰ 54),

(9) दिन,

(10) आग

(11) सूर्यमण्डल, तथा अन्य अनेक भी 'द्यौ' के अर्थ हैं।

ऊपर 'द्यौ' का अर्थ अन्तरिक्ष भी है। ऋषि ने सोचा 'द्यौ' औ 'अन्तरिक्ष' को पर्यायवाची समझ लोग उलझ जायेंगे। 'द्यौ' के इत सारे अर्थों में से कौन–सा अर्थ आठ वसुओं में लगेगा। इस गोरखध के झमेले की गुत्थी को सुलझाने के लिये महर्षि दयानन्द ने 'द्यौ' और 'अन्तरिक्ष' संस्कृत के इन दोनों शब्दों का सरल हिन्दी अनुवा सत्यार्थप्रकाश में कर दिया, क्योंकि सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश संस्कृत ग्रन्थों का सरल हिन्दी अनुवाद ही तो है।

स्वामी वेदानन्द जी ने जिस बृहदारण्यकोपनिषद् का पा अपनी पुष्टि में दिया है वह भी तो शतपथ का ही भाग है। दयान ने शतपथ का पता दे दिया और वेदानन्द ने इसी शतपथ के भा बृहदारण्यक का पता दे दिया। स्वामी वेदानन्द की कोई नई खो नहीं। स्वामी वेदानन्द जी का 'पृथिवी' का अर्थ जल सहित पृथि है' सर्वथा ही गलत है, क्योंकि जिन–जिन शास्त्रों में पाँच स्थू तत्वों की गणना की गई है उन सभी शास्त्रों में जल और पृथिवी क अलग–अलग गणना की है जैसे आकाश, वायु, अग्नि, जल औ पृथिवी ये पांचों तत्व सभी ने अलग–अलग माने हैं और यदि स्वा वेदानन्द जी पृथिवी के ऊपर वाले समुद्र सहित पृथिवी का अर्थ ज सहित पृथिवी मानते हैं तो भी गलत है, क्योंकि ऋग्वेद मण्डल 1 सूक्त 190 मन्त्र 2 में समुद्र अर्थात् पृथिवी पर समुद्र और आकाश मेघमण्डल का समुद्र (अर्णव) यह दो स्थानों (पृथिवी पर औ आकाश में) पर जल सागर माने हैं। अतः आठ वसुओं में जल (द्यौ भी एक वसु है। पाठकगण ! देखा आपने, स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' डंके की चोट रूपी साईकिल के टायर में पंचर ही नहीं, बल्कि ब हो गया। साईकिल तो खड़ी रही, पर साईकिल सवार धड़ाम नीचे आ गिरा। अब तो खिलखिला कर हँस पड़ो। वाह रे दयान ! तेरी दया और गहराई का पारावार कौन पा सकेगा।

प्रश्न – इन श्रीमानों ने सत्यार्थप्रकाश में भ्रष्टीकरण क्यों किये व करवाये ?

उत्तर – किसी गलत काम, अपराध या पाप करने के तीन ही कारण होते है और वे है : तीन ऐषणायें जो शतपथ 14/6/4/1 में ऐसे लिखी हैं –

(1) पुत्रैषणा – पुत्रादि के मोह में फंसकर पाप करना जैसे : चोरी, छल, कपट, हिंसा आदि द्वारा दूसरों को हानि पहुँचाकर अपने परिवार को अनुचित लाभ पहुँचाना या सन्तान मोहवश मोक्ष के साधनों में न लगना इत्यादि पापों को पुत्रैषणा कहते हैं।

(2) वितैषणा – अनुचित साधनों से धन कमाना और आवश्यकता से भी अधिक धन का संग्रह करना वा मान्य प्राप्ति के लिये धन बढ़ाना आदि पापों को वितैषणा कहते हैं।

(3) लोकैषणा – लोक में मान प्रतिष्ठा वा लाभ की इच्छा को लोक ऐषणा कहते हैं। इन तीन, दो वा किसी एक ऐषणा (तृष्णा, इच्छा) से बुद्धि मलीन हो जाती है। कहा भी है –

चौपाई – सुत वित लोक ऐषणा तीनी।
केहि के इन मति कृत न मलीनी।।

अर्थात् ये तीनों ऐषणायें सभी की बुद्धि मलीन कर देती हैं। बुद्धि मलीन होने से मनुष्य को विपरीत ज्ञान हो जाता है अर्थात् पाप और अपवित्र कर्मों को पुण्य समझने लग जाता है। विपरीत ज्ञान होने पर बड़े–बड़े अनर्थ कर डालता है। जैसे – मलीनात्मा होकर इन श्रीमानों ने सत्यार्थप्रकाश को भ्रष्ट कर डाला।

महर्षि पतञ्जलि ने योग दर्शन के 2/34 सूत्र में कहा है कि पाप तीन तरह से किये जाते हैं –

(1) कृत पाप – जो पाप मनुष्य स्वयं करता है उनको कृतपाप कहते हैं।

(2) कारित पाप – जो पाप स्वयं न करके दूसरों से कराये जा हैं उन पापों को कारित पाप कहते हैं।

(3) अनुमोदित पाप – जो पाप किसी पापी मनुष्य के कार्य क अनुमोदन समर्थन करके कराये जाते हैं उनको अनुमोदित पा कहते हैं।

इन तीन प्रकार के कृत कारित अनुमोदित पापों के भी तीन–ती भेद हैं जैसे –

(1) लोभ, क्रोध और मोह से कृतपाप।
(2) लोभ, क्रोध और मोह से कारित पाप।
(3) लोभ, क्रोध और मोह से अनुमोदित पाप।

इस प्रकार उपरोक्त तीन ऐषणाओं और लोभ, क्रोध और मो पूर्वक कृत कारित अनुमोदित पापों के अतिरिक्त पाप, अपराध कर का और कोई भी कारण नहीं है।

स्वामी दयानन्द की हत्या उनके रसोइये ने वितैषणा अर्था धन के लोभ से की थी।

पौराणिक पोपों, जैन बौधों, बाइबल कुरान वाले इसाई, मुसलमानों वेश्याओं इत्यादि का स्वामी दयानन्द ने अपने भाषणों, शास्त्रार्थ तथा पुस्तकों में खण्डन किया था उन्हीं पापियों ने लोकैषणा अर्था क्रोध रूपी वैर से रसोइये को धन का लोभ देकर स्वामी जी क मरवाने का कारित अनुमोदित पाप किया था। ठीक इसी प्रका जिन–जिन की बुराइयों का खण्डन सत्यार्थप्रकाश में किया गया है उन–उन महाशयों ने कुछ ने आर्य समाजियों के वेश में और कुछ दूसरे रूप में होकर विरजानन्द दैवकरणि द्वारा सत्यार्थप्रकाश भ्रष्टीकरण करवाये हैं।

प्रश्न– ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता साकार हैं वा निराकार, सफेद हैं या काले उजले हैं या मैले ?

उत्तर– ये महाशय दोनों प्रकार के हैं। साकार भी हैं और निराकार भी। इनका बाहर का रूप तो दिखाई देने से साकार है। किसी ने बाहर से सन्त महात्मा और साधु संन्यासी का रूप बना रखा है। किसी ने महाशय, विद्वान्, पण्डित, आर्य समाज तथा आर्य सभा का अधिकारी नेता लीडर, धर्मोपदेशक, आर्य भजनोपदेशक, गुरुकुल के आचार्य, समाजसेवक एवं इस प्रकार के और भी कई रूपों को बाहर से धारण कर रखा है। इनका यह बाहर का साकार रूप बड़ा मनमोहक, हितकारी, परोपकारी व कल्याण करने वाला दिखाई देता है। ये अपने लच्छेदार भाषणों से बड़ी–बड़ी सभाओं को मोहित कर लेते हैं और 'आंख के अन्धे और गाँठ के पूरे' लोगों का धन जी लगाकर लूटते हैं। ऐसा है इनका बाहर का चिकना चोपड़ा साकार रूप।

कोई कोई जिज्ञासु इनके भीतर झाँककर देखने का प्रयत्न करता है परन्तु निराकार होने से इनका भीतर का रूप दिखाई नहीं देता। ये परमात्मा से भी दुगुणे डबल हैं और संसार से भी दुगुणे यानी डबल हैं, क्योंकि परमात्मा तो साकार नहीं है, केवल निराकार है और संसार निराकार नहीं है, केवल साकार है, परन्तु ये महानात्मा साकार भी हैं और निराकार भी। अतः ये परमात्मा और संसार दोनों से हर तरह से डबल डबल हैं। जैसे योगाभ्यास पूर्वक उपासना से ही निराकार ब्रह्म का ज्ञान हो सकता है वैसे ही इनके पास रहने से ही इनका भीतर का कपटी–चोर–जार–काला–निराकार रूप जाना जा सकता है।

कहावत है –

'सोना जाने कसे और आदमी जाने बसे।'

ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता बाहर से सफेद हैं और भीतर के बड़े

काले हैं। इनकी कथनी और करनी में बड़ा भारी अंतर है, क्योंकि ये बाहर से बड़े उजले हैं और भीतर के बड़े मैले हैं। एक दिन प्रातःकाल कोई कविराज जी भ्रमण करने हेतु जंगल में मटरगश्ती कर रहे थे। वहां तालाब के किनारे पहुंचे तो देखा कि एक बगुला थोड़े गहरे पानी में खड़ा आधी आँखें बन्द करके एक पाँव पर खड़ा रहकर सूर्याभिमुख हो भगवान का ध्यान कर रहा था। कविराज जी बगुले पर मोहित हो गया और उसके मुख से कविता फूट पड़ी –

भक्ति करै तो ऐसी करै जान न पावै कोय।
जैसे मेहन्दी पात में लाली रही लहकोय।।

थोड़ी देर में बगुले के सामने से पानी में एक मछली गुजरी बगुले ने आव देखा न ताव देखा। झट मछली को पकड़कर निगल गया। कविराज जी के मुख से फिर कविता फूट पड़ी –

देखन का उजियावला, एक चरण दो ध्यान।
मैं समझा कोय सन्त है, निकला निपट कपट की खान।।

पाठक ! समझ गये होंगे कि इन निराकार साकार सज्जनों का असली रूप तो मछली निगलने पर ही दिखाई देता है।

उपरोक्त महापुरुष जो बेर की तरह बाहर ही से मनोहर हैं, इनसे बचना भी बड़ा कठिन है। लोग चोरों से बचने के लिये अपने धन जन की रखवाली कर लेते हैं, क्योंकि चोर–चोरी से ही धन चुराता है, परन्तु ये मालिक की आँखों के सामने ही धन हरते हैं। डाकू लोगों से बचा जा सकता है, क्योंकि डाकू लोग बाहर भीतर से एक से हैं, परन्तु इन साधु वेशधारी रावणों से कैसे बचा जाये जो बाहर से और और भीतर से और हैं। इनके विषय में तो इतना ही कहके

सन्तोष करना पड़ता है कि –

तन उजला और मन मैला बगुला भक्त अनेक।
इनसे तो कागा भले जो बाहर भीतर एक।।

प्रश्न– जब महर्षि दयानन्द के सन् 1883 ईसवी में मोक्षधाम जाने के कुछ ही वर्षों बाद सत्यार्थप्रकाश में मिलावट, हटावट होने लग गये थे तो आप इतने लम्बे समय तक चुप क्यों रहे ? आपने पहले ही भाण्डा क्यों न फोड़ा ?

उत्तर– मैंने सत्यार्थप्रकाश को सन् 1949 ई॰ में पहली बार पढ़ा था। उस समय मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था। सत्यार्थप्रकाश पढ़ने से मेरे बहुत से अन्धविश्वास और अवैदिक विचार छूट गये थे। मुझे पता नहीं वह सत्यार्थप्रकाश मिलावट, हटावट सहित था वा रहित था। ज्यों–ज्यों मैं बड़ा होता गया, त्यों–त्यों महर्षि जी के अन्य ग्रन्थों को भी पढ़ता गया। आर्ष ग्रन्थों का मेरा अध्ययन बढ़ता ही गया। मेरे को कभी यह सन्देह नहीं हुआ कि ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में भी मिलावट, हटावट आदि भ्रष्टीकरण कर रखे हैं। एक बार मैं 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश पढ़ने लगा। इसके दीपचन्द आर्य द्वारा लिखे 'प्रकाशकीय' को पढ़कर मालूम हुआ कि अनेक प्रकाशकों, सम्पादकों आदि ने बहुत परिवर्तन कर दिये हैं। उसके बाद कई सत्यार्थप्रकाश तुलनात्मक दृष्टि से पढ़े। अच्छी प्रकार निश्चय हो गया कि इस अमर ग्रन्थ में भी घुटाले कर दिये हैं। 19 मई, 1997 को लाखनमाजरा निवासी मेरे परम मित्र कप्तान रणधीर सिंह आर्य ने मुझे एक पुस्तक भेंट की। इस पुस्तक पर लिखा था 'स्वामी वेदानन्द जी, आ॰ उदयवीर जी शास्त्री, परोपकारिणी आदि के सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा अर्थात् ऋषि–गाम्भीर्य का समर्थन – लेखक आचार्य राजेन्द्र नाथ

शास्त्री (बाद में स्वामी सच्चिदानन्द योगी), प्रकाशक – आ साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली, दिल्ली, प्रथम बार 3000, स 1966, मूल्य 1) एक रुपया।

मैंने इस पुस्तक को तीन बार पढ़ा। आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री (स्वामी सच्चिदानन्द योगी) को शतश हार्दिक धन्यवाद दिये। इस पुस्तक के पृष्ठ 6 पर लिखा है 'स्वामी जी के किये संशोधन पढ़े तो माथा पकड़ क बैठ गया। गिनना आरम्भ किया तो 80 के लगभग टिप्पणियाँ सामने आईं।' लाला दीपचन्द जी कहने लगे – "आचार्य जी ! एक सहस्र के लगभग बिना नोट दिये संशोधन कर दिये हैं। हमारा निश्चित अनुमान है हजार से कम परिवर्तन नहीं हुए हैं।"

आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री ने स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' व उदयवीर शास्त्री, परोपकारिणी सभा अजमेर और आचार्य विश्वश्रवा की ऋषि विरुद्ध मान्यताओं के सभी भ्रष्टीकरणों का युक्तिप्रमाण पूर्वक सफल खण्डन किया है। मैं पूर्णतया विश्वस्त हो गया कि इस पुस्तक को पढ़कर सभी प्रकाशकों, सम्पादकों आदि ने सत्यार्थप्रकाश में मिलावट,हटावट करने छोड़ दिये होंगे, परन्तु कुत्ते की पूंछ बिना काटे कभी सीधी नहीं होती। 15–7–2003 को फरमाणा निवासी श्री बलवीर सिंह आर्य के सौजन्य से भगवती लेज़र प्रिंट्स, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश हस्तगत हुआ। इसकी भूमिका पढ़ी तो मेरे होश उड़ गये। इस सारे का मिलान ऋषि दयानन्द के जीवनकाल में छपे द्वितीय संस्करण से किया तो कम–से–कम 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण मिले।

मैंने सोचा कि सच्चिदानन्द योगी ने उपरोक्त

महानुभावों के खण्डन में पुस्तक लिखी, मैं विरजानन्द के सम्पादन किये इसके खण्डन में पुस्तक लिखूंगा। कुछ दिन में मन में विचार आया कि दयानन्द निर्वाण शताब्दी के शुभअवसर पर ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराये तथा ताम्रपत्रों के अनुसार छपवाये सत्यार्थप्रकाश का सम्पादन भी इसी विरजानन्द दैवकरणि द्वारा हुआ था। वो भी देखना चाहिये कैसे किया है ? मैं इसे लेने के लिए गुरुकुल झज्जर गया। वहां पर 'हरयाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर द्वारा सन् 1994 में प्रकाशित तथा परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा सन् 1998 में प्रकाशित ये दोनों सत्यार्थप्रकाश भी दृष्टिगोचर हुए। मैंने उक्त तीनों ले लिये। इन तीनों को असली सत्यार्थप्रकाश से मिलाया तो ताम्रपत्रों के अनुसार वाले में कम से कम 1797 (एक हजार सात सौ सतानवें) और झज्जर वाले में कम से कम 9191 (नौ हजार एक सौ इक्यानवें) तथा अजमेरी में कम–से–कम 10095 (दश हजार पचानवें) भ्रष्टीकरण हाथ लगे।

मैंने उपरोक्त चारों का खण्डन करने का मन बना लिया। एक दिन विचार आया कि आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री द्वारा वेदानन्द–उदयवीर, परोपकारिणी सभा अजमेर एवं आचार्य विश्वश्रवा की ऋषि विरुद्ध मान्यताओं के खण्डन में लिखी उपरोक्त पुस्तक को आर्य लोग भूल चुके हैं, परन्तु वेदानन्द का बिगाड़ा हुआ सत्यार्थप्रकाश आजकल भी आर्यों के घरों में दनदना रहा है। इसलिये इसके भी मुख्य–मुख्य भ्रष्टीकरणों का भाण्डा फोड़ करता चलूं। यही कारण है कि मैं आजकल उपरोक्त पांचों भ्रष्ट किये सत्यार्थप्रकाशों के खण्डन के लिये 'सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड का भाण्डाफोड़' नाम वाली पुस्तक लिख रहा हूँ।



(5) सत्यार्थप्रकाश की हस्तलिखित मूलप्रति

उदयपुर (राजस्थान) में महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश क भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार हाथ से लिखवाया था लिखवाने के बाद सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश का स्वयं अपने हाथ संशोधन किया था। इसके प्रत्येक पृष्ठ के हासिये पर व बीच-बी में भी महर्षि के स्वहस्त लिखित संशोधित अंश लिखे हुए हैं सत्यार्थप्रकाश की इस हस्तलिखित प्रति को मूलप्रति कहते हैं। आ के लिये संक्षेप की दृष्टि से सत्यार्थप्रकाश की हस्तलिखित मूलप्र को केवल 'मूलप्रति' ही लिखा जायेगा और

(1) स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपे, आर्ष साहित्य प्रच ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित भ्रष्टीकरण रहित निष्खोट शुद्ध सत्यार्थप्रका के द्वितीय संस्करण को केवल 'आर्ष सत्यार्थप्रकाश' लिखा जायेग

(2) ताम्रपत्रों के अनुसार विक्रम सम्वत् 2040 में छपे सत्यार्थप्रका को केवल 'ताम्रपत्रानुसारी' लिखा जायेगा।

(3) हरियाणा साहित्य संस्थान, गुरुकुल झज्जर, रोहतक द्वा सन् 1994 ईसवी में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'झज्ज लिखा जायेगा।

(4) परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय, दयानन्दाश्र केसरगंज, अजमेर द्वारा सन् 1998 ईसवी में प्रकाशित सत्यार्थप्रका को केवल 'अजमेरी' लिखा जायेगा।

(5) भगवती लेजर प्रिंट्स, नई दिल्ली द्वारा सन् 2002 ईस में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'भगवती' लिखा जायेगा।

(6) स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' की टिप्पणियों वाले सार्वदेशि आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा वि॰ सम्वत् 2055 में प्रकाशित सत्यार्थप्रक को केवल 'वेदानन्दी' लिखा जायेगा।

प्रश्न– (1) राष्ट्रपत्रानुसारी के 'प्रकाशकीय' में स्वामी ओमानन्द सरस्वती जी ने लिखा है, "शुद्ध पाठों हेतु परोपकारिणी सभा अजमेर से मूलप्रति प्राप्त करने का यत्न किया गया तो बड़ी कठिनता से मिल पाई।" (2) अजमेरी के 'प्रकाशकीय वक्तव्य' में गजानन्द आर्य सभा मन्त्री ने लिखा है, "परोपकारिणी सभा के अधिकारियों की अनेक वर्षों से यह इच्छा थी कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश आदि सभी ग्रन्थों को मूल हस्तलेखों से पुनः मिलान करके नवीन शुद्धतम संस्करण प्रकाशित किये जाएँ। सम्पादन कुशल श्री विरजानन्द दैवकरणि ने अपनी सेवाएँ प्रदान कर इस कार्य को दक्षता एवं निष्ठा से सम्पन्न करते हुए अपने निष्काम कार्य के द्वारा ऋषि ऋण से अनृण होने का अवसर प्राप्त किया है।" (3) उपरोक्त अजमेरी के 'इस संस्करण के सम्बन्ध में' नाम के पाठ में विरजानन्द दैवकरणि (सम्पादक) लिखते हैं, "इस संस्करण में महर्षि दयानन्द सरस्वती के एक–एक अक्षर का मिलान करके उनके वाक्यों को ज्यों का त्यों रक्खा गया है।" (4) भगवती के 'यह संस्करण' नामक पाठ में विजय कुमार झा (प्रकाशक) लिखते हैं, "इस संस्करण में मूलप्रति से एक–एक अक्षर का मिलान करके महर्षि दयानन्द सरस्वती के वाक्यों को ज्यों का त्यों रक्खा गया है तथा श्री विरजानन्द जी दैवकरणि ने इसके प्रूफ संशोधन और मूल से मिलान करने में अपार परिश्रम किया है।" (5) भगवती लेज़र प्रिंट्स, नई दिल्ली, अक्तूबर–नवम्बर, 2003 के मासिक मुखपत्र 'पथ–प्रदर्शिका' के पृष्ठ 12 पर विरजानन्द दैवकरणि लिखते हैं, "मैंने सत्यार्थप्रकाश की मूलप्रति भारत सरकार से प्राप्त की है।"

उपरोक्त पाँचों प्रमाणों से सिद्ध है कि ये सभी सत्यार्थप्रकाश महर्षि दयानन्द द्वारा लिखवाई व संशोधित की गई मूलप्रति की हूबहू ज्यों की त्यों नकल हैं और आप कहते हैं कि इनमें

प्रकाशकों, सम्पादकों आदि ने अनेकों परिवर्तन करके इन्हें भ्रष्ट कर दिया है। अब किसकी बात सच और किसकी झूठ मानी जाए ?

उत्तर– एक बूढ़े के सिर के बाल ज्यादा बड़े–बड़े हो गये थे। वह उन्हें मुंडवाने के लिये नाई की दुकान पर गया। नाई ने उसके बाल भिगो कर इन्हें मुंडने के लिये जब उस्तरा उठाया तब बूढ़े ने पूछा, "मेरे बाल कितने बड़े हो गये हैं?" नाई ने कहा कि बस दो मिनट में बाल आपके सामने आ जायेंगे। आप खुद ही नाप लेना। ठीक इसी प्रकार इन श्रीमानों ने जिस प्रकार की भ्रष्ट की हुई मूलप्रति के एक–एक अक्षर का मिलान करके उपरोक्त सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित किये हैं, यह सच्चाई दो मिनट में सामने आ जाएगी। पाठक खुद ही देख लेंगे।

(1) आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री (स्वामी सच्चिदानन्द योगी) अपनी 'सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा' नामक उपरोक्त पुस्तक के 23 पृष्ठ पर सन् 1966 ई० में लिखते हैं, "एक बार दीपावली पर हम अजमेर पहुँचे। ऋषि की हस्तलिखित कापी का फोटो काच मञ्जूषा में रक्खा देखा। हमने अपने साथी से कहा कि सत्यार्थप्रकाश की भाषा में मिलावट पर सदा झगड़ा रहता है। क्यों न इस फोटो से ही चरबा (फोटो प्रति) उठवाकर सारा सत्यार्थप्रकाश छपवा दिया जाए मिलावट का प्रश्न ही समाप्त हो जाएगा।"

साथी ने उत्तर दिया – "ताली यहां नहीं है। नहीं तो दिखाते हाशिये पर भी और पृष्ठ के अन्दर लेख में भी मिलान करने वालों ने अपनी लेखनी चला दी है। यह हस्तलेख भी विशुद्ध नहीं है। यदि ऐसा ही छप गया तो नई–नई बातें सामने आ जायेंगी। इसलिये किसी को भी किसी दाम पर भी फोटो न देने का निर्णय कर

लिया गया है।"

पाठक ! योगी लोग झूठ नहीं बोलते। इसलिये यह सच है कि मिलान करने वाले विरजानन्द दैवकरणि जैसों ने मूलप्रति बिगाड़ दी है।

(2) भगवती समुल्लास 1 पृष्ठ 10 पर यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 18 के अन्त में 'पुरुषञ्जगत' यह बढ़ा दिया। क्या परमात्मा ने मन्त्र अधूरा बनाया था जो इन श्रीमानों ने पूरा किया। ये तो परमात्मा की गलती निकाल कर परमात्मा से भी ज्यादा ज्ञानी बन गये और यही मन्त्र ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी में नहीं बढ़ाया। इन चारों सत्यार्थप्रकाशों का मूलप्रति से मिलान करने का दावा किया है। जब चारों की मूलप्रति एक है तो इनमें आपस में भिन्नता होने से सिद्ध है कि इनके पास मूलप्रति बिगाड़ी हुई है।

(3) 4 समुल्लास में झज्जरी के पृष्ठ 193/194 पर + अजमेरी में पृष्ठ 110 पर + भगवती में पृष्ठ 71/72 पर पाठ = 'एक-एक मन्त्र पढ़के थाली में वा भूमि में भाग रखना। उन पन्द्रह भागों को किसी अतिथि को देवे। श्रीमान् जी ! भूमि में रक्खे हुए हलुवा, खीर के रेत मिट्टी में लथपथ भागों को किसी अतिथि को देना क्या ऋषि दयानन्द की मूलप्रति में हो सकता है ? कभी नहीं। ताम्रपत्रानुसारी में दयानन्द वाला पाठ (थाली अथवा भूमि में पत्ता (पत्तल) रख के इन मन्त्रों से भाग रक्खें) दिया है। जब इन चारों का सम्पादक एक ही दैवकरणि और मूलप्रति भी एक है तो उपरोक्त चौथा तीनों से भिन्न क्यों ? क्योंकि दयानन्द द्वारा लिखवाई मूलप्रति में हजारों परिवर्तन करके इन्होंने इसे भ्रष्ट और अनार्ष कर डाला।

(4) कव्वे को रात को दिखाई नहीं देता और उल्लू को दिन में दिखाई नहीं देता तथा कामी को न दिन में दिखाई देता है न रात में दिखाई देता है। इसी प्रकार इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं को न रात में दिखाई देता है और न दिन में दिखाई देता है अर्थात् ये न तीसरे समुल्लास की मानते और न ही चौथे समुल्लास की बात मानते जैसे तीसरे समुल्लास में ऋषि दयानन्द ने लिखा है, "जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरुष वा भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे।

फिर चौथे समुल्लास में ऋषि जी लिखते हैं, "पुरुष लड़कों को पढ़ावे तथा स्त्री लड़कियों को पढ़ावे।" परन्तु ये श्रीमान् कहते हैं कि दयानन्द हम तेरे को न इधर का छोड़ेंगे न उधर का छोड़ेंगे। इसीलिये तो विरजानन्द दैवकरणि ने अजमेरी सत्यार्थप्रकाश चौथे समुल्लास पृष्ठ 116 में लिखा है, "पुरुष लड़कों को पढ़ावे तथा लड़कियों को पढ़ावे।" इसमें स्त्री को उड़ा दिया। इसीलिये तो सर्वसंसार के सब मनुष्यों का शीघ्र ही उच्छेद, विनाश, समाप्ति हो जाएगी क्योंकि ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता पुरुष तो गर्भ धारण करेंगे नहीं और स्त्री को इन्होंने उड़ा ही दिया अतः संसार का उच्छेदन होने में क्या सन्देह है ? इन महापुरुषों के लिये मेरी एक शुभ सलाह है कि संसार को नष्ट होने से बचाने के लिये तथा अपने भ्रष्टीकरण के पापों के प्रायश्चित के लिये इन्हें गर्भधारण अवश्य ही कर लेना चाहिए। कमाल इस बात का भी है कि इन्होंने ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी और भगवती से स्त्री को नहीं उड़ाया है। इसके लिये इनका बहुत-बहुत धन्यवाद, मेहरबानी

शुकरिया, भगवान इनका भला करे, परन्तु उपरोक्त चारों सत्यार्थप्रकाशों का सम्पादक और मूलप्रति तो एक ही है। फिर भी इनका परस्पर भेद क्यों है ? क्या ऋषि दयानन्द की मूलप्रति में ऐसा हो सकता है ? कभी नहीं।

(5) समु॰ 7 झज्जरी में पृष्ठ 351, अजमेरी के पृष्ठ 201 तथा भगवती के पृष्ठ 129 पर लिखा है, "फल भोगने में जीव स्वतंत्र है।" जय हो ! जय हो !! जय हो !!! जय हो !!!! भ्रष्टीकरणकर्त्ता प्रकाशकों और सम्पादक जी महाराज अधिराज विरजानन्द दैवकरणि की जय हो ! वाह ! वाह जी तुम्हारी यह नई खोज पढ़कर मजा आ गया। अष्टाध्यायी व्याकरण के 1–4–54 सूत्र में महर्षि पाणिनी ने जीव को कर्म करने में स्वतंत्र बताया है। यहां पर आपने भी यह सूत्र इन चारों सत्यार्थप्रकाशों में दिया है ऋग्वेद से लेकर मीमांसा दर्शन तक ऋषियों के लगभग तीन हजार ग्रन्थों में जहां–जहां यह प्रसंग आया है, वहां–वहां जीव को कर्म करने में स्वतंत्र और फल भोगने में परतन्त्र बताया है। आपने भी चारों सत्यार्थप्रकाशों में स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश के 41 में ऋषि दयानन्द के मतानुसार जीव को अपने कामों में स्वतंत्र और कर्मफल भोगने में परतन्त्र बताया है। यदि आपने गड़बड़ करनी ही थी तो सभी जगह एक रूप रहना चाहिये था। यह दोगली नीति अनिष्टकारी है। 'जीव फल भोगने में स्वतन्त्र है' इसकी पुष्टी में आपने किसी वेद या आर्ष ग्रन्थ का प्रमाण नहीं दिया और तुर्रा इस बात का है कि आपने 'ताम्रपत्रानुसारी' के पृष्ठ 129 पर जीव को फल भोगने में परतन्त्र बताया है। चारों के सम्पादक और मूलप्रति एक होने पर भी यह भिन्नता है तो समझ लो मामला गड़बड़ है। ऋषि दयानन्द की मूलप्रति ऐसी कभी नहीं हो सकती।

(6) समुल्लास सात में ऋषि का पाठ :

प्रश्न– क्या यह पुस्तक भी नित्य है ?
उत्तर – नहीं, क्योंकि पुस्तक तो <u>पत्र</u> और स्याही का ब
है——।।

भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का पाठ :–
उत्तर – नहीं, क्योंकि पुस्तक तो <u>कागज</u> और स्याही का ब
है———।।

समीक्षा – झज्जरी पृष्ठ 380, अजमेरी पृष्ठ 216, भगव पृष्ठ 140 पर ऋषि के 'पत्र' शब्द की गहराई को न समझक 'पत्र' के स्थान पर 'कागज' लिख दिया। जब मैंने यह प तो समझ गया कि इन महाशयों को मूर्ख कहना तो गधे क अपमान करना है। देखिये पुस्तकें भोजपत्रों पर भी लिख हुई हैं, ताम्रपत्रों पर भी लिखी हुई हैं, कागज पत्रों पर लि हुई हैं और भी कई प्रकार के पत्रों पर भी लिखी हुई है जैसे गुरुकुल झज्जर, रोहतक (हरयाणा) में सत्यार्थप्रका ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण किया हुआ है, सत्यार्थप्रकाश ग्यार समुल्लास में 'तांबे के पत्र लेख' का वर्णन है। 'काग लिखने से 'पत्र' के ये सब अर्थ नष्ट हो गये। इन्हें मूलप्रति में 'पत्र' मिटाकर 'कागज' लिखने का दुस्साहस ही डाला परन्तु ताम्रपत्रानुसारी के पृष्ठ 139 पर 'पत्र' रहने दिया, ताकि इनकी दोगली नीति फलीभूत हो सके

ऋषियों का गाम्भीर्य समझना अत्यन्त कठिन है। इसीलि मूल के साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये।

(7) समुल्लास आठ में ऋषि का पाठ :

प्रश्न – जगत के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है
उत्तर – नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है ?
प्रश्न – जो न बनाता तो आनन्द में <u>बना</u> रहता।

दयानन्द के सुधारकों का पाठ :–

जो न बनाता तो आनन्द में बैठा रहता।

समीक्षा – झज्जरी के पृष्ठ 393 पर, अजमेरी के पृष्ठ 224 पर और भगवती के पृष्ठ 145 पर 'बना' के स्थान पर 'बैठा' लिखकर सर्वव्यापक सर्वदेशी परमात्मा को एक देशी बना दिया। इनके मतानुसार यदि परमात्मा बैठता है तो उठता भी होगा, चलता भी होगा, दौड़ भी लगाता होगा। क्या सर्वव्यापक परमात्मा बैठ सकता है ? कभी नहीं। अरे भाई! ये परमात्मा को बैठाने वाले तो पौराणिक पोप, जैनियों की तोप और बाइबल तथा कुरान वालों के कोप से भी आगे बढ़ गये, परन्तु इन्होंने पोप इत्यादि की अपेक्षा से तो परमात्मा को कुछ अधिक आराम ही दिया है। वे लोग अपने पत्थर के भगवानों को रात दिन सारी उम्र खड़ा रखते हैं। इन्होंने बैठा तो दिया। क्या यह कम दया है। ये दयालु जो ठहरे, परन्तु ताम्रपत्रानुसारी के पृष्ठ 144 पर परिवर्तन न करके इन्होंने अपनी दया को कम कर लिया। सर्वव्यापक परमात्मा को 'बैठा' लिखकर उसका महान् अपमान किया है। हे भ्रष्टीकरणकर्त्ता भाइयो! परमात्मा का अपमान करने का आपको परमिट मिला हुआ है क्या ?

(8) समुल्लास 9 में ऋषि का पाठ :

उत्तर – जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे, तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहियें।

प्रश्न – जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ईश्वर नये उत्पन्न करके संसार में रख देता है इसलिये निश्शेष नहीं होते।

इन परिवर्तन कर्त्ताओं ने उपरोक्त दोनों जगह 'निश्शेष' के स्थान पर 'कमती' लिख दिया।

समीक्षा – झज्जरी के पृष्ठ 450 पर, अजमेरी के पृष्ठ 25 और भगवती के पृष्ठ 166 पर यह परिवर्तन किया है। ऋषि का भाव यह है कि यदि जीव मोक्ष में जाते तो रहें परन्तु लौट कर इस संसार में न आवें तो धीरे–धीरे यहां के सब जीव मुक्ति में चले जायेंगे और कोई लौटकर न आवेगा तो यहां के सब जीव समाप्त हो जायेंगे। इस तरह संसार का उच्छेद अर्थात् नाश हो जायगा। शेष = बाकी। निश्शेष: जो बाकि बचा हुआ न हो।

अब 'कमती' का मतलब यह है कि जितने कुल जीव हैं उनमें से कुछ कम हो जायें अर्थात् कुछ बच जायें। कुछ बचने से संसार का उच्छेद (विनाश) तो नहीं होगा, संसार तो कमती जीवों से भी चलता ही रहेगा। संसार का उच्छेद तो तभी हो सकता है जब सभी जीव मोक्ष में चले जायें और यहां एक भी जीव न रहे। यदि बैंक से जमापूँजी निकलवाते ही रहें और जमा न करावें तो जमापूँजी एक दिन निश्शेष (समाप्त) हो जावेगी। 'निश्शेष' की जगह 'कमती' शब्द रखने से यह भाव नहीं निकलता। इसलिये इन श्रीमानों का परिवर्तन गलत है और यह 'कमती' शब्द ऋषि दयानन्द द्वारा लिखवाई हुई मूलप्रति में नहीं हो सकता। अतः सिद्ध है कि इन श्रीमानों ने सर्वप्रथम मूलप्रति में भ्रष्टीकरण करके फिर इस भ्रष्ट मूलप्रति के मिलान से उपरोक्त सत्यार्थप्रकाश छपवाये हैं। यह परिवर्तन ताम्रपत्रानुसारी में नहीं किया क्योंकि इसमें अधिक परिवर्तन होने से स्वामी ओमानन्द को पता लगने का भय लगातार बना रहता था। मैं तो इन्हें यही कहूँगा, 'अरे अन्यायी, शर्म नहीं आई।।' पर शर्म क्या कुत्ता है जो इनके पास आवे।।

(9) 10 समुल्लास अजमेरी पृष्ठ 276 पर तथा भगवती पृष्ठ

पर यजुर्वेद के मन्त्र का पाठ भेद कर दिया है। यहीं पर झज्जरी और ताम्रपत्रानुसारी में इस मन्त्र को पूरा दिया है तथा ग्यारहवें समुल्लास में ताम्रपत्रानुसारी पृष्ठ 215 पर और भगवती में पृष्ठ 216 पर इसी मन्त्र का छोड़ा हुआ अंश [ ] ऐसे चतुष्कोण कोष्ठ में दिया है परन्तु झज्जरी और अजमेरी में इस अंश को सर्वथा छोड़ ही दिया है।

उपरोक्त स्थानों पर छोड़े हुए मन्त्र का अंश 'नो' है। इसके छोड़ने के दो अर्थ हैं – (1) परमात्मा ने गलती से यह शब्द मन्त्र में दे दिया है और ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता इसे हटाकर परमात्मा का सुधार कर रहे हैं।
(2) स्वामी दयानन्द को इस मन्त्र का समाधि में साक्षात् करने पर भी पता नहीं चल सका कि इतना अंश मन्त्र में ज्यादा है और ये श्रीमान् ऋषि दयानन्द से ज्यादा ज्ञान रखते हैं। इसलिये इसे छोड़ दिया है। [ ] ऐसे कोष्ठ में यही अंश देने का यह मतलब है कि ऋषि दयानन्द ने मन्त्र अधूरा लिख दिया और ये इसे पूरा लिख रहे हैं। जबकि ऋषि के जीवन काल में छपे सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण में यह मन्त्र दोनों समुल्लासों में पूरा पूरा लिखा हुआ है।

मैं पहले लिख चुका हूँ कि भगवती प्रथम समुल्लास में यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 18 में भी इन्होंने 'पुरूषञ्जगत्' इतना टुकड़ा मन्त्र के अन्त में फालतू जोड़ दिया है, परन्तु ताम्रपत्रानुसारी, अजमेरी, झज्जरी में नहीं जोड़ा है। इन श्रीमानों को पता होना चाहिये कि सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् परमात्मा ने वेद मन्त्रों को स्वर, छन्द और मात्राओं में इस प्रकार बांध रखा है कि कोई भी मनुष्य इनमें घटाबढ़ी नहीं कर सकता। वेदमन्त्रों का अशुद्ध अर्थ करने वाले महिधर, माधव, रावण, उव्वट और सायणाचार्य भी वेदमन्त्रों में घटाबढ़ी

नहीं कर सके। जब कोई विद्वान् इन श्रीमानों घटाबढ़ी किये हुए मन्त्रों का छन्द, स्वर और मात्राओं हिसाब से परीक्षण करेगा तो इनकी गलती पाने पर क्या पदवी देगा उसे यही जानें।

(10) दशवें समुल्लास में ऋषि का पाठ :–
"गाय दूध में अधिक उपकारक होती है। गाय के दूध घी जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं उतने भैंस के दूध से नहीं इससे मुख्य उपकारक आर्यों ने गाय को गिना है।"
विरजानन्द दैवकरणि तथा इसके साथियों का पाठ :–
"भैंसें गाय से दूध में अधिक उपकारक होती है। गाय के घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं, उतने भैंस के दूध नहीं। इससे मुख्य उपकारक आर्यों ने गाय को गिना है।"

समीक्षा – जब महर्षि दयानन्द और विरजानन्द दैवकरणि आदि सब ने उपरोक्त दोनों पाठों में एक स्वर से मान लिया है कि गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते उतने भैंस के दूध से नहीं तो 'भैंसे गाय से दूध में अधिक उपकारक होती है' यह लिखना सब आर्यों के गुरू महर्षि दयानन्द का अपमान करके उनके योगी होने पर कीचड़ उछालना है क्योंकि दोनों वाक्यों में परस्पर विरोध है उपरोक्त पाठ के अन्तिम वाक्य में गाय को दूध में मुख्य उपकारक मानकर, भैंस को गाय से दूध में अधिक उपकारक लिखना अपनी महामूर्खता का परिचय देना है। एक ही स्थान पर एक ही विषय में एक ही ऋषि द्वारा इतना बड़ा भारी विरोध महर्षि दयानन्द द्वारा संशोधित मूलप्रति में कभी नहीं हो सकता।

यह सभी को मालूम है कि भैंस सुस्त आलसी, ...ी द्वेषी, तमोगुणी और बुद्धिहीन है। इसके विपरीत गा

चुस्त, शान्त, निर्वैर, सतोगुणी और बुद्धिमान् होती है। भैंस और गाय की सन्तानों में भी अपनी अपनी माताओं के दूध के गुण आ जाते हैं जैसे :–

(1) भैंस के कटड़े को लम्बे चौड़े आंगन में खुला छोड़ दो। यह थोड़ी दूर चलकर बैठ जायगा और गाय के बछड़े को इसी आंगन में खुला छोड़ दो। बछड़ा आंगन के चारों तरफ दौड़ लगाता रहेगा। जब पूरा व्यायाम हो जाएगा तब बछड़ा दौड़ता हुआ कटड़े के पास आकर इस बैठे हुए कटड़े को टक्करें मार मार कर कहेगा, "अरे सुस्त आलसी पापी ! तू भी दौड़ लगा ले।" कटड़ा पाँव फैलाकर लेटते हुए कहेगा, "भई हम में तो हिम्मत नहीं, तू ही दौड़ ले।" बछड़ा फिर दौड़ने लगेगा।

(2) दश भैंसें एक जगह खड़ी हों और एक भैंस के कटड़े को भैंसों की तरफ छोड़ दो। कटड़ा कभी एक भैंस के थनों में लगेगा, कभी दूसरी तीसरी और चौथी के थनों में लगेगा क्योंकि कटड़े में अपनी मां को पहचानने की बुद्धि ही नहीं है। और सौ गाय एक जगह खड़ी हों तथा एक गाय के बछड़े को गायों की तरफ छोड़ दो। बछड़ा दौड़ता हुआ सीधा सौ गायों के बीच खड़ी अपनी माँ के पास जायेगा। क्योंकि बछड़े में अपनी माँ को पहचानने की बुद्धि है। यह है दूध का प्रभाव।

(3) भैंस का सुपुत्र झोटा (सारे गाँव की भैंसों का पतिदेव) एक गाँव में दूसरे झोटे को नहीं रहने देगा। दोनों की लड़ाई होगी और ताकतवर झोटा टक्करें मार मार कमजोर झोटे को गाँव से भगा देगा। क्योंकि भैंस के दूध के प्रभाव से झोटे में भी वैर बुद्धि आ गई। दूसरे गाय के सुपुत्र खागड़ (गाय का साँड) एक गाँव में दस दस भी रहते देखे गये हैं। ये सभी

इक्कठे बैठते हैं और एक दूसरे को प्रेम से चाटते रहते हैं क्योंकि गाय के दूध के गुणों के कारण इन में वैर बुद्धि नहीं है अपितु प्रेम और शान्ति है।

पाठक! देखा आपने भैंस के तमोगुणी दूध और गाय के सतोगुणी दूध को पीने वाले कटड़े बछड़े झोटे और खागड़ का अन्तर। इसी प्रकार भैंस वा गाय का दूध पीने से मनुष्यों में भी इनके गुण आ जाते हैं। इतना समझाने पर भी यदि ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता 'भैंसे गाय से दूध में अधिक उपकारक होते है' इसे मानते रहे तो हम यहीं समझेंगे कि कटड़ा बुद्धि सच्चाई को नहीं पहचान सकती। चोर तो भाग गया पर अपने पाँव के निशान छोड़ गया। उसके पग चिन्हों पर चलकर खोजियों ने चोर को जा पकड़ा। ठीक इसी प्रकार उपरोक्त वाक्य में "भैंसें' और 'से' ये दो शब्द तो मिला दिए परन्तु 'है' का 'हैं' करना भूल गए और पकड़ में आ गये कि इन्होंने एकवचन के वाक्य में बहुवचन 'भैंसें' तो मिला दिया परन्तु 'है' का बहुवचन 'हैं' करना छोड़ दिया। 'ताड़ने वाले रखते हैं कयामत की नजर।'

गोकरुणानिधि में ऋषि का पाठ :– 'यद्यपि गाय के दूध से भैंस का दूध कुछ अधिक है तथापि जितना गाय के दूध से मनुष्यों को सुखों का लाभ होता है उतना भैंसियों के दूध से नहीं, क्योंकि जितने आरोग्यकारक और बुद्धिवर्द्धक आदि गुण गाय के दूध में होते हैं, उतने भैंस के दूध में नहीं हो सकते और ऊंटनी का दूध गाय और भैंस के दूध से भी अधिक होता है तो भी इनका दूध गाय के सदृश नहीं।' ऋषि के इस पाठ से सिद्ध है कि भैंस और ऊंटनी का दूध गाय के दूध से तो माप, वजन, बोझ और भार आदि में अधिक होता है गुणों में अधिक नहीं होता। हमारे शरीर में बुद्धि ही सबसे अधिक कीमती है। बुद्धि से कुछ कम और अन्य शरीर के सब अवयव

से अधिक कीमती हमारा आरोग्य (स्वास्थ्य) है। ऋषि के उपरोक्त पाठ अनुसार गाय का दूध बुद्धि और स्वास्थ्य के लिये सबसे अधिक उपकारक है। अतः भैंसें गाय से दूध में अधिक उपकारक नहीं हो सकतीं। इससे सिद्ध हुआ कि 'गाय दूध में अधिक उपकारक होती हैं' इस वाक्य में 'भैंसें' और 'से' ये दो शब्द मिलाकर इसे भ्रष्ट किया गया है।

(11) ग्यारहवाँ समुल्लास, शाक्तवैष्णवमत समीक्षा, ऋषि का पाठः– 'न मद्य पीते हैं'

इन सिरड़ियों का पाठ :– ताम्रपत्रानुसारी पृष्ठ 243 पर 'न मद्य पीते हैं' झज्जरी पृष्ठ 663 में 'मद्य नहीं पीते।' अजमेरी पृष्ठ 368 पर 'मद्य पीते हैं।' भगवती पृष्ठ 243 पर 'मद्य नहीं पीते।'

समीक्षा – आओ रे ठालम ठाल घड़ां। पिलंग उधेड़ां फेर बणां।।

इन श्रीमानों को और तो कोई काम है नहीं। बस इसी उधेड़बुन में लगे रहते हैं कि ऋषि मुनियों के ग्रन्थों को कैसे बिगाड़ें। देखिये, पहले ताम्रपत्रानुसारी में ऋषि का पाठ ज्यों का त्यों दे दिया। फिर झज्जरी में कुछ बदल कर दे दिया। पुनः अजमेरी में 'न' हटाकर वैष्णव सम्प्रदाय पर मद्यपान करने का झूठा दोष लगा दिया। किसी वैष्णव ने इनकी पूंछ मरोड़ी होगी। अतः अजमेरी से बाद के प्रकाशन भगवती में उपरोक्त दोष हटा दिया परन्तु पूर्ण शुद्ध पाठ फिर भी नहीं दिया। इन्होंने दावा किया है कि मूलप्रति से एक एक अक्षर का मिलान करके महर्षि दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रक्खा है। अब देख लो इनके दावे की पोल रेत में बिखर गई। क्या ऋषि दयानन्द की मूलप्रति में आधे ही वाक्य में यह चार प्रकार का घुटाला हो सकता है? कभी नहीं।

(12) एक किसान के घर में एक बोरी गवार की, एक खल की, एक बनोले की और एक बोरी पशुचारा चूरे की भरी हुई रक्खी थी। इन चारों बोरियों में पशुओं को खिलाने का सामान था। इनके अलावा मनुष्यों के लिये एक बोरी गेहूँ की, एक चावल की, एक चने की, एक उड़द की और एक मूंग की भरी हुई थी। ये पांचों बोरियां भी पशुओं के चारे वाले कमरे में रक्खी थीं। इसी कमरे में प्लास्टिक से बनी हुई दो बड़ी बड़ी बोरियाँ भरी हुई और रक्खी थी। एक में साबुन का चूरा था और दूसरी में कपड़े धोने का सर्फ पाउडर था। जिस चीज की जरूरत होती घर की मालकिन उसकी बोरी से निकालकर वही चीज काम में ले लेती। एक दिन किसान का सारा परिवार खेत में गया हुआ था। पीछे से कुछ चोर किसान के घर में घुस गये। चोरों को उस घर में नकदी जेवर कुछ भी नहीं मिला। उन्होंने समझा इन बोरियों में छिपा रखा होगा। उन्होंने उन ग्यारह बोरियों का सामान एक ही जगह ऊपर नीचे डाल दिया। कुछ भी नहीं मिला। फिर उन्होंने वह इक्ट्ठा पड़ा हुआ सामान ग्यारह बोरियों में भरकर बोरियां उसी कमरे में रख दी। चोर चले गये। शाम को किसान का परिवार अन्धेरा होने पर घर आया। मालकिन ने गेहूँ की बोरी से गेहूँ ले आटा पीसकर रोटियाँ बना परिवार को खिला दीं तथा पशुओं के चारे की बोरी से चारा ले पशुओं को खिला दिया। परिवार रात को सो गया। रात को पशुओं और आदमियों सब को पेट दर्द हुआ और दस्त लग गये। प्रातः होते ही पशुओं और आदमियों को हस्पताल में दिखाया गया। सबकी टट्टी टैस्ट की गई। पशुओं के डाक्टर और आदमियों के डाक्टर दोनों की एक सी रिपोर्ट थी कि इन्होंने नौ किंस्म के खाने में साबुन का चूरा और सर्फ का पाउडर मिलाकर खाया है। डाक्टरों ने उन्हें पागल

समझकर पागलखाने में जबरदस्ती दाखिल कर दिया। आवारा पशु किसान के खेत की सारी फसल खा गये।

जो मनुष्य इन श्रीमानों द्वारा भ्रष्ट किये हुए सत्यार्थप्रकाशों को पढ़ेंगे उनका भी ऊपर लिखे परिवार सा हाल होगा। नमूने के तौर पर आप बारहवें समुल्लास को पढ़िये। इस समुल्लास में आये विषयों को ऊपर लिखी ग्यारह बोरियों के सामान की तरह परस्पर मिला दिया है। आगे का पीछे, पीछे का आगे। पहले का बाद में, बाद का पहले, बीच का आरम्भ व अन्त में, आरम्भ व अन्त का बीच में कर दिया तथा अनेकों गलतावट, मिलावट, हटावट, बदलावट, टहलावट इत्यादि करके अत्यंत गड़बड़ा दिया है। इसको पढ़ने वाले पागल नहीं होंगे तो क्या होंगे ? इसका उत्तर तो इन्सानों की कौम के वही दुश्मन देंगे, जिन्होंने इसको भ्रष्ट करके बिगाड़ा है, तिगाड़ा है।

(13) तेरहवें समुल्लास में पांच और चौदहवें में ग्यारह क्रमांक बढ़ाकर इनमें नई आयतें और इनकी समीक्षायें मिला दी। कुछ के दो–दो तीन–तीन भाग कर दिये। तेरहवें में 54 आयतों के पतों में और चौदहवें में 229 आयतों के पतों में मिलावट, हटावट और बदलावट इत्यादि कर दिये। बाइबल और कुरान में इन नकली पतों पर सत्यार्थप्रकाश वाली आयतें न मिलने से ये कपोल कल्पित मनघडन्त और झूठी समझी जायेंगी।

(14) सम्पूर्ण सत्यार्थप्रकाश में अनेकों जगह मन्त्रों में पाठ भेद, श्लोकों में पाठ भेद और सूत्रों में पाठ भेद कर दिये। प्रश्नोत्तर बढ़ा दिये, प्रश्नोत्तरों के पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष कर दिये। असली पैरे निकालकर नकली भर दिये, इत्यादि जो कुछ भी भ्रष्टीकरण कर सकते थे, कर दिये।

तीन मेण्डक ऊपर नीचे बैठे थे। बीच वाला मेण्डक

बोला, "टरड़क टम।" ऊपर वाला बोला, "हम को क्या गम।" नीचे वाला मेण्डक चिल्लाया, "मर गये हम।" ठीक इसी प्रकार जब इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं पर नीचे वाले मेण्डक की तरह सरकार और विद्वानों का दबाव पड़ेगा तब ये चिल्लायेंगे, "मर गये हम।"

पाठक ! देखा आपने नाई के कहने के अनुसार ही बूढ़े के सिर के बाल दो मिनट में ही उसके सामने आ गये। अब उसे किसी से पूछना नहीं पड़ेगा कि उसके सिर के बाल कितने बड़े हैं। इसी प्रकार दो मिनट में ही यह बात सबके सामने आ गई कि महाभ्रष्ट मूलप्रति की नकल करके इन्होंने उपरोक्त चारों सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित किये हैं। इन महाशयों की इस गलत कारस्तानी का कुप्रभाव इनकी सन्तानों पर सबसे अधिक पड़ेगा। क्योंकि वे भी तो इनके भ्रष्ट किये हुए सत्यार्थप्रकाशों को ही पढ़ेंगे। कहा भी है :–

गला काटे और का अपना रह कटाय।
साईं के दरबार में ठीक न्याय हो जाय।।



(6) महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनकाल में छपा सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है।

प्रश्न– उपरोक्त लेख से युक्तिप्रमाण पूर्वक सिद्ध हो चुका है कि भ्रष्टीकरणकर्त्ता श्रीमानों ने 'मूलप्रति' को बिगाड़कर तिगाड़ दिया है और इसी महाभ्रष्ट मूलप्रति की नकलानुसार सत्यार्थप्रकाशों का प्रकाशन किया है। अब आप हमको यह बताईये कि कौन सा सत्यार्थप्रकाश प्रामाणिक है?

उत्तर– स्वामी सच्चिदानन्द योगी (आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री) सन् 1966 ई॰ में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा' के पृष्ठ 21–22 पर लिखते हैं :– "द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है।

महर्षि की सतर्कता –

प्रथम कापी – पहले संस्करण में भाषा और सिद्धान्त की अशुद्धियां देखकर ऋषिवर ने द्वितीय संस्करण के लिये सर्वप्रथम् पूरे 14 समुल्लास की पूरी कापी हाथ से लिखवाई। छपे पहले संस्करण को काम में नहीं लाये। दुगुना परिश्रम उठाया और उसे शुद्ध किया। यह कापी वैदिक यन्त्रालय में आज भी सुरक्षित है।

द्वितीय कापी – ऋषि ने इस शुद्ध की हुई प्रथम कापी से दूसरी प्रेस कापी सर्वांश में शुद्ध तैयार कराई। उसे प्रेस में एक साथ ही नहीं दे दिया। उसे स्वयं आद्योपान्त पढ़ा। अपने हाथ से संशोधन किया। यथास्थान आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया। फिर प्रेस में भेजते समय थोड़ा थोड़ा भाग पुनः देखकर भेजते थे। इस से ही दूसरा संस्करण छपा।

बोला, "टरड़क टम।" ऊपर वाला बोला, "हम को क्या गम।" नीचे वाला मेण्डक चिल्लाया, "मर गये हम।" ठीक इसी प्रकार जब इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं पर नीचे वाले मेण्डक की तरह सरकार और विद्वानों का दबाव पड़ेगा तब ये चिल्लायेंगे, "मर गये हम।"

पाठक ! देखा आपने नाई के कहने के अनुसार ही बूढ़े के सिर के बाल दो मिनट में ही उसके सामने आ गये। अब उसे किसी से पूछना नहीं पड़ेगा कि उसके सिर के बाल कितने बड़े हैं। इसी प्रकार दो मिनट में ही यह बात सबके सामने आ गई कि महाभ्रष्ट मूलप्रति की नकल करके ही उपरोक्त चारों सत्यार्थप्रकाश प्रकाशित किये हैं। इन महाशयों की इस गलत कारस्तानी का कुप्रभाव इनकी सन्तानों पर सबसे अधिक पड़ेगा। क्योंकि वे भी तो इनके भ्रष्ट किये हुए सत्यार्थप्रकाशों को ही पढ़ेंगे। कहा भी है :—

गला काटे और का अपना रह कटाय।
साईं के दरबार में ठीक न्याय हो जाय।।



(6) महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनकाल में छपा सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है।

प्रश्न– उपरोक्त लेख से युक्तिप्रमाण पूर्वक सिद्ध हो चुका है कि भ्रष्टीकरणकर्त्ता श्रीमानों ने 'मूलप्रति' को बिगाड़कर तिगाड़ दिया है और इसी महाभ्रष्ट मूलप्रति की नकलानुसार सत्यार्थप्रकाशों का प्रकाशन किया है। अब आप हमको यह बताईये कि कौन सा सत्यार्थप्रकाश प्रामाणिक है?

उत्तर– स्वामी सच्चिदानन्द योगी (आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री) सन् 1966 ई० में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा' के पृष्ठ 21–22 पर लिखते हैं :– "द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है।

महर्षि की सतर्कता –

प्रथम कापी – पहले संस्करण में भाषा और सिद्धान्त की अशुद्धियां देखकर ऋषिवर ने द्वितीय संस्करण के लिये सर्वप्रथम पूरे 14 समुल्लास की पूरी कापी हाथ से लिखवाई। छपे पहले संस्करण को काम में नहीं लाये। दुगुना परिश्रम उठाया और उसे शुद्ध किया। यह कापी वैदिक यन्त्रालय में आज भी सुरक्षित है।

द्वितीय कापी – ऋषि ने इस शुद्ध की हुई प्रथम कापी से दूसरी प्रेस कापी सर्वांश में शुद्ध तैयार कराई। उसे प्रेस में एक साथ ही नहीं दे दिया। उसे स्वयं आद्योपान्त पढ़ा। अपने हाथ से संशोधन किया। यथास्थान आवश्यकतानुसार परिवर्तन भी किया। फिर प्रेस में भेजते समय थोड़ा थोड़ा भाग पुनः देखकर भेजते थे। इस से ही दूसरा संस्करण छपा।

द्वितीय संस्करण को सर्वथा शुद्ध छापने के लिये ऋषिवर ने पं॰ ज्वालादत्त और मुन्शी समर्थदान को नियुक्त किया। उनके प्रूफरीडिंग के उपरान्त प्रूफ अपने पास मंगाते थे, स्वयं शोधते थे, जो कुछ ठीक करना होता था ठीक करते थे, उसके अनुसार सब छपता था। जो भी संशोधन महाराज प्रूफ में करते थे, वह शुद्ध होकर छपता था। पर उसका प्रेस कापी में अनिवार्य रूप में आजाना तो अव्यवहारिक ही है। अतः हम द्वितीय संस्करण को अधिक प्रामाणिकता देते हैं।

प्रूफ स्वामी जी स्वयं भी शोधते थे। देखें :–

(1) "हिन्दी के प्रूफ शोधना मेरा ही कार्य समझना चाहिये और उसे प्रतिमास दो तीन बार अपने हाथ से करूंगा।" (ऋषि के पत्र)

(2) "जैसा इसको शोध के भेजते हैं वैसा पुनः कम्पोज करके छपा दो।" (ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन पूर्ण संख्या 636) प्रूफ भी ऋषि ने देखे, इसलिये दूसरा संस्करण ही प्रामाणिक है।

सर्वाधिक प्रामाणिकता किसकी – (1) प्रथम कापी, (2) द्वितीय कापी, (3) छपा द्वितीय संस्करण। यह तीनों आज वैदिक यन्त्रालय में सुरक्षित हैं। हस्तलिखित में मित्र शत्रु कोई भी परिवर्तन कर सकता है, छपे में परिवर्तन नहीं हो सकता।

एक बार दीपावली पर हम अजमेर पहुँचे। ऋषि की हस्तलिखित कापी का फोटो काच मञ्जूसा में रक्खा देखा। हमने अपने साथी से कहा कि, "सत्यार्थप्रकाश की भाषा में मिलावट पर सदा झगड़ा रहता है। क्यों न इस फोटो से ही चरबा (फोटो प्रति) उठवाकर सारा सत्यार्थप्रकाश छपवा दिया जाए। मिलावट का प्रश्न ही समाप्त हो जायेगा।"

साथी ने उत्तर दिया – "ताली यहां नहीं है। नहीं तो दिखाते हाशिये पर भी और पृष्ठ के अन्दर लेख में भी

मिलान करने वालों ने अपनी लेखनी चला दी है। यह हस्तलेख भी विशुद्ध नहीं है। यदि ऐसा ही छप गया तो नई नई बातें सामने आ जायेंगी। इसलिये किसी को भी किसी दाम पर भी फोटो न देने का निर्णय कर लिया गया है।" इसलिये प्रकाशित द्वितीय संस्करण ही सर्वाधिक प्रामाणिक है। उसके अनुसार ही सत्यार्थप्रकाश का प्रकाशन होना न्यायसंगत है।"

उपरोक्त से पहले पृष्ठ 14 पर योगी जी लिखते हैं," इसके आगे इसी पत्र में पलटे शब्दों की सूचना भेजने तथा छपे फार्म साथ साथ भेजने का महाराज का पुनः आदेश – जो जो छपता जाये सो सो बराबर हमारे पास भेजते जाओ! सत्यार्थप्रकाश में जो कोई ऐसा अनुचित शब्द हो निकालकर – जो हमारे आशय से विरूद्ध न हो वह शब्द उसके स्थान में धरना और हमको लिखकर सूचित करना कि यह शब्द धरे हैं।" = (पूर्ण संख्या 754 पत्र 512)

"सर्वथासुस्पष्ट है स्वामी जी की जानकारी के बिना कोई भी अक्षर शब्द नहीं पलटा जा सकता था। प्रूफ, फर्मे संशोधन स्वामी जी बराबर मंगाते थे और वे बराबर भेजते थे। जब भी ढील होती महाराज डांटते थे। दैनिक पत्र व्यवहार चलता था।"

ताम्रपत्रानुसारी के सम्पादकीय में लिखा है, "इन दोनों प्रतियों ((1) मूलप्रति, (2) मुद्रणप्रति अर्थात् प्रेस कापी) को ही महर्षि दयानन्द जी ने अपने हाथ से शोधा हुआ है।"

उपरोक्त योगी जी महाराज के लेख से सिद्ध है कि महर्षि दयानन्द के जीवन काल में छपा सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है।

प्रश्न– अजमेरी के 'इस संस्करण के सम्बन्ध में' नामक लेख में लिखा है, "मुद्रणप्रति के आधार पर सन् 1884 ईसवी में सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण छपा था" और भगवती के 'यह संस्करण' लेख में भी लिखा है कि "मुद्रणप्रति (प्रेस

कापी) के आधार पर संवत् 1941 (सन् 1884 ई०) में सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण छपा था।" महर्षि दयानन्द की मृत्यु संवत् 1940 (सन् 1883 ई०) में हो गई थी तो हम कैसे मान लें कि सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण महर्षि दयानन्द के जीवनकाल में छपा था ?

उत्तर– आप्तोपदेशः शब्दः।। – न्यायदर्शन अ० 1 आ० 1 – सू० 7 जो आप्त अर्थात् योगी होते हैं उन्हीं के वचनों को शब्द प्रमाण जानों। इसलिये ऊपर लिखे योगी (स्वामी सच्चिदानन्द योगी) और नीचे लिखे महायोगी (महर्षि दयानन्द सरस्वती) के वचनों को ध्यानपूर्वक पढ़ोगे तो सच्चाई सामने आ जायेगी। अतः

पढ़ प्यारे पढ़, जी लगा के पढ़।
जब जी जायेगा कढ़, तो कौन कहेगा पढ़।।

(1) श्री पं० भगवद्दत जी बी० ए० द्वारा सम्पादित ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन नामक पुस्तक में महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा मुन्शी समर्थदान प्रबन्धकर्ता वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग को लिखे गये पत्रों के अंश :–

(i) पूर्ण संख्या 577, पत्र 386 = "आज सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध करके 5 पृष्ठ भूमिका के और 32 पृष्ठ प्रथम समुल्लास से भेजे हैं, पहुँचेंगे।" = भाद्र वदी 1 मंगल संवत् 1939 (29 अगस्त 1882 ई०) राज मेवाड़ उदयपुर।।

(ii) पूर्ण संख्या 579, पत्र 388 = सत्यार्थप्रकाश अच्छे कागज और टैप में छपवाना। दो हजार कापी छपनी चाहियें। जहां जहां उचित समझो वहां वहां नोट दे देना। भाद्र वदी 12 संवत् 1939 (9 सितम्बर, 1882 ई०) उदयपुर नौलखा बाग।

(iii) पूर्ण संख्या 590, पत्र 393 = "कल तुम्हारे पास 33 पृष्ठ सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भेजेंगे।" संवत् 1939 आश्विन सुदी रवि (15 अक्तूबर 1882) उदयपुर।

(iv) पूर्ण संख्या 605, पत्र 402 = "5 भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के फारम भेजे थे सो पहुँच गये।" = मिति मार्ग शुदी 10 मंगल 1939 (19 दिसम्बर 1882)

(v) पूर्ण संख्या 636, पत्र 423 = "थोड़े से सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी भेजेंगे।" मिति फाल्गुन शु. 9 शनि सं. 1939 (17 मार्च 1883)

(vi) पूर्ण संख्या 638, पत्र 424 = "ऋग्वेद तथा सत्यार्थप्रकाश के भी पत्र परसों भेजे जायेंगे।" मिति फा. शु. 9 शनिचर सं. 1939 (17 मार्च 1883)

(vii) पूर्ण संख्या 670, पत्र 449 = "सत्यार्थप्रकाश बहुत जल्द छपना चाहिये।" मि. वै. शु. 3 सं. 1940 (9 मई 1883)

(viii) पूर्ण संख्या 710, पत्र 480 = "किन्तु आवश्यक सत्यार्थप्रकाश का छापना है चाहे वेदभाष्य एक आध महीना बन्द रहे, पर उसका छप जाना अत्यावश्यक है और अन्य पत्र भेजे हैं।" = मिति अ. ब. 6 सं. 1940 मंगलवार (26 जून 1883) जोधपुर राज मारवाड़ मरुस्थल।

(ix) पूर्ण संख्या 714, पत्र 483 = "सत्यार्थप्रकाश छपने में विलम्ब होना नहीं चाहिये।" मि. आ. व. 9 शुक्रवार संवत् 1940 (30 जून 1883) जोधपुर मारवाड़।

(x) पूर्ण संख्या 757, पत्र 514 = "सत्यार्थप्रकाश के पत्रे भी शीघ्र शीघ्र नहीं मंगाते हो, जितना कि हम अनुमान करते हैं।" मिति भाद्र बदी 5 सं. 40 (23 अगस्त 1883) जोधपुर राज मारवाड़।

(xi) पूर्ण संख्या 763, पत्र 516 = "ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्रे भेज दिये हैं।" = भाद्र वदी 30 संवत् 1940 (1 सितम्बर 1883) जोधपुर (मारवाड़)

(xii) पूर्ण संख्या 791, पत्र 534 = "सत्यार्थप्रकाश जो कि 13 समुल्लास ईसाइयों के विषय में है वह यहां से चले पूर्व अथवा मसूदे पहुँचते समय भेज देंगे।" मिति आश्विन वदी 8 सोमवार संवत् 1940 (24 सितम्बर, 1883) जोधपुर राज मारवाड़।

(xiii) ,पूर्ण संख्या 802, पत्र 542 = "एक भूमिका (फुट नोट – तेरह समुल्लास की अनु भूमिका) का पृष्ठ और 320 से ले के 34 तक (फुट नोट – यहां तक तेरहवां समुल्लास पूरा हो जाता है।) तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश के भेजते हैं सम्भाल लेना।" मिति आश्विन वदी 13 शनि संवत् 1940 (2 सितम्बर 1883) जोधपुर राज मारवाड़।

(2) सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में महर्षि दयानन्द सरस्वती लिखते हैं, "इस ग्रन्थ को भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके दूसरी बार छपवाया है। जो प्रथम छपने में कहीं–कहीं भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक ठीक कर दी गई है।"

(3) मुन्शी समर्थदान प्रबन्धकर्त्ता वैदिक यन्त्रालय, प्रयाग सत्यार्थप्रकाश के 'निवेदन' में लिखते हैं, "परमपूज्य श्री स्वामी जी महाराज ने यह 'सत्यार्थप्रकाश' ग्रन्थ द्वितीय बार शुद्ध करके छपवाया है।"

(4) दीपचन्द आर्य प्रधान आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, सत्यार्थप्रकाश के प्रकाशकीय में लिखते हैं, "ऋषि के जीवनकाल में छ द्वितीय संस्करणानुसार सम्पादन कराके विशुद्ध मूलरूप प्रस्तु किया गया है। महर्षि के ग्रन्थों में मिलावट अथवा सभी प्रका की बढ़ती हुई मनोवाञ्छित टिप्पणियों की बाढ़ को ट्रस् सर्वथा समाप्त करना चाहता है। ट्रस्ट ने इस दूषित मनोवृ को रोकने के लिये ऋषि के जीवनकाल में छपे सत्यार्थप्रका संस्कारविधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थों को फोटोप्रि से छपवा दिया है। सम्पादकों को उन मूल ग्रन्थों के अनुस ही सम्पादन करना चाहिये। प्रेस अशुद्धियां ठीक करने औ पाठ संशोधन करने में महान् अन्तर है। छपने–छपाने की अशुद्धियां तो ठीक करनी ही चाहियें। (अगस्त 1975)

उपरोक्त योगी, महायोगी, मुन्शी समर्थदान और दीपचन्द आर्य के वचनों का मन्थन :–

(1) महर्षि दयानन्द ने 'मूलप्रति', मुद्रणप्रति; (प्रेस कापी) और छापने के लिये प्रेस में भेजते समय थोड़े थोड़े भाग को अपने हाथ से शोधा है।

(2) स्वामी जी की आज्ञा या उन्हें सूचित किये बिना एक भी अक्षर, बिन्दु, विसर्ग और मात्रा का भेद नहीं कर सकते थे।

(3) पं० ज्वालादत्त और मुन्शी समर्थदान के प्रूफ रीडिंग के बाद प्रूफ अपने पास मंगाकर स्वामी जी स्वयं भी शोधते थे। जो कुछ ठीक करना होता था ठीक करते थे उसके अनुसार सब छपता था।

(4) महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश को शीघ्रातिशीघ्र छपवाना चाहते थे।

(5) स्वामी दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें समुल्लास के अन्त तक तीसरी बार शुद्ध करके अपने जीवन काल में ही प्रेस में छपने के लिये भेज चुके थे और चौदहवां समुल्लास मूलप्रति और मुद्रणप्रति में दो बार स्वामी जी के हाथ से शुद्ध किया हुआ बाद में प्रेस में पहुँचा है।

(6) 29 अगस्त 1882 से लेकर 29 सितम्बर 1883 तक ऋषि जी सत्यार्थप्रकाश का थोड़ा थोड़ा भाग प्रेस को भेजते रहे और प्रेस में भेजे हुए इन भागों को साथ की साथ छाप कर वापस स्वामी जी के पास भेजते रहे।

(7) सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण महर्षि दयानन्द के जीवनकाल में ही छपा था। इसीलिये 'अजमेरी' और 'भगवती' में यह लिखना कि सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण सम्वत् 1941 (सन् 1884 ई०) में (स्वामी दयानन्द की मृत्यु के बाद) छपा था, सरासर झूठ है, बिल्कुल ही असत्य है, सर्वथा ही मिथ्या है।

साच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप।
जा के ह्वदय साच है, ताके ह्वदय हरि आप।।

केवल अक्षर ज्ञान को इल्म, हुनर और विद्या नहीं कहते। धर्महीन मनुष्य पशु समान होता है। कहा भी है :–

(1) इल्म हुनर बिन विद्या बन्दा पशु बराबर होता है।
शेर सांप के डर से ज्यादा मूर्ख का डर होता है।।

(2) सत्यार्थप्रकाश के भ्रष्टकर्त्ता, और बिच्छु सर्प घवेरा।
जिसके मारें डंक जहर का, हो जाए घोर अन्धेरा।।

(3) सत्यार्थप्रकाश भ्रष्ट करके, मिथ्यार्थप्रकाश बनाया है।
यजुर्वेद चालीस तीन में, इनका इलाज बताया है।।



(7) कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा। भानमति ने कुणबा जोड़ा।।

प्रश्न– 'ताम्रपत्रानुसारी' के सम्पादकीय में विरजानन्द दैवकरणि ने लिखा है, मुन्शी समर्थदान ने अनेक स्थलों पर महर्षि के लिखे वाक्य, वाक्यांश, पदादि भी काट दिये हैं।" चतुर्दश समुल्लास में तो पूरे पूरे पृष्ठ काट दिये हैं। अनेक आयतें निकाल दी हैं।" फिर दैवकरणि जी 'अजमेरी' में लिखते हैं मुन्शी समर्थदान ने भी पुनरावृति समझकर अनेक आयतें और समीक्षायें आदि काट दी। क्या आप यह सच मानते हैं?

उत्तर– कभी नहीं। यह बिल्कुल झूठ है क्योंकि अमर शहीद पं॰ लेखराम आर्य मुसाफिर द्वारा लिखित महर्षि दयानन्द का जीवन चरित्र पढ़ने से यह सिद्ध हो जाता है कि स्वामी जी को अपनी सारी उम्र में एक ही सच्चा, ईमानदार, वफादार और विश्वासपात्र आदमी मिला था और वह था मुन्शी समर्थदान। दूसरे ऋषि के पत्र और विज्ञापन नामक पुस्तक में महर्षि दयानन्द द्वारा मुन्शी समर्थदान को लिखे अनेकों पत्रों के पढ़ने से भी यह बात सिद्ध हो जाती है कि मुन्शी समर्थदान जैसा निष्कपटी, निष्खोट, लग्नशील, दक्ष, श्रेष्ठ आर्य पुरूष, व्यवहार कुशल व्यक्ति महर्षि दयानन्द को दूसरा नहीं मिला। एक पत्र में ऋषि जी लिखते हैं, "बड़े भाग्य से और ईश्वर की कृपा से उत्तम पुरूष को उत्तम पुरूष मिलता है।"

विरजानन्द दैवकरणि ने मुन्शी समर्थदान पर यह मिथ्या दोषारोपण इसलिये किया है कि स्वयं विरजानन्द के मन में समर्थदान के बहाने से ऐसी गड़बड़ी करने की इच्छा थी और

कर दी। सत्यार्थप्रकाश में अनेकों स्थलों पर वाक्य, वाक्यांश, पदादि और पैरे आदि के भ्रष्टीकरण कर दिये हैं। तेरहवें समुल्लास में पांच आयतें और इनकी समीक्षायें बढ़ा दी, 54 आयतों के पतों में परिवर्तन कर दिया और चौदहवें समुल्लास में ग्यारह आयतें और इनकी समीक्षायें बढ़ा दी, 229 आयतों के पतों में परिवर्तन आदि कर दिया तथा उक्त दोनों समुल्लासों में कई कई आयतों के दो दो तीन तीन भाग कर दिये और अपने अब तक के जीवन में चार सत्यार्थप्रकाशों को बिगाड़ दिया। भगवान् इनका भला करे।

प्रश्न– भगवती लेज़र प्रींट्स, नई दिल्ली से प्रकाशित अक्तूबर–नवम्बर 2003 के मासिक मुखपत्र 'पथ–प्रदर्शिका' के पृष्ठ 12 पर विरजानन्द दैवकरणि जी लिखते हैं, "प्रतिलिपिकर्त्ता चमार नीच आदि शब्दों का प्रयोग करता है। जैनियों को अभद्र शब्द लिखता, चारवाक प्रकरण में अश्लील स्पष्टार्थ शब्दों का लेखन करता है।" आप इसको कैसा मानते हैं ?

उत्तर– दूसरों को नसीहत। खुद मियां फजीहत।।

अर्थात् = दूसरों को गलत काम न करने का उपदेश करता फिरे।

खुद श्रीमान् गलत काम करता रहे, और बदनामी भरता फिरे।।

कुख्यात डाकू होकर दूसरों को डाका न मारने का उपदेश देना किसी को भी शोभा नहीं देता। आप हाथी से भी बड़ा चौथ मारे और चिड़िया को बींट करने से भी रोके। ऐसे भ्रष्टीकरणकर्त्ता से भगवान् बचाये। यह तो ऐसी ही बात हो गई कि गाल में हगै और आंख दिखावै। उलटा चोर कोतवाल को डांटे।

श्रीमान् विरजानन्द दैवकरणि ने स्वामी दयानन्द द्वारा

'चमार' शब्द का उचित रूप से प्रयोग करने को भी गलत बताया है परन्तु स्वयं दैवकरणि ने अपने द्वारा सम्पादित चारों सत्यार्थप्रकाशों में 'चमार' शब्द का प्रयोग किया है। देखिए,

(1) ताम्रपत्रानुसारी दूसरा समुल्लास पृष्ठ 23 पर दो बार 'चमार आदि नीच' लिखा है। फिर इसी के पृष्ठ 180 पर चमार लिखा है।

(2) झज्जरी के पृष्ठ 67 पर 'चमार' लिखा तथा पृष्ठ 68 पर 'चमार' लिखा। पुनः इसी के पृष्ठ 495 पर भी 'चमार' शब्द लिखा है।

(3) अजमेरी के पृष्ठ 40 पर 'चमार' लिखा एवं पृष्ठ 41 पर 'चमार' लिखा। तथा इसी के पृष्ठ 279 पर 'चमार' लिखा हुआ है।

(4) भगवती के पृष्ठ 26 पर दो बार और पृष्ठ 182 पर एक बार 'चमार' लिखा है। चारों सत्यार्थप्रकाशों में कुल मिलाकर बारह बार 'चमार' शब्द लिखा है। क्या यह ऊपर लिखे हाथी के शुभ कर्म से छोटा कर्म है? दूसरे जैनियों को 'अभद्र' और चारवाक प्रकरण में 'अश्लील' शब्द लेखन बताने वाले दैवकरणि का शब्द प्रयोग भी द्रष्टव्य है। झज्जरी पृष्ठ 68, अजमेरी पृष्ठ 41, भगवती पृष्ठ 26 पर महाराज दैवकरणि जी सत्यार्थप्रकाश दूसरे समुल्लास के वाक्य में मिलावट करके लिखते हैं, "तब वे अन्धे और लुच्चे बोलते हैं।" इस वाक्य में 'अन्धे और लुच्चे' ये तीन शब्द विरजानन्द दैवकरणि ने अपनी तरफ से मिलाये हैं। क्या 'अन्धे' अभद्र और 'लुच्चे' अश्लील (गन्दे) शब्द नहीं हैं? यह तो अवश्य ही हाथी कर्म है।

तीसरे इस श्रीमान् जी ने 'नीच' शब्द लिखने पर ऐतराज किया है। परन्तु इन्होंने स्वयं ही ताम्रपत्रानुसारी के पृष्ठ 23 व 180, झज्जरी के पृष्ठ 497, अजमेरी के

पृष्ठ 280 और भगवती के पृष्ठ 183 पर चारों में कुल पांच बार 'नीच' शब्द लिखा है। इसीलिये तो मैंने विरजानन्द दैवकरणि के लिये लिखा है, "दूसरों को नसीहत। खुद मियां फजीहत।"

सच्चे को सच्चा, ईमानदार को ईमानदार, चोर को चोर, अभद्र को अभद्र, अश्लील (गन्दा) को अश्लील और नीच को नीच कहना कोई बुरी बात नहीं है ये तो उनके गुणों के नाम हैं। जैसे किसी के विषय में कोई पूछे कि 'वह कैसा है?' यदि वह चोर है तो बताने वाले को कहना ही पड़ेगा कि वह चोर है अन्यथा उसके चोरी के गुण को बताने के लिये क्या कहकर बताएं? इसी प्रकार स्वर्णकार को सुनार, कुम्भकार को कुम्हार, लोहकार को लुहार और चर्मकार को चमार कहना भी बुरी बात नहीं है क्योंकि ये इनके धन्धों के नाम हैं। जैसे किसी पढ़ाने वाले को अध्यापक कहना उसका अपमान नहीं है प्रत्युत उसका मान करना है। इसी प्रकार किसी के धन्धे का नाम लेना उसका अपमान करना नहीं है बल्कि ऐसा कहना उसका मान करना है।

प्रश्न– महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के आरम्भ से लेकर अन्त तक बायें पृष्ठ पर सत्यार्थप्रकाश और दायें पृष्ठ पर समुल्लास का नाम लिखा है। अर्थात् जैसे सत्यार्थप्रकाश को कहीं भी खोलकर देखें तो बाईं ओर के पृष्ठ पर सत्यार्थप्रकाश और दाईं ओर के पृष्ठ पर समुल्लास का नाम जैसे "पञ्चमसमुल्लासः" ऋषि जी ने ऐसा लिखा है। परन्तु बाद के कुछ सम्पादकों, प्रकाशकों और टिप्पणीकर्त्ताओं आदि ने स्वामी दयानन्द से उलट दिया है। इनमें कौन सा ठीक है और क्यों?

उत्तर – जैसा ऋषि दयानन्द ने दिया है वैसा ही ठीक है क्योंकि यह आर्ष और सार्थक है। जिन्होंने ऋषि के उलट दिया है वह गलत है क्योंकि वह अनार्ष और निरर्थक है। जैसे ऋषि का = सत्यार्थप्रकाशः – पञ्चमसमुल्लासः = इसका अर्थ है सत्यार्थप्रकाश का पाँचवां समुल्लास या सत्यार्थप्रकाश में पाँचवां समुल्लास आदि। इसके उलट देखिये :—

पञ्चमसमुल्लास :— सत्यार्थप्रकाशः = इसका अर्थ है पाँचवें समुल्लास का सत्यार्थप्रकाश या पाँचवें समुल्लास में सत्यार्थप्रकाश या पाँचवें समुल्लास से सत्यार्थप्रकाश आदि। यहां कोई पूछ सकता है क्या सत्यार्थप्रकाश पाँचवें ही समुल्लास का है, अन्य समुल्लासों का नहीं है? अतः ऋषि के उलट लिखना अर्थहीन है, अनार्ष है। जैसे कोई बायें पृष्ठ पर पिता और दायें पर पुत्र लिख दे तो ठीक है क्योंकि इसका अर्थ होगा पिता से पुत्र और यदि इसके उलट लिख दे तो उसका अर्थ होगा पुत्र से पिता जो बिल्कुल ही असम्भव है। इसीलिये ऋषि दयानन्द का लिखा ही ठीक है।

वेदानन्दी में ऋषि दयानन्द के विरूद्ध लिखा है। बड़े भारी आश्चर्य की बात है कि वेदों का महान् विद्वान् और सोलह सतरह भाषाओं का विद्वान् भी इस जरा सी बात को समझ नहीं सका। फिर विरजानन्द दैवकरणि ने ताम्रपत्रानुसारी में दयानन्दर्षि से भिन्न देकर झज्जरी में ऋषि दयानन्द वाला दिया। इसके चार साल बाद अजमेरी में इसके उलट दिया तथा इसके भी चार साल बाद भगवती में वही दयानन्द की तरह दे दिया। इन्हें निश्चय ही नहीं हो रहा कि कौन सा ठीक है। इनका दावा है कि चारों सत्यार्थप्रकाश मूलप्रति से एक एक अक्षर का मिलान करके छपवाये हैं। परन्तु इन चारों की इस प्रकार की भिन्नताएं इनके दावे को खारिज करके सर्वथा ही झूठा सिद्ध कर रहीं हैं।

प्रश्न– सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में ऋषि का पाठ :–
"इस ग्रन्थ में जो कहीं कहीं भूल चूक से अथवा शोधने तथा छापने में भूल चूक रह जाए उसको जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायेगा।" ऋषि के इस पाठ से कुछ लोग यह मतलब निकालते हैं कि ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में संशोधन करने की छूट दे रक्खी है कि कोई भी उनके इस ग्रन्थ का संशोधन कर सकता है। क्या ऋषि ने यह छूट दे रक्खी है?

उत्तर– कभी नहीं। जब ब्रह्मा से लेकर जैमिनि ऋषि तक तीन हजार प्रामाणिक ग्रन्थों के रचयिता ऋषि मुनियों ने अपने किसी भी ग्रन्थ के संशोधन की छूट नहीं दी तो अकेले दयानन्द यह कुकृत्य करने की छूट कैसे देते? यहां तक कि स्वीकार पत्र में भी अपने ग्रन्थों के संशोधन का अधिकार ऋषि ने किसी को नहीं दिया। कभी किसी विरोधी ने ऋषि ग्रन्थों में परिवर्तन नहीं किया। यह डिण्डिम घोष से घोषणा तो गुरुद्रोही अनार्ष सिंह चाम ओढ़ कर अपने को अजेय समझने वाले नकली आर्य ही कर रहे हैं। सत्यार्थप्रकाश में इनके मिलाये हुए वाक्य बुद्धि को ऐसे ही भ्रष्ट कर देते हैं जैसे गंगाजली में भर कर रखी हुई मदिरा। जिनके दिमाग में यह है कि हम योग्य विद्वान् शिष्य हैं, गुरु दयानन्द को ठीक करेंगे, वे ही ऋषि के पाठ का गलत अर्थ निकालते हैं। वे ऋषि भक्ति के चोले में अपने मनघड़न्त ऋषि के विरुद्ध विचार उसके ग्रन्थ में भरकर आर्यों को पथभ्रष्ट कर रहे हैं। यह सब बिना पंख आकाश की उड़ान है, जो लोगों में अज्ञान का प्रसार करती है। मार्ग भ्रष्ट कभी उद्देश्य पर नहीं पहुँचा करता। अतः इन्हें अपनी गलत हरकतों को छोड़कर सही मार्ग पर आ जाना चाहिये।

हम निवेदन करना चाहते हैं कि ऋषि के इन वाक्यों

का यह अभिप्राय कभी नहीं है। किसी प्रकार भी यह मतलब नहीं निकाला जा सकता कि ऋषि दयानन्द के सिवाय कोई दूसरा मनुष्य सत्यार्थप्रकाश का संशोधन कर सकता है। ऋषि ने स्पष्ट लिखा है 'जानने जनाने पर' अर्थात् मैं (ऋषि दयानन्द) जान लूंगा, या मुझे (ऋषि दयानन्द को) किसी अन्य मनुष्य के द्वारा जना दिया जायेगा और ऋषि दयानन्द जान जायेंगे तो संशोधन कर देंगे।।

दोहा = उदित उदयगिरि मंच पर ज्ञान का बाल पतंग।
विकसे सन्त सरोज सब हरषे लोचन भृंग।।

चौपाई = 1. दुष्टन केरि आशा निशि नाशी।
वचन नखत अवली न प्रकाशी।।

2. भ्रष्टीकरणकर्त्ता सकुचाने।
ये कपटी उलूक लुकाने।।

3. भए विशोक कोक मुनि देवा।
बरसहिं सुमन जनावहिं सेवा।।

अर्थ – दोहा = उदयाचल (उदयगिरि) के मंच (स्टेज) पर ज्ञान का सूर्य उदय हो गया है। जैसे सूर्य उदय होने से कमल खिल जाते हैं, वैसे भ्रष्टीकरणों के खण्डनात्मक ज्ञान को पढ़ कर सन्त लोग प्रसन्न हो गये हैं। जैसे खिले हुए कमलों को देखकर भौंरे (भृंग) के नेत्र प्रसन्न हो जाते हैं, वैसे ज्ञानामृत पीकर सन्तों की आत्मा के ज्ञाननेत्र हर्षित हो गये हैं।

चौपाई =

1. सूर्य रूपी ज्ञान के उदय होने से दुष्ट भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं की रात (निशि) रूपी आशा नष्ट हो गई है जैसे सूर्योदय होने पर तारों का समूह प्रकाशित नहीं रहता वैसे सत्यार्थप्रकाश में किये भ्रष्टीकरण मेरे खण्डन से नष्ट हो गये हैं।

2. जैसे सूर्य निकलने पर उल्लू अन्धेरी गुफाओं में जा छिपते

हैं वैसे मेरे इस भ्रष्टीकरणों के खण्ड़न को पढ़कर ये भ्रष्टीकरणक सिकुड़ कर अपने अपने घरों में जा- घुसे हैं।

3. जैसे रात समाप्ति अर्थात् सूर्य निकलने पर शाम (सूर्यास्त के बिछड़े हुए चकवा चकवी (कोक) शोकरहित हो जाते हैं, वै सत्यार्थप्रकाश में किये भ्रष्टीकरणों से दुःखित ऋषि मुनि और विद्वा उदयाचल को पढ़ने से शोकरहित होकर पुष्पवर्षा द्वारा सेवा ज रहे हैं।

अभी तो ज्ञान का सूर्य निकला ही है।

प्रारम्भ है भाण्डाफोड़ का रोता है क्या।
आगे आगे देखिये होता है क्या।।

इस भाण्डाफोड़ पुस्तक को पढ़कर भी यदि कोई शंका र जाय और शंका के प्रैशर से आपका सिर चकराने लगे तो करनाः–

सिर जो तेरा चकराये और दिल डूबा जाये।
आजा प्यारे पास हमारे काहे घबराये।।

इसके आगे सत्यार्थप्रकाश के सूचीपत्र, भूमिका, चौदह समुल्ल और स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में किये सभी भ्रष्टीकरणों को क्रम दिखाते हुए उन उन में से नमूने के तौर पर कुछ की दिग्दर्शनम व्याख्या की जायेगी।

पाठक! देखा आपने उदयाचल का इतना लम्बा द्रविड़ प्राणाया

इति उदयाचल

13–3–2004



3. सत्यार्थप्रकाश के सूचीपत्र में भ्रष्टीकरण

(1) वेदानन्दी के सूचीपत्र में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या=283
(2) ताम्रपत्रानुसारी " " " " " " = 19
(3) झज्जरी " " " " " " = 65
(4) अजमेरी " " " " " " = 71
(5) भगवती " " " " " " = 69
(6) सिद्धान्ती " " " " " " = 36

प्रश्न– जब सभी ने मूलप्रति से एक–एक अक्षर का मिलान करके महर्षि दयानन्द के शब्दों, वाक्यों को ज्यों का त्यों रखने का लेख सम्पादकीय आदि में लिखा है तो सभी की यह परस्पर भिन्नता क्यों है ?

उत्तर– इसका एक ही कारण हो सकता है कि महर्षि दयानन्द जो इस समय मुक्तावस्था में ब्रह्मानन्द में विचर रहे हैं, उन्होंने परमात्मा से प्रार्थना की होगी कि "हे प्रभु ! मुझे कुछ काल के लिये मुक्ति से छुट्टी दे दो क्योंकि भारतवर्ष निवासी श्री विरजानन्द दैवकरणि जी आजकल सत्यार्थप्रकाश को ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण कराने का विचार कर रहे हैं। ये महाराज मेरे द्वारा पूर्वकाल में लिखवाई और मेरे ही द्वारा संशोधित मूलप्रति से कुछ भिन्न प्रकार की मूलप्रति चाहते हैं। मैं वहां जाकर इनको चार मूलप्रतियां जो परस्पर एक दूसरी से भिन्न भिन्न प्रकार की होंगी लिखवा दूंगा। ये महाराज हेराफेरी में बड़े चतुर हैं। ये भिन्न भिन्न कालों में मेरी एक एक मूलप्रति से मेरे वाक्यों को ज्यों का त्यों रखते हुए चार प्रकार के सत्यार्थप्रकाश छपवा देंगे।"

परमात्मा तो स्वभाव से ही दयालु हैं। उनको दैवकरणि

जी पर दया आ गई और उन्होंने स्वामी दयानन्द को फौजियों की तरह दो महीने की छुट्टी भेज दिया। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने यहां आकर दैवकरणि जी को भिन्न भिन्न प्रकार की चार मूलप्रतियां लिखवा दीं और स्वामी जी ने दैवकरणि के कान में धीमी आवाज में कहा, "मेरे द्वारा सर्वप्रथम लिखवाई हुई मूलप्रति परोपकारिणी सभा अजमेर में है। यह मूलप्रति भी ले लेना। प्रत्येक मूलप्रति को काम में लाने से पहले परोपकारिणी की मूलप्रति को इनके अनुसार साथ साथ भ्रष्ट करते जाना ताकि बाद में काम आये अर्थात् कोई पूछे कि स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपे सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण से आप द्वारा सम्पादित सत्यार्थप्रकाश भिन्न क्यों है तो कह देना कि मैंने स्वामी दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रक्खा है। यदि सन्देह हो तो अजमेर जाकर वैदिक यन्त्रालय में सुरक्षित मूलप्रति देख लो। फिर तेरी भी चुप और मेरी भी चुप।" श्री विरजानन्द दैवकरणि ने स्वामी दयानन्द की आज्ञा का अक्षरशः पालन किया। उपरोक्त दुर्घटना से ही दैवकरणि द्वारा सम्पादित चारों सत्यार्थप्रकाश भिन्न भिन्न प्रकार के हो गये। पाठक! देखा आपने, पौराणिक पोपों के अवतारों की तरह अब आर्यों के ऋषि भी अवतार धारण करने लग गये हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी तेरहवें समुल्लास की अनुभूमिका में लिखते हैं, "मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है।" इसीलिये महर्षि ने सूचीपत्र में मुख्य मुख्य विषयों के शीर्षक दिये हैं। सहस्रों गौण विषय भी इन्हीं मुख्य मुख्य विषयों के अन्तर्गत ग्रहण हो जाते हैं। जैसे चिड़ियाघर में शेर हाथी, गीदड़, हिरण, तोते, बन्दर और चिड़िया अनेक प्रकार के पशु पक्षी होते हैं। परन्तु सबके घर का सांझा नाम चिड़ियाघर ही है। इसका नाम शेरघर नहीं, हाथीघर नहीं, बन्दर और (2)

गीदड़घर नहीं रक्खा। इसी प्रकार शेर आदि के स्थान पर शेरकक्ष आदि लिखते हैं चाहे शेर दश प्रकार की नस्लों के हों। प्रत्येक नस्ल का नाम शेरघर लिखने से ग्रहण हो जाता है।

एक दूसरे उदाहरण से भी देखिये। एक मनुष्य शरीर रचना की जानकारी देने के लिये अपनी पुस्तक का नाम रखता है 'शरीर विज्ञान'। इस 'शरीर विज्ञान' पुस्तक के सूचीपत्र में शीर्षक लिखता है 'सिर', हाथ, छाती, पेट, पाँव, हृदय, तिल्ली, जिगर, फेफड़े आदि। अब आँख, नाक, कान, दिमाग आदि के गौण विषयों का ग्रहण सिर के ग्रहण में ही हो जाता है। प्रत्येक गौण अंग के लिये सूचीपत्र में शीर्षक देना अपनी महामूर्खता का परिचय देना है। परन्तु इन भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं ने अपनी महामूर्खता नहीं नहीं, अपनी परममूर्खता का परिचय दे ही दिया है। कुछ नमूने दिग्दर्शनमात्र देखिये जैसेः 1. दूसरे समुल्लास के सूचीपत्र में ऋषि का दिया शीर्षक = भूतप्रेतादिनिषेध। वेदानन्दी के शीर्षक = भूतप्रेतादिखण्डन, फलितज्योतिष निराकरण, मारणमोहन यन्त्र मन्त्र तन्त्र खण्डन।।

समीक्षा – महर्षि ने अन्धविश्वास के भूतप्रेत मुख्यविषय के साथ 'आदि' शब्द लिखकर यह समझा दिया कि अन्धविश्वास के और भी विषयों का निषेध। 'खण्डन' और 'निराकरण' ये दोनों शब्द तो ऋषि के दिये 'निषेध' शब्द में ही समा जाते हैं, फिर अपनी खिचड़ी अलग पकाना परममूर्खता नहीं तो क्या है ?

(2) चौथे समुल्लास के सूचीपत्र में ऋषि का शीर्षक = पञ्चमहायज्ञाः।

वेदानन्दी के शीर्षक = पितृयज्ञ, वैश्वदेव यज्ञ, अतिथि यज्ञ।

समीक्षा – ऋषि का पाठ सारगर्भित और पूर्ण है और वेदानन्दी का उखड़ा हुआ और अधूरा है। अपने गुरू दयानन्द का सुधार

करने की धुन की हड़बड़ाहट में वेदानन्द जी महाराज दो यज्ञ (ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ) लिखना ही भूल गये। वाह रे! गुरू के सुधारक फिल्मी चेले तेरा क्या कहना। दयानन्द की गम्भीरता और गहराई को न समझकर वृथा थोथा पोथा बढ़ा दिया।

(3) ग्यारहवें समुल्लास के सूचीपत्र में ऋषि शीर्षक = तीर्थशब्दस्यार्थः (अर्थात् तीर्थ शब्द का अर्थ = तराने वाला।) वेदानन्दी के शीर्षक = 1. तीर्थ, 2. यथार्थतीर्थ।

समीक्षा – स्वामी दयानन्द तीर्थ (तराने वाला) माता–पिता और आचार्य को इसलिये कहते हैं कि ये अपनी सन्तान और शिष्यों को तराकर दुःख और अज्ञान से पार कर देते हैं। गंगा नदी आदि तीर्थ अर्थात् तराने वाली नहीं हैं, बल्कि डुबाने वाली हैं। हां, नौका आदि तो तराने वाली हैं।
अब श्रीमान् वेदानन्द जी का परिवर्तन परखिये :–
1. यथार्थतीर्थ = असली तीर्थ = माता पिता आचार्य आदि।
2. तीर्थ = गंगा आदि नदियां। यहां वेदानन्द जी का यह अर्थ हुआ कि गंगा आदि नदियां तीर्थ (तराने वाली) तो हैं पर असली तीर्थ नहीं हैं। अब देखिये गंगा आदि नकली तीर्थ ही सही पर तीर्थ (तराने वाली) तो मान ली। परन्तु दयानन्द इन्हें डुबाने वाली मानते हैं। दोनों के विरोध की परीक्षा ऐसे है कि जिस मनुष्य को तैरना न आता हो उसे गंगा नदी के बीच में ले जाकर छोड़ दो। यदि गंगा तराने वाली है तो उस मनुष्य को डूबने नहीं देगी। पाठक! देखा आपने वेदानन्द की वेदानन्दी और उसके अण्डबण्ड शीर्षक।

(4) चौथे समुल्लास के सूचीपत्र में ऋषिशीर्षक = प्रातरुत्थानम्। झज्जरी, अजमेरी, भगवती में = प्रातरुत्थानादि धर्मकृत्यम्।

समीक्षा – महर्षि का पाठ ठीक है। विरजानन्द दैवकरणि ने प्रातः उठना धर्म में मिलाकर गजब ढ़ा दिया, अनर्थ कर दिया

क्योंकि प्रातः उठना नियमों में है जबकि धर्म यमों में है।

(5) ग्यारहवें समुल्लास के सूचीपत्र में ऋषि शीर्षक = तीर्थशब्दस्यार्थः। झज्जरी, अजमेरी, भगवती में = नामस्मरणतीर्थशब्दयोर्व्याख्या। समीक्षा – ऋषि का दिया शीर्षक स्पष्ट और भावभीना है। विरजानन्द दैवकरणि का ऐसा है जैसे ऊँट के गले में बकरी बाँध दी हो। देखिये – 'नामस्मरण' और 'तीर्थ' दोनों को एक ही शीर्षक में बान्धना बिल्कुल बेतुकी बात है क्योंकि नामस्मरण का अर्थ है परमात्मा के भिन्न भिन्न नामों को याद करके आप भी वैसा ही बनना जैसे परमात्मा का नाम न्यायकारी और दयालु है तो परमात्मा के इन नामों का स्मरण करके आप भी न्यायकारी और दयालु होने को नामस्मरण कहते हैं और तीर्थ कहते हैं दुःखों से तराने वाले माता–पिता और आचार्य आदि को। अतः इन स्वरूप से भिन्न शब्दों को एक ही शीर्षक में बाँधना ऊँट के गले में बकरी बाँधना ही तो हुआ।

दूसरे ऋषि दयानन्द लिखते हैं 'अर्थ' और विरजानन्द दैवकरणि जी लिख रहे हैं 'व्याख्या'। अर्थ तो जैसे शब्दार्थ वा भावार्थ छोटे रूप में होता है, परन्तु व्याख्या लंबे चौड़े विस्तृत वर्णन को कहते हैं। अतः इस प्रकार के परिवर्तन अनिष्टकारी हैं।

(6) बारहवें समुल्लास के सूचीपत्र में महर्षि दयानन्द जी द्वारा दिया हुआ शीर्षक = चारवाकादिनास्तिक भेदाः। झज्जरी, अजमेरी, भगवती में = बौद्धादिनास्तिक भेदाः। समीक्षा – स्वामी जी का तात्पर्य है, चारवाक, बौद्ध और जैन इन तीनों नास्तिकों का परस्पर भेद।

विरजानन्द का मतलब है, बौद्ध और जैन नास्तिक मतों का परस्पर भेद। इसका यह भी अर्थ हुआ कि नास्तिक चारवाक मत का बौद्ध और जैन से कोई भेद नहीं, परन्तु ऐसा होना असम्भव है कि दो परस्पर भिन्न मतों से तीसरे की एक रूपता हो सके। वास्तव में बात यह है कि ये तीनों

नास्तिक मत बहुत सी बातों में एक से हैं और कुछ कुछ बातों में तीनों भिन्न भी हैं। अतएव ऐसा परिवर्तन छोकर बुद्धि का परिचायक है।

(7) सत्यार्थप्रकाश के सूचीपत्र में समुल्लास सूचक स्वामी दयानन्द का पाठ = प्रथम समुल्लास, द्वितीय समुल्लास, तृतीय समुल्लास, चतुर्थ समुल्लास आदि आदि।

झज्जरी, अजमेरी, भगवती में = 1 समुल्लास, 2 समुल्लास, 3 समुल्लास, 4 समुल्लास आदि आदि।

समीक्षा – महर्षि का पाठ सर्वांश में सही है। विरजानन्द का पाठ सर्वथा ही गलत है। मेरे प्यारे बन्धु दैवकरणि ! यदि आपको परिवर्तन का उन्माद इतना अधिक हो गया था कि आप इस दुष्कृत्य से रूक ही नहीं सकते थे तो कम से कम सही परिवर्तन तो करना था जैसे १म समुल्लास, २य समुल्लास, ३तीय समुल्लास, ४थ समुल्लास आदि आदि।

आपका यह परिवर्तन तो न इधर का रहा, न उधर का रहा। न खुदा ही मिला न बिसाले शनम।।

एक जुल्म और कर दिया कि ऋषि के दिये बहुत से शीर्षक वेदानन्द और दैवकरणि ने निकाल ही दिये तथा अपनी ओर से सैकड़ों शीर्षक बढ़ा दिये। सत्यार्थप्रकाश के सभी विषयों के शीर्षक सूचीपत्र में दे देना असम्भव है, क्योंकि सत्यार्थप्रकाश ऋग्वेद से लेकर मीमांसा दर्शन तक लगभग तीन हजार संस्कृत के ग्रन्थों का सार है। उक्त तीन हजार ग्रन्थों के सभी विषय सार रूप से सत्यार्थप्रकाश में आये हुए हैं। यदि सभी विषयों के शीर्षक सूचीपत्र में देने लगें तो हजारों शीर्षक हो जायेंगे। इसलिये जो ऋषि दयानन्द ने मुख्य मुख्य विषयों के शीर्षक दिये हैं वही काफी हैं, क्योंकि 'मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है।'



4. भूमिका आदि में भ्रष्टीकरण

(1) वेदानन्दी की भूमिका में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या = 26
(2) ताम्रपत्रानुसारी " " " " " " = 9
(3) झज्जरी " " " " " " = 98
(4) अजमेरी " " " " " " = 110
(5) भगवती " " " " " " = 117
(6) सिद्धान्ती " " " " " " = 26

कहते हैं 'सिर मुंडाते ही ओले पड़े।'

श्री विरजानन्द दैवकरणि जी ने स्वामी ओमानन्द सरस्वती के पुस्तकालय से अलग होते ही गुरुकुल प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष पद का दुरुपयोग करते हुए भूमिका के प्रथम शब्द तथा प्रथम वाक्य से ही भ्रष्टीकरणों का शुभारम्भ कर दिया। इस महाशय को भय था कि स्वामी ओमानन्द जी उत्कीर्णता के आरम्भिक लेख को तो अवश्य ही देखेंगे। अतएव ताम्रपत्रानुसारी के आरम्भ में परिवर्तन नहीं किये अन्यथा ओमानन्द जी अपनी क्रोधाग्नि में इनको भस्म कर देते। पाठकों के मिलान की सुविधा के लिये आर्ष सत्यार्थप्रकाश (आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपा सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण) और दैवकरणि द्वारा सम्पादित सत्यार्थप्रकाश दोनों का एक-एक पैरा नीचे देता हूँ, ताकि ऋषि की वाणी के चोर की चोरी आसानी से पकड़ी जा सके।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश भूमिका के आरम्भिक पैरे में ऋषि का पाठ = "जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था उस समय और उस से पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने और जन्मभूमि की भाषा गुजराती होने के कारण से मुझ को इस भाषा का विशेष परिज्ञान न था इससे

भाषा अशुद्ध बन गई थी। अब भाषा बोलने और लिखने का अभ्यास हो गया है इसलिये इस ग्रन्थ को, भाषा व्याकरणानुसार शुद्ध करके, दूसरी बार छपवाया है। कहीं–कहीं शब्द, वाक्य रचना का भेद हुआ है सो करना उचित था क्योंकि इसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है प्रत्युत विशेष तो लिखा गया है। हां, जो प्रथम छपने में कहीं कहीं भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक ठीक कर दी गई है।"

झज्जरी के पृष्ठ 9, अजमेरी के पृष्ठ 9 और भगवती के पृष्ठ 7 का पाठ = "सत्यार्थप्रकाश को दूसरी बार शुद्ध करके छपवाया है, क्योंकि जिस समय मैंने यह ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' बनाया था, उस समय और उससे पूर्व संस्कृत भाषण करने, पठन पाठन में संस्कृत ही बोलने का अभ्यास और जन्मभूमि की भाषा गुजराती थी, इत्यादि कारणों से मुझको इसं भाषा का विशेष परिज्ञान न था। अब इसको अच्छे प्रकार भाषा के व्याकरणानुसार जानकर अभ्यास भी कर लिया है, इस समय इसकी भाषा पूर्व से उत्तम हुई है। कहीं कहीं शब्द वाक्य रचना का भेद हुआ है, वह करना उचित था, क्योंकि उसके भेद किये बिना भाषा की परिपाटी सुधरनी कठिन थी, परन्तु अर्थ का भेद नहीं किया गया है, प्रत्युत विंशेष तो लिखा गया है। हां, जो प्रथम छपने में कहीं–कहीं भूल रही थी, वह–वह निकाल शोध कर ठीक ठीक कर दी गई है।"

पाठक ! देखा आपने खिचड़ी से भरी विरजानन्द की रेल,
जो चलती है बिन पानी बिन तेल।।
जब ब्रह्म मारेगा इसके तन में हजारों सेल।
तो इसकी नकली रेल हो जागी बिल्कुल फेल।

उपरोक्त ऋषि के पाठ से इनका पाठ जहां जहां भिन्न है, वहीं वहीं पर ऋषि की भाषा, भाव और शैली छूटकर अनार्ष भाषा, भाव और शैली आ गई है।

(2) आर्ष सत्यार्थप्रकाश की भूमिका में ऋषि का पाठ :– "आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करने से नहीं हठते।"

वेदानन्दी के पृष्ठ 3 पर, अजमेरी के 11, झज्जरी के 13, भगवती के 7 और सिद्धान्ती (जगदेव सिंह "सिद्धान्ती" तर्कवाचस्पति द्वारा लिखित टिप्पणियों सहित सत्यार्थप्रकाश) के पृष्ठ 11 पर भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का पाठ :–

"आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी सत्यार्थप्रकाश करने से नहीं हटते।"

समीक्षा :– ऋषि ने 'हठ' धातु का प्रयोग किया है। 'हट' धातु का दूसरा ही अर्थ है। फिर स्पष्टीकरण कैसे ? ऋषि के कथन में प्रबलता पूर्वक प्रभावी ढंग से दबाव है, परन्तु इन महाशयों के कथन में साधारण सी बात है। पूरे सत्यार्थप्रकाश में अनेकों जगह 'हठ' का प्रयोग ऋषि ने किया है और इन श्रीमानों ने प्रत्येक स्थान पर 'हठ' हटाकर 'हट' कर दिया है क्योंकि योग्य शिष्यों को अयोग्य गुरु का सुधार जो करना था। इन्होंने दयानन्द का नखशिखाग्र पर्यन्त सुधार कर दिया पर अब भी चैन से नहीं बैठते। सुधार क्षेत्र का विस्तार करते ही जा रहे हैं, लेकिन इन्हें यह पता होना चाहिये कि 'ज्यों–ज्यों भीगै कम्बली, त्यों–त्यों भारी होय।' इनके पापों की गठड़ी बढ़ती ही जा रही है। मैं तो इनका हितैषी होने के नाते इन्हें यही हितकारी सलाह दूंगा :–

निज गुरु का अपमान करो मत, क्यों भांग भ्रम की खा राखी।
बार बार क्यों गाहवै सै, या गार बहुत बै गाह् राखी।।

(3) ऋषि का पाठ :– "दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्ध करने में तत्पर होते हैं।"

वेदानन्दी पृष्ठ 3 और सिद्धान्ती के पृष्ठ 11 पर पाठ:- "दूसरे मत की निन्दा, हानि और बन्द करने में तत्पर होते हैं।"
हमारा निवेदन :– जुगनू को अपनी पूंछ की जरा सी चमक पर घमण्ड करके सूरज से नहीं टकराना चाहिये अन्यथा जलकर भस्म हो जायेगा। देखिये ऋषि का 'बन्ध' शब्द संस्कृतनिष्ठ हिन्दी का शब्द है। जो शब्द संस्कृत भाषा से ज्यों का त्यों हिन्दी भाषा में प्रयोग होता है उसको व्याकरण में 'तत्सम' शब्द कहते हैं जैसे संस्कृत भाषा के अग्नि, रात्रि, मनुष्य, बन्ध आदि शब्द हिन्दी भाषा में ज्यों के त्यों प्रयोग होते हैं और ये सब ठीक हैं। अब यदि कोई महामूर्ख अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिये इनके बदले में आग, रात, आदमी, बन्द लिखे तो उसे क्या पदवी दी जाए, इसका निर्णय तो स्वयं पाठक ही कर लेंगे। भगवान् इन घमण्डियों को बुद्धि प्रदान करे और इन्हें इस घृणित पाप से बचावे।

विचारने का विषय है – आज की दृष्टि से शेक्सपीयर की अंग्रेजी अशुद्ध है। इसी प्रकार बाल्मीकी और व्यास की संस्कृत अशुद्ध है। लल्लू लाल और यहाँ तक कि तुलसी आदि की भाषा भी असंगत है, पर साहित्य क्षेत्र में इन सब की मर्यादा सुरक्षित है, उन्हें कोई अशुद्ध कह उन साहित्यिकों को अपमानित नहीं करता। अपितु समादर के साथ कहा जाता है यह अंग्रेजी शेक्सपीरियन है। यह संस्कृत प्रयोग आर्ष है। यह कवि सम्प्रदाय है।

(4) भूमिका में ऋषि का पाठ = "चारवाक का जो मत है वह बौद्ध और जैन का मत है, वह भी बारहवें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है।"

वेदानन्दी के पृष्ठ 3, ताम्रपत्रानुसारी के 3 और सिद्धान्ती

के पृष्ठ 12 पर पाठ :– "चारवाक का जो मत है वह तथा बौद्ध और जैन का जो मत है, वह भी बारहवें समुल्लास में संक्षेप से लिखा गया है।"

हमारा वक्तव्य :– न जाने 'तथा' और 'जो' क्यों बढ़ा दिया गया। 'तथा' और 'जो' बढ़ाने से भाव ही पलट गया है। ऋषि तो लिख रहे हैं जो चारवाक की मान्यता है वही बौद्ध और जैन की है अर्थात् ये तीनों ही नास्तिक हैं। इसलिये एक का खण्डन भी तीनों का खण्डन समझा जाए, ताकि तीनों के खण्डन में पिसे हुए को पीसना न पड़े। इस बात को न समझ 'तथा' और 'जो' बढ़ाकर तीनों को स्वतंत्र कर दिया और यह शंका खड़ी कर दी कि तीनों के समुल्लास मुसलमान ईसाइयों की तरह अलग–अलग क्यों नहीं ?

इसीलिये हमारा मत है कि बिन्दु विसर्ग मात्रा का भी भेद नहीं करना चाहिये यह अनधिकार चेष्टा छोड़ने में ही लाभ है।

मान जा रे भले आदमी पछतायेगा।
बीता हुआ समय फिर हाथ नहीं आयेगा।।

(5) आर्ष सत्यार्थप्रकाश का पाठ :– "जो कोई इस ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध मनसा से देखेगा उसको कुछ भी अभिप्राय विदित न होगा।"

वेदानन्दी पृष्ठ 5, झज्जरी 18, अजमेरी 13, भगवती 8, ताम्रपत्रानुसारी 4 और सिद्धान्ती के पृष्ठ 13 पर उपरोक्त वाक्य के 'इस' को 'इसे' लिखकर अर्थ ही बदल दिया।

समीक्षा :– 'इस ग्रन्थकर्त्ता के तात्पर्य से विरुद्ध' का अर्थ हुआ 'इस ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) के कर्त्ता (रचने वाले) के तात्पर्य से विरुद्ध' और 'इसे (सत्यार्थप्रकाश को) ग्रन्थ (सत्यार्थप्रकाश) के कर्त्ता (रचने वाले) के तात्पर्य से विरुद्ध।' देखिये ऋषि दयानन्द

के 'इस' लगाने से अर्थ सुलझा हुआ बनता है जबकि भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं के 'इसे' लगाने से अर्थ उलझ पुलझ हो जाता है। इन अक्ल के दुश्मनों ने हमेशा ही बिना सिर पैर की बातें की हैं।

प्रश्न– आपने ऊपर 'भूमिका आदि में भ्रष्टीकरण' इसमें भूमिका के बाद 'आदि' क्यों लिखा है ?

उत्तर– 'भूमिका आदि' का अर्थ है 'भूमिका के अतिरिक्त और भी कुछ भ्रष्टीकरण' अर्थात् एक दो भ्रष्टीकरण ऐसे हैं जो इसी स्थान पर ही समा सकते हैं जैसे :

(1) विरजानन्द दैवकरणि द्वारा सम्पादित चारों सत्यार्थप्रकाशों में टाइटल पेज (मुख पृष्ठ) पर लिखा है 'अथ सत्यार्थप्रकाशः'। जब मैंने यह देखा तो मैं खिलखिलाकर हंस पड़ा और मुख से निकल पड़ा –

मैंने सुन सुन आवै हांसी।
पानी में मीन प्यासी।।

मैं बड़े आश्चर्य में पड़ गया कि वेद शास्त्रों का महान् विद्वान् गुरुकुल का स्नातक तीन विषयों से आचार्य इत्यादि और भी बहुत कुछ इतनी बड़ी भारी गलती बलन्डर कर सकता है? टाइटल पेज पर तो पुस्तक का नाम लिखा जाता है। आर्य सत्यार्थप्रकाश के टाइटल पेज पर पुस्तक का नाम 'सत्यार्थप्रकाश' लिखा हुआ है। फिर मैंने सोचा कि यह माडर्न जमाना है, विज्ञान का युग है। दैवकरणि ने कोई वैज्ञानिक आविष्कार किया होगा कि भविष्य में नाम ऐसे ही लिखा जाएगा कि 'अथ सत्यार्थप्रकाशः' फिर मैंने इस महाशय का नाम सम्पादक के स्थानों पर देखा हर जगह 'विरजानन्द दैवकरणि' लिखा हुआ था। कहीं पर भी भूलकर भी 'अथ विरजानन्द दैवकरणि' नहीं लिखा। मैं समझ गया कि टाइटल पेज पर 'अथ सत्यार्थप्रकाशः' इसने जानबूझकर

लिखा है ताकि महर्षि दयानन्द की बदनामी हो, लोग ऋषि की खिल्ली उड़ायें और मजाक करें कि महर्षि दयानन्द गधे से भी ज्यादा मूर्ख था। अरे भले आदमी ! 'अथ' का अर्थ है आरम्भ, अब, इसके बाद और इसका समुचित स्थान भूमिका के बाद प्रथम समुल्लास के आरम्भ से पूर्व 'ओ३म्' के नीचे है। ऋषि ने यहीं पर 'अथ सत्यार्थप्रकाशः' लिख कर प्रथम समुल्लास आरम्भ किया है।

ऋग्वेद और ब्रह्मा से लेकर जैमिनि के मीमांसा दर्शन तक तीन हजार ग्रन्थों में से किसी एक के टाइटल पेज पर भी ग्रन्थ के नाम से पहले 'अथ' नहीं लिखा हुआ। क्या सर्गारम्भ से दयानन्द तक हजारों ब्रह्मवेत्ता सभी ऋषियों ने टाइटल पेज पर पुस्तक के नाम से पहले 'अथ' न लिखकर गलती की है ? श्रेष्ठ सन्तों का उद्देश्य परोपकार करना ही होता है परन्तु दुष्टों का स्वभाव हमेशा पर अपकार करना ही हो जाता है। सुनिये और सिर धुनिये –

चौपाई –

सन्त असन्तन के अस करनी।
जिमि कुठार चन्दन आचरणी।।
काटै एक एक को भाई
दूजा दे मुख में सुगन्ध बसाई।।

(कुठार = कुल्हाड़ा)

इसी दुष्ट स्वभाव के कारण इन्होंने टाइटल पेज पर 'अथ सत्यार्थप्रकाशः' लिखा है।

एक आदमी जामुन के पेड़ पर चढ़कर जामुन खा रहा था। एक जामुन पर भूण्ड बैठा हुआ था। उस आदमी ने भूण्ड को जामुन समझकर उंगलियों से पकड़कर उसे खाने के लिये

मुख की तरफ हाथ बढ़ाया। भूण्ड ने डरकर चीख मारी चीं–चीं–चीं–। आदमी ने मुस्कराकर कहा, "चाहे चीं कर चाहे मीं कर, काली कालियों को छोड़ूं नहीं।" इस प्रकार भाई विरजानन्द दैवकरणि ! आपने बड़ी चालाकी से छिपा छिपाकर जो भ्रष्टीकरण किये हैं, मैं उनमें से खण्डन किये बिना एक को भी नहीं छोड़ूंगा। आपकी नाटकबाजी की कैसी सुन्दर रचना है। जरा मुलाहिजा फरमाइये। आपने सत्यार्थप्रकाश के टाइटल पेज पर लिखा 'अथ सत्यार्थप्रकाशः।' इसका अर्थ हुआ – अब प्रारम्भ है सत्यार्थप्रकाश। फिर सूचीपत्र और भूमिका छापकर भूमिका और प्रथम समुल्लास के बीच में स्वामी दयानन्द द्वारा जान बूझकर छोड़े हुए पाँच श्लोक भी दिये और इन श्लोकों के ऊपर लिख दिया, लिख दिया लिख दिया। अरे क्या लिख दिया ? 'अथ सत्यार्थप्रकाशः' लिख दिया। इसका भी वही अर्थ हुआ – अब प्रारम्भ सत्यार्थप्रकाश का (दूसरी बार)।

इसके बाद प्रथम समुल्लास के सिर पर भी लिख दिया 'अथ सत्यार्थप्रकाशः' इसका भी पहले जैसा ही अर्थ हुआ – अब प्रारम्भ है सत्यार्थप्रकाश (तीसरी बार)। मैंने समझा सत्यार्थप्रकाश की समाप्ति भी तीन बार की होगी और लिख रखा होगा – 'इति सत्यार्थप्रकाशः'। 'इति सत्यार्थप्रकाशः'।। इति सत्यार्थप्रकाशः'।।। मैंने सारा सत्यार्थप्रकाश छान मारा, परन्तु इसकी तीन बार समाप्ति कहीं भी तो नहीं मिली। मैंने समझा यह तीन बार समाप्ति का काम अगले जन्म के लिये छोड़ दिया होगा, क्योंकि अब तो दैवकरणि जी बूढ़ा हो गया है।

मैं क्या करूं राम ! मुझे बूढ़ा मिल गया।
बूढ़ा खांसै खों खों, लगता बड़ा कमाल है।।
बूढ़ा चालै डगमग, मेरी मोरनी सी चाल है

मैं क्या करूं राम मुझे, बूढ़ा मिल गया।
हाय हाय बूढ़ा मिल गया, बूढ़ा मिल गया।

(2) महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की मूलप्रति में विषय सूची के पश्चात् अठारह लाइनों के पांच श्लोक लिखवाये थे। बाद में ऋषि ने इन्हें अनावश्यक समझकर जानबूझकर छोड़ दिया था। इन श्लोकों के जानबूझकर छोड़ने का प्रमाण यह है कि (1) प्रथम संस्करण की मुद्रणप्रति (प्रेस कापी) में ये श्लोक नहीं दिये (2) प्रथम संस्करण की प्रूफ रीडिंग करने पर भी ये श्लोक नहीं दिये। अतः प्रथम संस्करण में नहीं छपे। (3) इसके सात साल बाद द्वितीय संस्करण की मूलप्रति में भी ये श्लोक नहीं लिखवाये। (4) इस मूलप्रति को ऋषि ने अपने हाथ से शोधा था तब भी ये श्लोक नहीं दिये। (5) द्वितीय संस्करण की मुद्रण प्रति में भी ये श्लोक नहीं लिखवाये। (6) इस मुद्रण प्रति को शोधते समय भी ये श्लोक नहीं लिखे। (7) इस मुद्रणप्रति से थोड़ा–थोड़ा भाग शोधकर छपाने के लिये भेजते समय भी ये श्लोक नहीं दिये। (8) इस थोड़े–थोड़े भाग की प्रूफ रीडिंग पं॰ ज्वालादत्त, पं॰ भीमसैन और मुन्शी समर्थदान द्वारा करने के बाद स्वामी दयानन्द प्रूफरीडिंग स्वयं करते थे। उस समय भी ये श्लोक नहीं दिये। क्या एक महायोगी एक ही विषय में आठ बार गलती कर सकता है ? कभी नहीं। अतः सिद्ध है कि ये श्लोक महर्षि ने अनावश्यक समझकर जानबूझकर छोड़ दिये थे।

इतना होने पर भी विरजानन्द दैवकरणि जी महाराज कहते हैं, "दयानन्द तुझे इतना पता नहीं जितना मुझे पता है। मेरी खोज सबसे निराली है, सबसे उत्तम है। तेरा ज्ञान अधूरा है। मेरा ज्ञान पूरा है। ये श्लोक आने ही चाहियें। तेरे बालपैन के सिक्के की स्याही खतम हो चुकी है। अब मेरा सिक्का डालकर ही आगे लिखा जा सकता है।" इन्हीं नीच भावनाओं

का शिकार होकर ही दैवकरणि जी ने ये पांचों श्लोक विषय सूची के बाद नहीं नहीं, भूमिका के बाद दे ही दिये।

उपरोक्त श्लोक देकर उनके नीचे निम्नलिखित टिप्पणी (फुटनोट) लिख दी जो इस प्रकार है :—

टिप्पणी =(1) ये श्लोक सत्यार्थप्रकाश प्रथम संस्करण की मूलप्रति में विषय सूची के पश्चात लिखे हुए हैं। महर्षि दयानन्द के ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों में भी इसी प्रकार श्लोक लिखने की शैली मिलती है। ये श्लोक प्रथम और द्वितीय संस्करण में प्रकाशित होने से रह गये थे, इसीलिये यहां प्रकाशित किये जा रहे हैं।

समीक्षा : – इस पोथा पन्थ महाराज ने पहली गुस्ताखी तो ये की कि स्वामी दयानन्द ने तो ये श्लोक दिये विषय सूची के बाद और यह श्रीमान् लिख रहा है भूमिका के बाद। ये महाराज सब आर्यों के गुरु महर्षि दयानन्द सरस्वती के सुधारक जो ठहरे। दयानन्द के गुरु का नाम विरजानन्द था। इनका भी नाम विरजानन्द है। दयानन्द के गुरु विरजानन्द ने दयानन्द की कमियां निकाली। दयानन्द के गुरु के नाम राशि होने से इनको भी दयानन्द की कमियां निकालने का अधिकार है। दयानन्द को उक्त श्लोकों के लिखने का समुचित स्थान नहीं मिला। इन्होंने कई वर्षों के अपार परिश्रम के बाद समुचित स्थान खोज निकाला है। इसीलिये उपरोक्त श्लोक भूमिका के बाद दे दिये हैं।

कोई इस महाशय से पूछे कि दैवकरणि! क्या आप ऋषि दयानन्द के लिखे हुए उपरोक्त टिप्पणी में कहे तीन ही ग्रन्थों की शैली को ही मानोगे ? जिन ग्रन्थों में इसी प्रकार के श्लोक नहीं लिखे हैं उनकी शैली नहीं मानोगे ? महर्षि दयानन्द ने अपने आधे से भी अधिक ग्रन्थों में इस प्रकार की शैली नहीं अपनाई है। क्या उन सब में भी इस प्रकार के श्लोक लिखने की कृपा करोगे ?

पाठक! शैली के आधार पर आज तक विचारों का, निष्कर्षों का परीक्षण पढ़ा था, पर शैली के आधार पर युग प्रवर्तक लेखक का सुधार तो विरजानन्द दैवकरणि की नई ही खोज है। शैली के आधार पर, छोड़े हुए श्लोकों का घुसेड़ना पाण्डित्य के जिन्दा रखने की महा औषधि है। लेखकों की शैलियां पृथक–पृथक होती हैं। इस शैली को ध्यान में रखकर ही महर्षि पतञ्जलि ने कहा, "सकृत् कृत्वा आचार्याः न निवर्तन्ते।" आचार्य एक बार ही सोच विचार कर लिखते हैं। यही उनकी शैली है। जैसे पहले लिखा है वैसे ही लिखते जायें ऐसा नियम उनके लिये बन्धक नहीं होता। जहां जैसा ठीक समझते हैं वैसा ही लिखते हैं। जो पहले लिखा वह भी शैली है, और जो पीछे लिखा वह भी शैली है। दोनों में से केवल एक को मानना एक का खण्डन करना शिष्य का गुरु की दूसरी दूसरे शिष्य से सेव्य टांग का पीटना है। जिससे गुरु की दोनों ही टांगें टूटीं।

इस शैली का आविष्कार तो पश्चिम के विद्वानों ने चारों वेदों के विभिन्न कालों में होने के लिये किया था। जिसके आधार पर अथर्ववेद को उन्होंने अत्यन्त अर्वाचीन काल का सिद्ध किया है। क्या उसी अभागी शैली से सत्यार्थप्रकाश में ऋषि द्वारा जानबूझकर छोड़े हुए श्लोकों का मिलाना भी प्रशंसनीय हो सकता है ? यह धारणायें इतनी बेहूदी हैं कि पाठक स्वयं इनकी निस्सारता को आंक लेंगे।

भूमिका आदि समाप्त होत है, सुनो लगाकर कान।
दयालु देव परमात्मा, करें सबका कल्याण।।



5. सावधानी हटी और दुर्घटना घटी

प्रश्न– आप जितने सत्यार्थप्रकाशों के हत्याकाण्ड का भाण्डा फो कर रहे हो क्या इनके अतिरिक्त भी किसी सत्यार्थप्रकाश भ्रष्टीकरण हैं या नहीं?

उत्तर– हैं, मैंने तीसियों सत्यार्थप्रकाश देखे हैं। किसी में कम और कि में ज्यादा, भ्रष्टीकरण सभी में हैं। किसी ने हित भावना से कि हैं और किसी ने अहित भावना से परिवर्तन किये हैं। जि जिसने हित भावना से किये हैं उनमें अनार्ष बुद्धि होने से ऋ की गहराई को न समझकर गलत परिवर्तन कर दिये हैं जिस वैदिक सिद्धान्तों की हत्या हो गई है। और जिस जिस अहित भावना से परिवर्तन किये हैं उन्होंने तो जानबूझकर वैदिक सिद्धान्तों की हत्या करके अपने पापों की गठड़ी भारी किया है और करते ही जा रहे हैं, परन्तु याद रहे कि

ज्यों ज्यों भीजै काम्बली, त्यों त्यों भारी होय।
पाप फल दुःख अग्नि से, बच न सकेगा कोय।।

प्रश्न– जो सभी सत्यार्थप्रकाशों में भ्रष्टीकरण कर दिये हैं और करते जा रहे हैं तो आप सभी का भाण्डाफोड़ क्यों नहीं कर रहे?

उत्तर– 'सभी सत्यार्थप्रकाशों में भ्रष्टीकरण कर दिये' से मेरा मतल है कि स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपे सत्यार्थप्रका को छोड़कर सभी में भ्रष्टीकरण कर दिये। अब विचारने बात है कि सैकड़ों प्रकाशकों ने सत्यार्थप्रकाश का प्रका किया है। इन सबके परिवर्तनों का खण्डन करना असम्भव क्योंकि भ्रष्टीकरणों की बाढ़ बढ़ती ही जा रही है। भ्रष्टीकरणकर्त्ता सब एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। को किसी से कम रहना नहीं चाहता। कहा भी है –

धोबी घाट्य न तेली घाट्य।
उसका कुतका, उसकी लाठ्य।।

प्रश्न– स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपा कौन–सा सत्यार्थप्रकाश है ? और शेष भ्रष्ट किये सत्यार्थप्रकाशों से बचने का क्या उपाय है ?

उत्तर– मैंने 'उदयाचल' के छठे पाठ में युक्ति प्रमाणपूर्वक अच्छी तरह सिद्ध कर दिया है कि 'महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनकाल में छपा सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण ही प्रामाणिक है' और 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट 455, खारी बावली दिल्ली–6' इसी प्रामाणिक सत्यार्थप्रकाश को छपवाती है। इस ट्रस्ट ने भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं की दूषित मनोवृत्ति को रोकने के लिये ऋषि के जीवनकाल में छपे, सत्यार्थप्रकाश, संस्कार विधि और ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका ग्रन्थों को फोटो–प्रिन्ट से छपवा दिया है। सम्पादकों को उन मूल ग्रन्थों के अनुसार ही सम्पादन करना चाहिये। छपने–छपाने की अशुद्धियां तो ठीक करनी ही चाहिएं।

शेष भ्रष्ट किये सत्यार्थप्रकाशों से बचने का सर्वोत्तम उपाय तो यह है कि केवल और केवलमात्र उपरोक्त 'आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट' द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश खरीदा जाय और यदि दूसरों द्वारा प्रकाशित खरीदना ही पड़े तो इसका उक्त ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश से हूबहू ज्यों का त्यों मिलान कर लिया जाए अन्यथा दुर्घटना हो सकती है। इसीलिये सत्यार्थप्रकाश खरीदने में सावधान रहना चाहिये, क्योंकि 'सावधानी हटी और दुर्घटना घटी।।'

प्रश्न– यदि किसी समय में उपरोक्त ट्रस्ट भी अन्य भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं की तरह सत्यार्थप्रकाश में परिवर्तन करने लग जाए तो क्या करना चाहिये ?

उत्तर– हस्तलिखित मूलप्रति में परिवर्तन किये जा सकते हैं छपी पुस्तक में परिवर्तन नहीं किये जा सकते। उपरोक्त ट्रस्ट के पास हस्तलिखित तो है नहीं अपितु फोटो प्रिन्ट से छपवाया हुआ सत्यार्थप्रकाश है। अतः परिवर्तन नहीं हो सकता।

प्रश्न– यदि किसी समय में विज्ञान की इतनी अधिक उन्नति हो जाए कि छपी पुस्तक में भी परिवर्तन हो सकें तो क्या करेंगे ?

उत्तर– ऐसा होने पर सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में वर्णित पाँच परीक्षाओं के द्वारा परीक्षण करने पर सच और झूठ का अलग–अलग ज्ञान हो जायेगा जिससे सत्यग्रन्थों का ग्रहण और मिथ्या ग्रन्थों का परित्याग आसानी से किया जा सके। जैसे – वेद विरोधियों ने मनुस्मृति इत्यादि ग्रन्थों में मिलावट हटावट तथा बदलावट आदि करके हजारों आर्ष ग्रन्थों को भ्रष्ट कर दिया, परन्तु परम पिता परमात्मा ने एक वेदों का दीवाना देव दयानन्द भेजा, जिसने उपरोक्त पाँच परीक्षा में से पहली परीक्षा के आधे भाग से ही हजारों ग्रन्थों के भ्र करने वालों के हजारों वर्षों के अपार परिश्रम को द सैकिण्ड में ही निष्फल करते हुए कहा, "जो ग्रन्थ वेदों विरूद्ध हैं वे सब अप्रामाणिक हैं।"

प्रश्न– यदि भ्रष्टीकरण करने वालों ने वेदों को भी भ्रष्ट कर दिया फिर प्रामाणिक एवं अप्रामाणिक ग्रन्थों की छांट कैसे होगी

उत्तर – वेद गायत्री आदि छन्द, षड्ज आदि उदात्त–अनुदात्त–स्व स्वर, मात्राओं और चरणों इत्यादि में बन्धे हुए हैं। अ जीवात्मा में किसी भी अवस्था में इतना ज्ञान नहीं हो स कि वेद मन्त्रों में परिवर्तन कर सके। यदि कोई अ महामूर्खता को दिखाने के लिये ही किसी मन्त्र में परि कर भी देगा तो उपरोक्त छन्द, स्वर, मात्रा, चरण आदि

फार्मूला प्रयोग करते ही पता लग जायेगा कि इस मन्त्र में यह घटा बढ़ी की गई है। मनुष्यों के बनाये ग्रन्थों में मनुष्य परिवर्तन कर सकता है, परन्तु परमात्मा द्वारा बनाये वेदों में मनुष्य परिवर्तन नहीं कर सकता, जैसे मनुष्य द्वारा जलाये दीपक को मनुष्य बुझा सकता है, परन्तु परमात्मा द्वारा जलाये दीपक रूपी सूरज को मनुष्य कभी भी नहीं बुझा सकता। अतएव वेदों में न तो कोई परिवर्तन कर सकता है और न वेदों जैसे मन्त्र ही कोई मनुष्य बना सकता है। प्रमाण के लिये देखिये सत्यार्थप्रकाश के सातवें समुल्लास में ऋषि कहते हैं, "गायत्री आदि छन्द, षड्जादि और उदात्त अनुदात्त आदि स्वर के ज्ञानपूर्वक गायत्र्यादि छन्दों के निर्माण करने में सर्वज्ञ (परमात्मा) के बिना किसी का सामर्थ्य नहीं है कि इस प्रकार का सर्वज्ञानयुक्त शास्त्र (वेद) बना सके।"



6. प्रथम समुल्लास में भ्रष्टीकरण

नोट : याद रहने के लिये सत्यार्थप्रकाश के नामों के संक्षेपकरण की दोहराई =

जैसे 'उदयाचल' के पाँचवें पाठ (सत्यार्थप्रकाश की हस्तलिखित मूलप्रति) में भिन्न–भिन्न सत्यार्थप्रकाशों के नामों के संक्षिप्त नाम रक्खे हैं उनकी यहां भी दोहराई की जाती है ताकि याद रहें।

विस्तार से बचने के लिये :–

(1) स्वामी दयानन्द के जीवनकाल में छपे, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित भ्रष्टीकरण रहित निष्खोट शुद्ध सत्यार्थप्रकाश के द्वितीय संस्करण को केवल 'आर्ष सत्यार्थप्रकाश' लिखा जा रहा है।

(2) ताम्रपत्रों के अनुसार विक्रम सम्वत् 2040 में छपे सत्यार्थप्रकाश को केवल 'ताम्रपत्रानुसारी' लिखा जा रहा है।

(3) हरयाणा साहित्य संस्थान गुरूकुल झज्जर, रोहतक द्वारा सन् 1994 ईसवी में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'झज्जरी' लिखा जा रहा है।

(4) परोपकारिणी सभा के वैदिक पुस्तकालय, दयानन्दाश्रम, केसरगंज, अजमेर द्वारा सन् 1998 ईसवी में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'अजमेरी' लिखा जा रहा है।

(5) भगवती लेजर प्रिन्ट्स, नई दिल्ली द्वारा सन् 2002 ईसवी में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'भगवती' लिखा जा रहा है।

(6) स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' की टिप्पणियों वाले सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा विक्रम सम्वत् 2055 में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'वेदानन्दी' लिखा जा रहा है।

(7) जगदेव सिंह 'सिद्धान्ती' शास्त्री तर्कवाचस्पति की टिप्पणियों

वाले देहाती पुस्तक भण्डार, चावड़ी बाजार, दिल्ली–6 द्वारा सन् 1964 ईसवी में प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश को केवल 'सिद्धान्ती' लिखा जा रहा है।

प्रथम समुल्लास में कम से कम भ्रष्टीकरणों की संख्या =

(1) ताम्रपत्रानुसारी में = 36
(2) झज्जरी में = 221
(3) अजमेरी में = 254
(4) भगवती में = 263
(5) वेदानन्दी में = 78
(6) सिद्धान्ती में = 78

अब भ्रष्टीकरणों का दिग्दर्शनमात्र देखिये –

(1). भगवती के पृष्ठ 10 पर यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 18 के अन्त में 'पुरूषञ्जगत' ये दो शब्द जोड़ कर यह बता दिया कि भ्रष्टीकरणकर्त्ता सर्वथा ही अज्ञानी है। श्रीमान् जी, इस मन्त्र का देवता (वर्ण्य विषय) 'अग्नि' है। अतः आप के बढ़ाये हुए शब्दों के अर्थों का अग्निदेवता से कतई मेल नहीं बैठता। दूसरे इस मन्त्र का 'प्रस्तारपङ्क्ति' छन्द है जो बढ़ाये हुए शब्दों से बनता ही नहीं। तीसरे यह मन्त्र 'पञ्चम स्वर' पूर्वक गाया जाता है। बढ़ाये हुए शब्दों को मन्त्र में रखने से यह स्वर ही नहीं रहा। चौथे कहते हैं कि चोर की डाढ़ी में तिनका। आप इन बढ़ाये हुए दोनों शब्दों पर उदात्त अनुदात्त आदि स्वर नहीं लगा सके जिससे आप रंगे हाथों पकड़े गये। पाँचवें जब कोई विद्वान् छन्द, स्वर और मात्राओं के हिसाब से आप द्वारा दिये मन्त्र को परखेगा तब ये बढ़ाये हुए शब्द अलग निकलकर आपकी महान् अज्ञानता का ढ़ोल पीटेंगे। छठे जब कोई योगी मनुष्य इस बढ़े हुए मन्त्र को समाधि में देखेगा तो आपका कालिख पुता हुआ चेहरा सब को दीख जायेगा और यह योगी आपकी ऐसे ही धज्जियां उड़ा देगा जैसे महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों के दूषित अर्थ करने वाले महीधर, माधव, उव्वट, रावण, सायण, विलसन,

ग्रिफिथ और मोक्षमूलर की धज्जियां उड़ा दी थीं। मे परामर्श है कि आप ऐसी घिनौनी हरकतों को छोड़ दोगे त फायदे में रहोगे।

(2) अजमेरी के पृष्ठ 19 पर सामवेद के 1588 मन्त्र में 'इन्द्रे' से ए की मात्रा को हटाकर 'इन्द्र' कर दिया। महाराज जी! आप यह परिवर्तन करते समय यह नहीं सोचा कि ऐसा करने लोग आपको पागल समझेंगे। सम्पादक जी! देखिये कि शब्द में बिन्दु, विसर्ग, मात्रा का जरा सा भेद करने से उसके अर्थों में जमीन आसमान का अन्तर हो जाता है। अ का अनर्थ हो जाता है। जैसे यहां पर देखिये – 'इन्द्रे' का अ है परमात्मा में, परमात्मा के अन्दर और 'ए' की मात्रा हटाने 'इन्द्र' शब्द का अर्थ बनता है 'परमात्मा' या 'परमात्मा क्योंकि 'इन्द्र' कर्त्ता कारक और प्रथमा विभक्ति है जबकि 'इन्द्रे' शब्द अधिकरण कारक और सप्तमी विभक्ति है। भाई साहब दैवकरणि जी! आप संस्कृत की प्रथम श्रेणी दुबारा दाखिल हो जाओ और क्रम से बढ़ते बढ़ते व्याकरण पूर्ण विद्वान हो जाओ ताकि आपको 'इन्द्रे' और 'इन्द्र' का फ मालूम हो जाए।

(3) झज्जरी के पृष्ठ 30, अजमेरी के 21 और भगवती के पृ 11–12 पर यजुर्वेद अध्याय 31 के 'ततोविराडजायत...... मन्त्र का पता ही गायब कर दिया और इस यूरिया घोटाले साथ चारा घुटाला भी कर दिया। अर्थात उक्त मन्त्र के 'तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः।.........।' यह तैत्ति उपनिषद् का वचन देकर नीचे लिख दिया – 'यह तैत्ति उपनिषद् का वचन है।' इससे लोग उपरोक्त 'ततो विराडजाय मन्त्र को भी तैत्तिरीय उपनिषद् का वचन समझकर जब उपनिषद् में यह मन्त्र ढूढ़ेंगे तो वहां यह न मिलने से

समझेंगे कि ऋषि दयानन्द झूठा था क्योंकि दिये हुए पते पर यह मन्त्र है ही नहीं।

स्वामी दयानन्द ने उपरोक्त मन्त्र यजुर्वेद अध्याय 31 मन्त्र 5, 12, 9 और 5 इन चार मन्त्रों के चार टुकड़े जोड़कर इक्कठा मन्त्र बनाकर पता लिख दिया यजु॰ अ॰ 31। प्रत्येक टुकड़े का अलग अलग पता इसलिये नहीं दिया कि ऐसा करने से मन्त्र का सिलसिला टूट जाता। अतः इक्कठा पता दे दिया क्योंकि ऋषि जानते थे कि आर्य विद्वान् होते हैं अपने आप ढूंढ़ लेंगे। अरे सम्पादक महाशय! जिस वेदानन्द 'तीर्थ' से मार्गदर्शन लेकर आपने चार सत्यार्थप्रकाशों को भ्रष्ट किया है उसी वेदानन्द 'तीर्थ' से इस मन्त्र के चारों टुकड़ों का पता लिखने में आपने मार्गदर्शन इसलिये नहीं लिया कि किसी का भला न हो जाये। देखो वेदानन्दी के पृष्ठ 11 पर उक्त मन्त्र के चारों टुकड़ों का पृथक पृथक पता लिखा हुआ है।

(4) महर्षि दयानन्द ने आर्ष सत्यार्थप्रकाश के प्रथम समुल्लास में परिभाषापूर्वक ईश्वर के सौ नाम बतायें हैं। इन सौ नामों को बताते हुए कम से कम इक्यावन नामों के साथ 'उस' शब्द का प्रयोग किया है जैसे 'जो स्वयं बोध स्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है, इसलिये उस परमेश्वर का नाम 'बुध' है।' इस वाक्य में 'उस' शब्द का प्रयोग एक प्रश्न के उत्तर के लिये है जैसे कोई प्रश्न करे कि किस परमात्मा का नाम 'बुध' है?

उत्तर– जो स्वयं बोधस्वरूप और सब जीवों के बोध का कारण है उस परमात्मा का नाम 'बुध' है। अर्थात् जिस परिभाषा से 'बुध' शब्द उत्पन्न हुआ है उस परिभाषा और बुध को जोड़ने वाला 'उस' शब्द है। यदि वाक्य में से 'उस' शब्द निकाल दिया जाये तो बुध और इसकी परिभाषा का सम्बन्ध ऐसे ही टूट जायेगा जैसे माला का धागा टूटने से मणियों और धागे

का सम्बन्ध टूट जाता है। बड़े शोक की बात है कि श्री श्री कई हजार आठ कलियुगी नैष्ठिक ब्रह्मचारी विरजानन्द दैवकरणि ने अपने द्वारा सम्पादित झज्जरी, अजमेरी और भगवती तीनों सत्यार्थप्रकाशों में प्रथम समुल्लास के कम से कम 45 (पन्तालीस) स्थानों से 'उस' शब्द को निकाल कर माला और मणियों का सम्बन्ध तोड़ ही दिया।

यह बात भी नहीं है कि उक्त सम्पादक जी महाराज को 'उस' शब्द से कोई नफरत या परहेज है क्योंकि छः स्थानों पर यह शब्द दे भी दिया है। ये तो बस अपने गुरू दयानन्द को ठोसा दिखाकर चिड़ा रहे हैं कि देख दयानन्द हमारी कलाकारी देख! हमने 'उस' शब्द दे भी दिया और निकाल भी दिया। तूने एक घोड़े पर सवारी की पर हम दो घोड़ों पर सवारी करते हैं। मुझ भाण्डाफोड़ लेखक की महाशय जी के लिये यही नेक सलाह है कि दो घोड़ों पर सवारी मत करो वरना टांगें फट जायेंगी।

(5) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'ये सौ नाम परमेश्वर के लिखे हैं।'

अजमेरी के पृष्ठ 35 और भगवती के पृष्ठ 22 पर भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं का पाठ = 'ये शत नाम परमेश्वर क़े लिखे हैं।'

समीक्षा – ऋषि क़ा पाठ ही ठीक है, व्यवहारिक है और बदला हुआ पाठ (शत) सौ का समान अर्थ वाला होने पर भी अव्यवहारिक है, व्यवहार में लाने योग्य नहीं जैसे कोई नहीं कहता है कि मुझे शत रुपये दीजिये, मेरी श्रेणी में शत विद्यार्थी हैं बल्कि सभी यही कहते हैं कि मुझे सौ रुपये दीजिये, मेरी श्रेणी में सौ विद्यार्थी हैं आदि। अतः परिवर्तन करने वालों ने सौ के स्थान पर शत बदलकर यों ही अपने मुंह काले किये।

(6) ऋषि का पाठ = इस से ये मेरे लिखे नाम समुद्र के सामने बिन्दुवत् हैं।

अजमेरी के पृष्ठ 36 और भगवती के 22 पृष्ठ पर जालिमों का बदला हुआ पाठ = यह मेरा लिखना समुद्र के सामने विन्दुवत् है।

समीक्षा – ऋषि का पाठ पूरा है। जालिमों का पाठ अधूरा है। इनके पाठ में प्रश्न होता है कि क्या लिखना विन्दुवत् है परन्तु ऋषि के पाठ में हो सकने वाले प्रश्न का उत्तर पहले ही दे दिया है कि ये सौ नाम परमात्मा के असंख्य नामों के सामने समुद्र के विन्दुवत् हैं। इसलिये इनका घपड़चौथ मचाना बेकार है।

(7) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में स्वामी जी का पाठ = 'अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा पूरा हो सकता है जो वेद आदि शास्त्रों को पढ़ते हैं।'

झज्जरी के पृष्ठ 59, अजमेरी के पृष्ठ 36 तथा भगवती के पृष्ठ 22 पर कागजी पहलवानों का पाठ = 'अन्य पदार्थों का ज्ञान भी उन्हीं को पूरा होता है जो वेद आदि शास्त्रों को पढ़ते हैं।'

समीक्षा – ऋषि ने अपने पाठ में 'हो सकता है' शब्दों द्वारा ज्ञान होने की सम्भावना दिखाई है। परन्तु यह गारन्टी नहीं ली है कि सबको ही होता है अर्थात् कम बुद्धि वालों को भी निश्चित रूप से पूरा पूरा ज्ञान हो जायेगा। ऋषि का तात्पर्य इतना ही है कि जिसको भी पूरा पूरा ज्ञान हो सकता है उसको केवल वेद आदि शास्त्रों को पढ़ने से ही हो सकता है अन्य अनार्ष ग्रन्थों के पढ़ने से पूरा पूरा ज्ञान नहीं हो सकता।

दूसरी तरफ अक्ल के दुश्मनों ने 'हो सकता है' की जगह 'होता है' करके सम्भावित को निश्चित कर दिया। ये कहते हैं कि चाहे दिमाग भैंस से भी मोटा हो परन्तु वेद आदि

शास्त्रों को पढ़नें से ज्ञान हो ही जायेगा। ऐसा होने प तो किसी की भैंस भी पूरे पूरे ज्ञान को प्राप्त कर लेगी

पाठक वृन्द! देखा आपने कागजी पहलवानों के अण्ड बण्ड परिवर्तन। इन्होंने अपने नाम को सार्थक करने के लि ही ये दुष्कृत्य किये हैं। इनके नाम का अर्थ भी तो ध्यान पूर्वक पढ़िये। हम विस्तार भय से केवल एक नाम का ही अर्थ लिखते हैं। विरजानन्द को ही ले लीजिये। यह गौणिक नाम है अर्थात् गुणों के अनुसार नाम है। इसके दो अर्थ हैं जैसे -

विरज़ = विमल, निर्मल। अतः परमात्मा।
इससे विरजानन्द का अर्थ हुआ जो जीवात्मा निर्मल परमात्म की उपासना से आनन्द ले रहे हैं जैसे दयानन्द के गुरू स्वामी विरजानन्द दण्डी।

दूसरा अर्थ = जो कुत्सित आत्माएं ऋषियों के ग्रन्थों को भ्रष्ट कर रहे हैं उनके लिये यह दूसरा अर्थ है – गुनिये और सि धुनिये –

वि = विशेष। रज = स्त्रियों के मासिक धर्म का विकार। जो आदमी स्त्रियों के मासिक धर्म के विशेष विकार (गन्दगी) को पीने से आनन्द ले रहे हैं उनको विरजानन्द कहते हैं।

आज की मुलाकात बस इतनी।।



7. द्वितीय समुल्लास में भ्रष्टीकरण

द्वितीय समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में = 53

(2) ताम्रपत्रानुसारी में = 28

(3) झज्जरी में = 107

(4) अजमेरी में = 124

(5) भगवती में = 127

(6) सिद्धान्ती में = 53

अब कुछ भ्रष्टीकरण नमूने के लिये आगे दिये जाते हैं जिससे पता लग जायेगा कि ये महर्षि दयानन्द द्वारा लिखवाई हस्त लिखित मूलप्रति में कभी नहीं हो सकते।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् मादक द्रव्य, मद्य, दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक पदार्थों को छोड़ के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें।'

झज्जरी पृष्ठ 62, अजमेरी पृष्ठ 38 तथा भगवती के पृष्ठ 24 पर बदला हुआ पाठ = 'माता और पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व, मध्य और पश्चात् दुर्गन्ध, रूक्ष, बुद्धिनाशक नशादि पदार्थों को छोड़के जो शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम और सुशीलता से सभ्यता को प्राप्त करे, वैसे घृत, दुग्ध, मिष्ट, अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें।

समीक्षा – उपरोक्त दोनों पाठों को ध्यान से पढ़ने पर पता

लगता है कि भ्रष्ट कर्त्ता भ्रष्ट लोगों ने ऋषि के पाठ से 'मादक द्रव्य, मद्य' छोड़ दिया और 'नशादि' अनुचित स्थान पर जोड़ दिया। ऋषि के पाठ के अनुसार मादक द्रव्य, मद्य दुर्गन्ध और रुक्ष चारों ही पदार्थ बुद्धिनाशक हैं जबकि भ्रष्टबुद्धि परिवर्तन करने वालों के बदले हुए पाठ के अनुसार केवल 'नशा' ही बुद्धिनाशक है। क्या दुर्गन्ध आदि पदार्थ बुद्धिनाशक नहीं हैं ? दुर्गन्ध पदार्थ अवश्य ही बुद्धिनाशक हैं तो फिर ये भ्रष्ट लोग क्यों भौंकते हैं ?

उत्तर – कुत्ता वृति वाले भौंका ही करते हैं।

(2) झज्जरी के पृष्ठ 67–68 पर, अजमेरी के पृष्ठ 40–41 और भगवती के पृष्ठ 26 पर ऋषि के पाठ (धूर्त, पाखण्डी महामूर्ख, अनाचारी, स्वार्थी, भंगी चमार, शूद्र, म्लेच्छादि नीच के भी पगों में पड़के कहते हैं) में से 'नीच' शब्द निकालकर इनको 'अन्धे और लुच्चे' लिख दिया। यह तो ऐसा ही हो गया जैसे कोई किसी के भद्दे चेहरे से भद्दापन हटाने के लिये उसके चेहरे पर तेजाब छिड़क दे या किसी के शरीर पर लगी धूल (मिट्टी) धोने के लिये उसे धक्का मार कर दिल्ली के गन्दे नाले में डाल दे। वाह जी वाह ! खूब रियायत की सम्पादक जी ने। जो मनुष्य घटिया कर्म, ओछे कर्म, नीच कर्म करता है उसको नीच कहते हैं। इस प्रकार के किसी भी उपजाति के लोग हों, ऋषि ने ऐसे पाखण्ड फैलाने वालों को ही नीच लिखा है। ऋषि दयानन्द के समय में जो लोग डोरा, धागा आदि मन्त्र यन्त्र बान्धते, भूत प्रेत भैरव शीतला देवी निकालने के लिये मन्त्र जप पुरश्चरण से झाड़ा आदि लगाकर जनता को हानि पहुंचा रहे थे, उनसे दूर रहने के लिये ही ऋषि का यह उपदेश है।

(3) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'अभिमानः श्रीयं हर्नि

यह विदुर नीति का वचन है।

पृष्ठ 26 पर ताम्रपत्रानुसारी में = '——— यह विदुर नीति का वचन है।'

75 पृष्ठ पर झज्जरी में = '——— यह किसी कवि का वचन है।'

अजमेरी में पृष्ठ 44 पर = '——— यह [किसी कवि] का वचन है'

भगवती पृष्ठ 28 पर = '——— यह मनुस्मृति का वचन है।'

समीक्षा : प्रश्न – उपरोक्त अन्त की चारों सत्यार्थप्रकाशों की हस्तलिखित मूलप्रति एक, चारों का सम्पादक एक, चारों को मूलप्रति के एक एक अक्षर से अक्षरशः मिलान करके ऋषि दयानन्द के शब्दों को हूबहू ज्यों का त्यों रखने का दावा करने वाला भी एक है तो फिर इन चारों का पाठ भिन्न–भिन्न क्यों है ?

उत्तर :– इन चारों का भिन्न–भिन्न पाठ इसलिये है कि चारों वर्ण अपने अपने कर्तव्य कर्म का पालन नहीं करते जैसे :–

(1) ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् लोग अपने लेखों और प्रवचनों द्वारा ऐसे धूर्त, अनाचारी और महामूर्ख प्रकाशकों तथा सम्पादकों का खण्डन नहीं करते। अतः ऐसे ब्राह्मण विद्वान् महापापी हैं।

(2) क्षत्रिय लोग इनको मृत्युदण्ड नहीं देते। अतः ये क्षत्रिय भी महापापी हैं।

(3) वैश्य अर्थात् धनवान लोग इनके खण्डन में लिखी पुस्तकों के छपवाने तथा बाँटने के लिये धन नहीं देते। अतः ये वैश्य धनवान भी महापापी हैं।

(4) शूद्र लोग इनका विरोध करने के लिये शारीरिक सहायता नहीं देते। इसलिये ये शूद्र भी महापापी हैं।

अब आइये जरा स्वामी वेदानन्द की वेदानन्दी पृष्ठ 36 और

जगदेव सिंह सिद्धान्ती की सिद्धान्ती पृष्ठ 27 को भी देख लें कि इन्होंने उपरोक्त वचन को किसका वचन लिखा है। देखो पाठकवृन्द! मैंने अच्छी तरह ढूंढ लिया है, यह वचन न तो वेदानन्दी में मिला और न ही सिद्धान्ती में मिला। इस पर तुर्रा इस बात का कि यहां पर इस वचन सहित दोनों में से प्रत्येक की चार चार लाइनें गायब हैं। ये महापुरुष मरते समय अपने शरीरों को तो यहीं छोड़ गये, परन्तु दोनों सत्यार्थप्रकाशों से चार–चार लाइनें चुराकर अपने साथ नरक लोक में ले गये। ये लाइनें वापस लाने के लिये मैं नरक लोक को चला। जब मैं इस लोक के मेन गेट पर पहुंचा तो सन्तरी ने आवाज दी, "रुक जाओ, नरक लोक शुरू हो गया है।" मैंने कहा कि मैं यहीं के लिये आया हूँ। सन्तरी ने कहा, "अपना कर्म पत्र दिखाओ।" मेरा कर्मपत्र पढ़कर सन्तरी ने कहा, "आपके कर्म पत्र में कोई पाप किया हुआ नहीं लिखा। इसलिये आप नरकलोक में प्रवेश नहीं कर सकते। पहले चोरी आदि कोई पाप करके आओ, फिर नरक में प्रवेश पाओ।" मैंने पृथ्वी लोक में वापस आकर डायरैक्ट्री में नरक लोक का एस॰टी॰डी॰ कोड नम्बर और टेलीफोन नम्बर देखकर नरक लोक को टेलीफोन किया। पाँच छः बार टरन् टरन् के बाद सुनाई दिया 'हैलो !' मैंने कहा कि मैं पृथ्वी लोक से पं॰ रतिराम आर्य आप के यहां स्वामी वेदानन्द जी से बात करना चाहता हूँ। उत्तर मिला कि वे बात नहीं कर सकते क्योंकि सत्यार्थप्रकाश से वाणी चुराने के कारण मनुस्मृति की व्यवस्थानुसार उन्हें गूंगेपन का दण्ड दिया गया है। इस दण्ड को भोगने के बाद जब वे वापस पृथ्वी लोक में आयेंगे तभी बात हो सकेगी। ओ॰के॰। पाठक ! इस दृष्टान्त से समझ गये होंगे कि इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का क्या हाल होगा।

(4) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि के पाठ में पांच बार 'ताड़न' और चार बार 'लाड़न' लिखा है।

अजमेरी के पृष्ठ 44 पर, भगवती के पृष्ठ 28 पर उपरोक्त सभी नौ शब्दों के 'ड़' का विन्दु हटा कर 'ड' कर दिया।

समीक्षा :– यह लाड़न ताड़न व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण देकर समझाया है। सम्पादक जी ने ताम्रपत्रानुसारी तथा झज्जरी में 'ड़' ही दिया है, परन्तु एक दिन दिव्यस्वप्न आया कि देख संस्कृत में तो 'ड' आया है तुम भी 'ड़' का बिन्दु हटा दो तो इन्होंने झट से पैन उठाया और चट से विन्दु उड़ा दिया।

तीन बार संशोधन करने पर भी ऋषि को नौ स्थानों में से एक पर भी 'ड़' का बिन्दु दिखाई नहीं दिया। यह खोज तो विरजानन्द दैवकरणि की सूक्ष्म दृष्टि ने ही की है। धन्य हो! महर्षि दयानन्द का सुधार कर दिया। गुरु गुड़ और चेला शक्कर जो ठहरे।

(5) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन और धनादि उत्तम उत्तम पदार्थों से प्रीति पूर्वक सेवा करे।'

झज्जरी पृष्ठ 76, अजमेरी पृष्ठ 45 और भगवती के पृष्ठ 29 पर बुद्धिहीन तथा कृतघ्नों का पाठ = 'अपने माता, पिता और आचार्य की तन, मन से सेवा करे।'

समीक्षा :– ऋषि के पाठ में 'धन' से तात्पर्य रुपये पैसे और 'आदि' से अन्य सब कुछ जो सुखी जीवन के लिये जरूरी है अर्थात् जैसे खानपान, वस्त्र, औषधि आदि उत्तम पदार्थों से माता–पिता आदि की सेवा करना है और यह सेवा प्रीतिपूर्वक प्रेम से करे, वैरभाव से न करे। इन कृतघ्नों ने केवल तन मन से ही सेवा लिखी। जैसे सन्तान माता–पिता को रोटी, कपड़ा, मकान आदि न देकर केवल अपने शरीर और मन से सेवा करें तो क्या माता–पिता जीवित रह सकेंगे ? कभी नहीं। जब

सन्तान उत्पन्न होती है तब से लेकर स्वयं पर निर्भर होने तक माता पिता ने उसकी तन, मन और धनादि उत्तम उत्त पदार्थों से प्रीति पूर्वक सेवा (पालन पोषण) की और आचार्य ने उसे प्रेमपूर्वक विद्या पढ़ाकर विद्वान् किया है। यह सन्तान अपने माता–पिता की जन्म सन्तान और आचार्य की विद्या सन्तान कहलाती है। सन्तान पर इनका ऋण चढ़ गया है। इस ऋण को पितृ ऋण कहते हैं। यदि सन्तान पितृ ऋण को नहीं उतारती है तो मनुस्मृति अध्याय 3 श्लोक 104 के अनुसार अन्न आदि दाताओं के पशु बनकर यह पितृ ऋण उतारना पड़ेगा। अतएव माता पिता आदि की केवल तन, मन से ही नहीं, बल्कि धनादि उत्तम उत्तम पदार्थों से प्रीतिपूर्वक सेवा करें ताकि पितृ ऋण उतरने से अगला जन्म इस जन्म से ज्यादा सुख के स्थान में हो। इन भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं की बात नहीं माननी हैं, क्योंकि ये खुद तो पशु बनेंगे ही, साथ में औरों को भी पशु बना देंगे।

(6) अजमेरी के पृष्ठ 46 और भगवती के पृष्ठ 29 पर माता शत्रु पिता वैरी श्लोक के तीसरे चरण के शब्दों को आगे–पीछे करके इनका क्रम सौन्दर्य बिगाड़ दिया तथा बालः (एकवचन) के लिये शोभन्ते (बहुवचन की) क्रिया दे दी। ताम्रपत्रानुसार और झज्जरी में यह अदल बदल की कलाकारी नहीं की। क्या अब संस्कृत व्याकरण के नियम बदल गये जिससे एकवचन के कर्त्ता के साथ बहुवचन की क्रिया लगने लग गई ?

पाठकवृन्द ! इस महाशय विरजानन्द दैवकरणि ने अपने द्वारा सम्पादित चारों सत्यार्थप्रकाशों में हजारों स्थानों पर इस गन्दा खेल खेला है जैसे (1) स्त्रीलिंग का पुल्लिंग तथा पुल्लिंग का स्त्रीलिंग बना दिया। (2) कर्त्ता स्त्रीलिंग में और इसकी क्रिया पुल्लिंग में तथा कर्त्ता पुल्लिंग में और इसकी क्रिया स्त्रीलिंग में कर दी। (3) एकवचन का बहुवचन और

बहुवचन का एकवचन कर दिया। (4) कर्त्ता एकवचन में और इसकी क्रिया बहुवचन में, इसी प्रकार कर्त्ता बहुवचन में और इसकी क्रिया एकवचन की लिख दी।

(7) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है। इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे।'

ताम्रपत्रानुसारी के पृष्ठ 22 पर, झज्जरी के पृष्ठ 64 पर, अजमेरी के पृष्ठ 39 पर और भगवती के पृष्ठ 25 पर अक्ल के पूरों का पाठ = स्त्री प्रसव समय निर्बल हो जाती है, उस समय उसके दूध में भी बल कम होता है, इसलिये प्रसूता स्त्री दूध न पिलावे।

समीक्षा :– उपरोक्त पाठ की अगली लाइन में ही ऋषि ने लिखा – 'ऐसे करने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती हो जाती है।' अब मैं इन अक्ल के पूरों से यह पूछना चाहता हूँ कि यदि उस समय उसके दूध में कम बल होता तो वह दूध न पिलाने से दूसरे महीने में पुनरपि युवती क्यों हो जाती है? जवाब नदारद और यदि दुर्जनतोषन्याय से मान भी लिया जाये कि उस समय स्त्री के दूध में बल कम होता है, तो श्रीमान् जी, नवजात शिशु को तो कम बल वाला ही दूध चाहिये। इसीलिये तो यहां से आठ लाइन पहले ऋषि ने लिखा – 'गाय वा बकरी के दूध में दूध के समान जल मिलाके बालक को पिलावें।' तुम्हारी इस निर्बुद्धिता को देखकर कहना पड़ता है –

सब रोगों की दवाई शास्त्रों में बताई है।
लठ के सिवाय मूर्ख की कोई नहीं दवाई है।।

(8) ऋषि का पाठ = जब गुरु का प्राणान्त हो तब मृतक–शरीर जिसका नाम प्रेत है उसका दाह करने हारा शिष्य प्रेतहार अर्थात् मृतक को उठाने वालों के साथ दशवें दिन शुद्ध होता है।

सिद्धान्ती के पृष्ठ 22 की पाद टिप्पणी = यहां मनुस्मृति

के श्लोक द्वारा "भूत" और "प्रेत" की व्याख्या की गई है। श्लोक पूरा देकर उसका अर्थ कर दिया गया है। दशवें दिन शुद्धि होती है, इसका प्रकरण नहीं है। संस्कार विधि के मृतक = अन्त्येष्टि कर्म में लिखा है कि मृतक के शरीर को भस्म करके उस घर की यज्ञ = हवन द्वारा शुद्धि की जाए। यदि रात्रि हो जाए तो अगले दिन भी हवन कर दिया जाए। तीसरे दिन श्मशान भूमि में जाकर अस्थियों को चिता से निकालकर वहीं एक स्थान पर रख दिया जाए। बस यहीं तक सब शुद्धि हो जाती है।

सिद्धान्ती की उक्त टिप्पणी का खण्डन = संस्कार विधि में यह तो लिखा है कि 'बस इस के (चिता से अस्थि उठाके, उस श्मशान भूमि में कहीं पृथक रखने के) आगे मृतक के लिये कुछ भी कर्म कर्तव्य नहीं है, परन्तु श्रीमान् जी संस्कार विधि के अन्त्येष्टि कर्म में यह कहीं नहीं लिखा कि 'बस यहीं तक सब शुद्धि हो जाती है।' उपरोक्त यज्ञ हवन से केवल घर की शुद्धि लिखी है। शिष्य आदि मृतक को उठाने वालों ने मृतक को अपने हाथों से स्नान कराया, अपने हाथों से उसे नवीन वस्त्र पहनाये तथा अपने हाथों से उसे उठाकर अरथी पर रक्खा, श्मशान भूमि तक अरथी को अपने कन्धों पर ले गये, दाह से पूर्व अपने हाथों से मृतक के शरीर पर घृत आदि लगाया है। इस सारी प्रक्रिया में मृतक के शरीर के स्पर्श और समीपता के कारण शिष्य आदि के शरीर बाहर और भीतर से अन्य उपस्थित लोगों की अपेक्षा अधिक अशुद्ध हो गये हैं। अतः घर की शुद्धि के लिये किये दो हवनों से शिष्य आदि शुद्ध नहीं होते। ये तो प्रातः सायं दैनिक यज्ञ व प्राणायाम आदि से दशवें दिन ही शुद्ध होते हैं। प्रकरण न होने के बहाने से आपने दो ऋषियों (मनु और दयानन्द) का खण्डन किया है।

ऋषियों के लेखों की गहराई को न समझने वाले आप जैसे अनार्ष बुद्धिवालों के लिये मेरा सुझाव है कि ऋषि ग्रन्थों के साथ छेड़छाड़ न करें अन्यथा चिरकाल तक घोर नरक अर्थात् अत्यन्त दुःख भोगना पड़ेगा।



8. तृतीय समुल्लास के भ्रष्टीकरण

तृतीय समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में = 193
(2) ताम्रपत्रानुसारी में = 128
(3) झज्जरी में = 350
(4) अजमेरी में = 422
(5) भगवती में = 428
(6) सिद्धान्ती में = 193

अब तेल देखो तेल की धार देखो :–

(1) ऋषि का पाठ = इस मन्त्र में जो प्रथम 'ओ३म्' है, उसका अर्थ प्रथम समुल्लास में कर दिया है।

झज्जरी के पृष्ठ 82, अजमेरी के 48 और भगवती के पृष्ठ 31 पर उपरोक्त 'ओ३म्' के स्थान पर 'ओंकार' लिख दिया। अरे भाई दैवकरणि व्याकरणाचार्य जी आपको ओ३म् और ओंकार में फर्क दिखाई नहीं दिया क्या? जमीन और जमीनदार, लोह और लोहकार, स्वर्ण और स्वर्णकार, कला और कलाकार, ओ३म् और ओंकार में परस्पर भेद सभी को मालूम है। 'ओ३म्' परमात्मा का निज नाम है और ओंकार का अर्थ है ओम नाम वाला परमात्मा। अतः आपकी यह गुस्ताखी माफ करने लायक नहीं।

(2) ऋषि का पाठ = जो नानाविध जगत में व्यापक हो के सब का धारण करता है।

उपरोक्त तीनों के उन्हीं पृष्ठों पर उक्त वाक्य में 'करता है' की जगह 'कर रहा है' कर दिया। श्रीमान् जीओ! ऋषि के 'करता है' का अर्थ है भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों काल में

सबका धारण करता है और आपके 'कर रहा है' का अर्थ है कि केवल वर्तमान में धारण कर रहा है। यह तो ऐसा ही हुआ जैसे एक सार्वभौमिक चक्रवर्ती राजा को केवल मात्र एक छोटी सी झोंपड़ी का राजा लिख दें। अरे अन्यायी! शर्म नहीं आई!!

(3) ऋषि का पाठ = अन्नादि से विश्व का पोषण करने हारा।

ताम्रपत्रानुसारी में पृष्ठ 30 पर, झज्जरी 84, अजमेरी 49 और भगवती के 31 पृष्ठ पर 'अन्नादि से' को हटाकर 'अनादि' कर दिया। जैसे कसाई को बकरी के गले में छुरी घोंपने में मजा आता है, वैसे ही इनको अनुचित अदलबदल करने में मजा आता है अन्यथा 'अन्नादि से' और 'अनादि' में अन्धों को भी फर्क दिखाई देता है।

(4) ऋषि पाठ = प्राणायामादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः – यह योगशास्त्र का सूत्र है।।

वेदानन्दी पृष्ठ 41 और सिद्धान्ती के पृष्ठ 32 पर उपरोक्त ऋषि पाठ से 'प्राणायामात्' हटाकर इसकी जगह 'योगाङ्गानुष्ठनात्' लगा दिया।

समीक्षा – उपरोक्त दोनों प्रसिद्ध महाविद्वानों के चरण स्पर्श पूर्वक मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ। परन्तु महाशय जीओ! जरा तो मनन करके देखा होता कि प्रकरण अनुसार ऋषि का पाठ ही ठीक है। यह तो ठीक है कि योगशास्त्र में 'योगाङ्गानुष्ठनात्' ही है परन्तु योगांगों में तो योग के आठ अंग आते हैं जिनमें प्राणायाम भी एक अंग है। यहां पर योग के आठों अंगों का प्रसंग नहीं चल रहा है अपितु योग के आठों अंगों में से केवल एक अंग 'प्राणायाम' की शिक्षा दी जा रही है। ऋषि लोग मूल का उतना ही भाग लेते हैं जितना प्रसंगानुसार अभीष्ट होता है। ऋषियों को प्रकरणानुसार मूल

में थोड़ा बहुत परिवर्तन करने का अधिकार है जैसे -

(i) ईशोपनिषद् में यजुर्वेद अध्याय 40 के कई मन्त्रों में परिवर्तन किया है और एक मन्त्र ज्यादा भी दे दिया है। इसीलिये ईशोपनिषद् में 18 मन्त्र हैं जबकि यजुर्वेद अध्याय 40 में 17 ही मन्त्र हैं।

(ii) बृहदारण्यक 3–7–22 में 'आत्मनि' को 'विज्ञाने' कर दिया है।

(iii) महाभाष्य नवाह्निक में आये श्लोक का अर्थ = 'प्रसंगानुसार उनमें अवश्य ही परिवर्तन कर लेना चाहिए।' ऐसे मूल में परिवर्तन करने का ऋषियों को अधिकार है। ब्रह्मा से लेकर जैमीनि मुनि और दयानन्द तक उक्त अधिकार का प्रयोग करने में सभी ऋषि मुनियों की यही परम्परा रही है। महर्षि दयानन्द ने इसी प्राचीन शास्त्रीय परम्परा के अनुसार अपने ग्रन्थों में ऊहित पाठ दिये हैं। इसीलिये उपरोक्त में 'प्राणायामात्' ही ठीक है। ऋषि के ऋषित्व को न समझकर पागल लोग यूं ही बेकार बर्ड़ाया करते हैं।

(5) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'आचमन' उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्यदेश में ओष्ठ लगा के करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उससे अधिक न न्यून।

झज्जरी के पृष्ठ 87, अजमेरी के 51 और भगवती के पृष्ठ 32 पर उपरोक्त पाठ के 'उसके मूल' के स्थान पर 'पञ्जा के मूल' लिख दिया।

समीक्षा – जिक्र तो हथेली का चल रहा था परन्तु बीच में ''पञ्जा' कहां से टपक पड़ा। हाथ की पांचों उंगलियों को 'पञ्जा' कहते हैं और इस पञ्जे का मूल हथेली का भाग ही बनता है। यदि हथेली के मध्य भाग में ओष्ठ लगाके आचमन करें तो असुविधा होती है और ऐसा करें

से ऋषि तात्पर्य का विरोध भी होता है। यदि हथेली के मूल को पञ्जे का मूल मानें तो यह भी गलत होगा क्योंकि हथेली के मूल और पञ्जे के बीच में हथेली आ गई। पञ्जे का मूल तो पञ्जे से सटा हुआ होना चाहिये। इसलिये ऋषि का तात्पर्य हथेली के मूल में ओष्ठ लगाना है। आपका 'पञ्जा' लड़ाना निष्फल ही रहा।

(6) ऋषि का पाठ = (क) 'उसके अनुसार अपने चालचलन को करे।' (ख) अपना चालचलन सुधारना चाहिए।

भगवती के 33 और 40 तथा अजमेरी के 62 पृष्ठ पर दोनों पाठों में 'अपनी चालचलन' अर्थात् पुल्लिंग को स्त्रीलिंग बना दिया।

समीक्षा – श्री श्री 108 व्याकरणाचार्य दैवकरणि जी महाराज! आपको व्याकरण के नियम मालूम होने चाहियें कि लिंग और वचन का प्रयोग अन्तिम नाम के अनुसार आता है जैसे चार लड़की और एक लड़का जा रहा है। सभी ऐसे कहते हैं कि उसका चालचलन (चरित्र) अच्छा है, कोई नहीं कहता कि उसकी चालचलन अच्छी है। अतः ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(7) ऋषि पाठ = ओ३म् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा आदि चार मन्त्र लिखकर ऋषि ने लिखा –

इत्यादि अग्निहोत्र के प्रत्येक मन्त्र को पढ़कर एक एक आहुति देवे। झज्जरी के 89, अजमेरी के 52 और भगवती के 33 पृष्ठ पर उपरोक्त ऋषि पाठ से 'इत्यादि' शब्द हटा दिया।

हमारा कथन – 'इत्यादि' शब्द का अर्थ = इस प्रकार के और भी। ऋषि के पाठ में 'इत्यादि' शब्द बता रहा है कि अग्निहोत्र के इतने ही मन्त्र नहीं और भी हैं। कुछ मन्त्र 'इत्यादि' शब्द से पहले और कुछ बाद में हैं। प्रमाण के लिये देखिये पञ्चमहायज्ञ

विधि में अग्निहोत्र प्रकरण और संस्कारविधि के गृहाश्रम प्रकरण में 'अथ अग्निहोत्रम्।।'

इन भ्रष्ट कर्त्ताओं ने 'इत्यादि' शब्द हटाकर हवन के चार ही मन्त्र रख दिये जो सर्वथा ही गलत है।

(8) ऋषि पाठ = 'मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर ———— उतना सुगन्ध वा उससे अधिक वायु और जल में फैलाना चाहिये।'

अजमेरी 53 और भगवती के पृष्ठ 34 पर पाठ = '—— वायु वा जल में फैलाना चाहिये।'

समीक्षा – ऋषि का पाठ कह रहा है कि वायु और जल दोनें को बिगाड़ा है, इसलिये वायु और जल दोनों में सुगन्ध फैलाकर दोनों को शुद्ध करना चाहिये। परन्तु भ्रष्ट बुद्धि वाले का पाठ कह रहा है कि बिगाड़ा तो दोनों को है परन्तु शुद्ध किसी एक को ही कर दो। पाठक! जल वा वायु में से यदि हवा गन्दी रह गई तो भी बीमारियां पैदा करेगी और यदि दोनों में से पानी गन्दा रह गया तो भी बीमारियां पैदा करेगा अतएव आप ऋषि की बात मानकर दोनों को ही शुद्ध करते रहना।

(9) ऋषि पाठ = वही चालीसवाँ वर्ष उत्तम समय विवाह का है

अजमेरी 56 भगवती पृष्ठ 36 = वही चालीसवें वर्ष उत्तम समय विवाह का है।

समीक्षा – इसका निर्णय पाठक स्वयं कर लेंगे कि ऋषि का 'चालीसवाँ' ठीक है या इन अक्ल के दुश्मनों का 'चालीसवें'।

(10) ऋषि का पाठ = इतने साधनों के बिना ब्राह्मण शरीर नहीं बन सकता।

अज़मेरी पृष्ठ 58 तथा भगवती 37 पृष्ठ पर उक्त वाक्य में 'के' का 'से' करके खद्दर की अक्ल का परिचय दे दिया।

(11) ऋषि पाठ = जो ब्राह्मण ही केवल विद्या का अभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें, तो विद्या, धर्म, राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती।

झज्जरी के पृष्ठ 108, अजमेरी के 63, भगवती के 40 पृष्ठ पर उक्त वाक्य में 'धनादि' से 'आदि' हटाकर वृद्धि को केवल चार पदार्थों में ही कैद कर दिया। क्या चार से अधिक वृद्धियां नहीं होतीं ? होती हैं जैसे स्तुति प्रार्थना उपासना अर्थात् योगाभ्यास में वृद्धि तथा अन्य अनेक वृद्धियां। अतः 'धन' के साथ 'आदि' शब्द लगा रहना चाहिये।

(12) न्याय दर्शन के 1—1—6 के सूत्र में से 'प्रसिद्ध' शब्द हटाकर इसके स्थान पर 'प्रत्यक्ष' शब्द लगाकर सूत्र में पाठ भेद कर दिया।

(13) ऋषि पाठ = 'वह वहां हाथी का अभाव देखकर, जहां हाथी था, वहां से ले आया।'

झज्जरी के 115, अजमेरी के 67 और भगवती के 43 पृष्ठ पर उपरोक्त वाक्य से 'वह' हटाकर इसकी जगह 'उसने' रख कर अर्थ प्रदूषण कर दिया।

(14) ऋषि पाठ = "इन पांच प्रकार की परीक्षाओं से मनुष्य सत्यासत्य का निश्चय कर सकता है।" परन्तु भ्रष्टों ने 'इन' का 'इस' व 'परीक्षाओं' का 'परीक्षा' कर दिया। पाठकवृन्द! आओ जरा इन परीक्षाओं की परीक्षा करें। कल्पना करो एक ही साड़ी हरे, पीले, नीले, लाल और सफेद पांचरंगों से बनी है तो कह सकते हैं कि 'इस' पांच प्रकार की साड़ी को मैं खरीदूंगी।

परन्तु यदि पांच साड़ियां अलग अलग हों। एक हरे रं की, दूसरी पीले रंग की, तीसरी नीले रंग की, चौथं लाल रंग की और पांचवी सफेद रंग की हो तो कहना हं पड़ेगा कि 'इन' पांच प्रकार की साड़ियों को मैं खरीदूंगी इस परीक्षा का परिणाम यह निकला कि ऋषि के बहुवच की पांच परीक्षाओं को एक वचन की परीक्षा में बदल वाले महामूर्ख हैं क्योंकि परीक्षा एक नहीं है अपितु अल अलग पांच परीक्षायें हैं जैसे

(1) वेदेश्वर द्वारा परीक्षा (2) सृष्टिरचना क्रमानुकूल परीक्षा (3) आत्मानुकूल परीक्षा (4) आप्ताचारानुकूल परीक्षा (5) आठ प्रमा द्वारा परीक्षा। प्रमाण के लिये देखो सत्यार्थप्रकाश तीस समुल्लास।

उपरोक्त पांचों परीक्षायें अलग अलग प्रकार की हैं इसीलिये महर्षि दयानन्द का लेख ही ठीक है और इ सिरफरों का परिवर्तन बिल्कुल गलत है।

(15) ऋषि का पाठ = 'रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी।। वै० 2-1- रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाली पृथिवी है। उसमें रूप, रस औ स्पर्श अग्नि, जल और वायु के योग से है।

झज्जरी 117, अजमेरी 68 और भगवती के पृष्ठ 43 का पाठ 'जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श है वह 'पृथिवी' कहाती है

चीथड़े फाड़ वक्तव्य – उपरोक्त सूत्र में 1.'जिसमें 2. और वह कहाती है' इन तीन के लिये कोई संस्कृत का शब्द न दूसरी गुस्ताखी यह की कि 'ऋषि का खोजपूर्ण भाग कि किस के योग से हैं' वह भी छोड़ दिया। इन मूर्खों ने तो ही आसमान सिर पर उठा रखा है। इनके पल्ले तत्वज्ञान दर्शन ज्ञान का एक कण भी, कीड़ी समान भी नहीं।

(16) ऋषि पाठ = 'जैसी यह गाय है, वैसा ही गवय अर्थात् नीलगाय होता है।'

झज्जरी 113, अजमेरी 68 और भगवती के पृष्ठ 42 पर पाठ = 'जैसी यह गाय है, वैसा ही गवय अर्थात् रोजा = नीलगाय होता है।'

समीक्षा – ऋषि के पाठ में 'रोजा' मिलाकर अपनी खिल्ली उड़वा ली। 'रोजा' तो मुसलमान रखते हैं अर्थात् एक महीने तक रात को तो चाहे मरजी दश बार खाना खा लें परन्तु दिन में एक बार भी नहीं खाना और यदि नीलगाय के लिये गंवारू शब्द लिखना था तो 'रोह्ज' लिखना था ताकि अनपढ़ और गंवार भी समझ जाते। अरे भाई! कब तक अपना मजाक उड़वाते रहोगे।

(17) झज्जरी पृष्ठ 124, अजमेरी 72 और भगवती के 46 पृष्ठ पर वैशेषिक दर्शन के तीन सूत्रों को आगे पीछे करके इनका क्रम सौन्दर्य बिगाड़ दिया अर्थात् पहले सूत्र को दूसरे नम्बर पर, दूसरे को तीसरे नम्बर पर और तीसरे सूत्र को पहले नम्बर पर रखके अपनी दूषित मनोवृत्ति दिखा ही दी।

(18) ऋषि का पाठ = 'तदनन्तर व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ।'

झज्जरी 129, अजमेरी 75 और भगवती के 48 पृष्ठ का पाठ = 'तदनन्तर व्याकरण अर्थात् प्रथम पाठ।'

समीक्षा :– इन श्रीमानों से पूछो कि कौन–सी व्याकरण का प्रथम पाठ ? व्याकरण तो हजारों हैं। ऋषि ने स्पष्ट लिखा है 'व्याकरण अर्थात् अष्टाध्यायी के सूत्रों का पाठ।' इन भ्रष्टों का गोलमाल दुस्साहस ही है।

(19) ऋषि का पाठ = 'जैसे हुई वृष्टि होने वाली वृष्टि का विरोधी

लिंग है।'

अजमेरी 74 पृष्ठ, भगवती 48 पृष्ठ पर पाठ = 'जैसे हुई भई वृष्टि होने वाली वृष्टि का विरोधी लिंग है।'

समीक्षा – वाह!वाह!!वाह जी वाह!!! ऋषि के पाठ में 'भई' शब्द मिलाकर क्या ही सुन्दर कविता बनाई है जैसे खूबसूरत ऊँटों की शादी में मीठे स्वर से गधे गीत गा रहे हों।

(20) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'स्मृतियों में मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक और अन्य सब स्मृति परित्याग के योग्य हैं।

ताम्रपत्रानुसारी में पृष्ठ 53, झज्जरी में 139, अजमेरी में 8. और भगवती में 52 पृष्ठ पर विरजानन्द दैवकरणि का बदला हुआ पाठ = 'स्मृतियों में एक मनु इसमें भी प्रक्षिप्त श्लोक को छोड़ अन्य सब स्मृति परित्याग के योग्य हैं।'

समीक्षा – पहली बात तो यह कि 'मनु' शब्द के बाद बिन्दु न लगाने से 'मनु' का अर्थ हुआ महर्षि मनु। क्या महर्षि मनु ने भी किसी ने प्रक्षिप्त श्लोक घुसेड़ दिये? दूसरी मार्के की बात यह है कि बदले हुए पाठ को ध्यान से पढ़ने से पता लगता है कि मनुस्मृति के प्रक्षिप्त श्लोक परित्याग के योग्य नहीं है बल्कि प्रक्षिप्त श्लोकों के अतिरिक्त शेष मनुस्मृति परित्याग के योग्य है। इसीलिये तो ऐसे पाठ बदलने वाले लोग यजुर्वेद अध्याय 40 मन्त्र 3 के अनुसार मरने के पीछे और जीते हुए भी अत्यन्त दुःख और अज्ञान रूप अन्धकार से युक्त भोगों को प्राप्त होते हैं। फिर पछताये क्या होत। जब चिड़ियां चुग गईं खेत।।

(21) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'संध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करें। दो ही रात दिन की सन्धिवेला हैं, अन्य नहीं तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पू

अग्निहोत्र करने का भी समय है।

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में से तथा आचार्य भगवद्दत्त, आचार्य विश्वश्रवा तथा अन्य अनेकों अर्थात् प्रायः सभी ने ऋषि के उपरोक्त पाठ में से 'भी' को उड़ा दिया है।

समीक्षा – ऋषि के पाठ का साफ साफ परिणाम है कि अग्निहोत्र का समय दोनों सन्धिवेला हैं और किसी कारण से यदि दिन रात की सन्धि में हवन न कर सके तो सन्धिवेला से अतिरिक्त सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अर्थात् दिन में भी होम करने का समय है।

और ऋषि से अन्य हजारों 'भी' शब्द हटाने वालों का मतलब यह है कि हवन करने का समय केवल दिन ही है, रात या सन्धिकाल हवन का समय नहीं है। आदरणीय पाठकगण! ऋषि का पाठ ही ठीक है। इसमें प्रमाण :–

(1) स्वयं ऋषि ने उपरोक्त में कहा है कि "अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल (सन्धिवेला) में करे।"

(2) मनुस्मृति 2 – 15 में = उदित अर्थात् दिन में सूर्य निकलने पर या अनुदित अर्थात् संध्या समय में या समय का अतिक्रमण हो जाने पर रात को भी सर्वथा यज्ञ को करना ही चाहिये, यही वेद का भाव है।

नोट :– वर्षाकाल में कीट पतंगों के उत्पन्न होने से रात्रि के हवन की अग्नि में कीट पतंग आदि गिरकर जल मरते हैं। इसीलिये वर्षाकाल में रात को होम नहीं करना चाहिये अन्यथा हिंसक यज्ञ हो जायेगा। विवाह संस्कार की उत्तर विधि रात्रि में ही हवन द्वारा होती है। इसीलिये वर्षाकाल में विवाह नहीं होते।

(3) मनुस्मृति 4 – 25 में = सदा दिन रात के आदि अन्त में अग्निहोत्र करे।

(4) विवाह का उत्तर विधि करे। सूर्य अस्त हुए पीछे आकाश में नक्षत्र दीखें उस समय, एक घण्टे मात्र रात्रि जाने पर वधू वर यज्ञ कुण्ड के पश्चिम भाग में पूर्वाभिमुख आसन पर बैठें। ——— वर वधू को ध्रुव, अरुन्धती का तारा दिखलावे। (संस्कार विधि विवाह प्रकरण)

नोट :– यदि विवाह की उत्तर विधि रात को नहीं होती तो ध्रुव और अरुन्धती तारों का दर्शन कैसे हो सकता ?

इस विषय में ब्रह्मा से लेके जैमीनि मुनि और ऋषि दयानन्द तक सब ऋषि मुनियों का एक ही मत है। अतः उपरोक्त 'भी' का लगा रहना ही ठीक है। कहते हैं –

किसी के एक आंसू पर हजारों शस्त्र उठते हैं।
किसी का उम्र भर रोना योंही बेकार जाता है।।
इसी तरह भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं का परिश्रम बेकार जायेगा
सिवाय लानत मलामत के कुछ भी हाथ न आयेगा।।



(9) चतुर्थ समुल्लास के भ्रष्टीकरण

चतुर्थ समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में= 316 (2) ताम्रपत्रानुसारी में= 171
(3) झज्जरी में = 589 (4) अजमेरी में = 700
(5) भगवती में = 702 (6) सिद्धान्ती में = 316

भ्रष्टीकरणकर्त्ता प्रकाशकों तथा सम्पादकों ने अपने द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाशों के सम्पादकीय आदि में लिखा है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखवाई व संशोधित हस्तलिखित मूलप्रति से एक-एक अक्षर का मिलान करके महर्षि दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखा है। आओ जरा परख तो करलें कि इनके कथन में कुछ सच्चाई है या नहीं।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'निकट और दूर विवाह करने में गुण ये हैं।'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'निकट में दोष और दूर विवाह करने में गुण ये हैं।'

समीक्षा – महान् आश्चर्य है कि पांच महारथियों में से किसी एक ने भी ऋषि की गहराई को नहीं समझा। जैसे तमोगुण, रजोगुण, सतोगुण में 'गुण' शब्द का अर्थ 'विशेषता' है वैसे ही यहाँ भी समझ लेना चाहिये था। तमोगुण और रजोगुण में तो 'गुण' का मतलब 'दोष' ही होता है और सतोगुण में 'गुण' का अर्थ 'गुण' ही होता है। अतः उपरोक्त ऋषि पाठ में ऋषि ने 'श्लेष' अलंकार का प्रयोग करते हुए 'गुण' का अर्थ गुण और दोष दोनों में लिया है। महामूर्खता दिखलाने से पहले थोड़ा मनन कर लेते तो लाभ में रहते।।

(2) ऋषि पाठ = बवासीर, क्षयी, दमा युक्त कुलों की कन्या वा वर

के साथ विवाह होना न चाहिये।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती वाले शब्दार्थ विशेषज्ञ महाब्राह्मणों विद्वानों का पाठ = 'बवासीर, क्षयी = दम———।'

समीक्षा – अरे शब्दों का अर्थ करने वाले स्पेसियलिस्ट महात्माओ ! कभी डिक्शनरि खोल के भी देख लिया करो। 'क्षयी' का अर्थ टी॰बी॰, क्षयरोग, राजयक्ष्मा होता है तथा 'दमा' श्वासरोग को कहते हैं। तुमने क्षयी = दम अर्थात् क्षयी का अर्थ दम (श्वास रोग) करके महर्षि दयानन्द का भी सुधार कर दिया। धन्य हो शब्दार्थ विशेषज्ञों को।

(3) ऋषि पाठ = 'तुलसिया, गेंदा, गुलाब, चंपा, चमेली आदि वृक्ष नाम वाली कन्या के साथ विवाह न करना चाहिये।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती वाले महाशयों ने ऋषि पाठ से पांचों नाम हटाकर पाठ रख दिया = 'पीपल, बड़ आदि वृक्ष नाम वाली———।'

समीक्षा – सारे संसार में किसी कन्या का नाम पीपल, बड़ नहीं मिलेगा। हाँ, इन भ्रष्टों के घर में अवश्य होगा अन्यथा ये ऐसा क्यों लिखते ?

(4) ऋषि पाठ = (प्रश्न) ये श्लोक पराशरी और शीघ्र बोध में लिखे हैं। अर्थ यह है कि कन्या की आठवें वर्ष गौरी, नवमें वर्ष रोहिणी, दशवें वर्ष कन्या और उसके आगे रजस्वला संज्ञा हो जाती है। दशवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को माता पिता और उसका बड़ा भाई ये तीनों देख के नरक में गिरते हैं।

वेदानन्दी, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में बदलावट = 'कन्या की आठवें वर्ष विवाह में गौरी संज्ञा हो जाती है।'

समीक्षा – अरे आंखों वालो ! आंखें खोलकर गौर से पढ़ो। विवाह से दो वर्ष पहले 'गौरी' होना लिखा है। क्या विवाह में ही 'गौरी' नाम होता है और बिना विवाह के काली नाम रहेगा ? जब श्लोक में और इसके अनुवाद में भी दोनों जगह विवाह से पूर्व ही 'गौरी' होना लिखा है तो तुमने 'विवाह में' ये दो शब्द घुसेड़ने की कुचेष्टा ही की है।

(5) ऋषि का पाठ = 'जो हमारे श्लोक असम्भव हैं, तो तुम्हारे भी असम्भव हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य से दूसरा 'असम्भव' शब्द हटाकर उसकी जगह 'अशुद्ध' लिखकर यह दिखा दिया कि इन चाम ओढ़े हुए नकली सिंहों को 'असम्भव' और 'अशुद्ध' का फर्क भेद मालूम नहीं। दूसरे जब प्रकरण 'असम्भव' का चल रहा है तो प्रकरण विरुद्ध 'अशुद्ध' लिखना अनाड़ीपन ही है। मैं तो इनको यही प्रेरणा करूंगा –

रूक जा रे मेरे भाई रूक जा।
अनाड़ी घुसपैठ से रूक जा।।

(6) ऋषि पाठ = 'कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति की खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। जब प्रतिमास रजोदर्शन होता है तो तीन वर्षों में 36 बार रजस्वला हुए पश्चात् विवाह करना योग्य है, इससे पूर्व नहीं।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त सन्दर्भ में दोनों जगह 'हुए' शब्द से पूर्व 'होते' शब्द रखकर सन्दर्भ का मेकअप अर्थात् रूप सौन्दर्य और अर्थ सौन्दर्य बिगाड़ कर अनर्थ कर दिया अन्यायियों ने।।

(7) ऋषि पाठ = 'जो मुखादि अंगों से ब्राह्मणादि उत्पन्न होते तो उपादान कारण के सदृश ब्राह्मणादि की आकृति अवश्य होती।

जैसे मुख का आकार गोल मोल है वैसे ही उनके शरीर का भी गोल मोल मुखाकृति के समान होना चाहिये।

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त में दोनों जगह 'गोलमोल' का 'गोलमाल' कर दिया। अर्थात् 'मोल' से 'ओ' की मात्रा हटा दी तथा 'आ' की लगा दी।

समीक्षा :– 'गोलमोल' का अर्थ है गोलगोल। ऋषि का तात्पर्य है कि यदि ब्राह्मण मुखरूपी उपादान कारण से उत्पन्न होते तो इनके शरीर की आकृति अपने उपादान कारण मुख के समान गोलमोल (गोलगोल) होती।

'गोलमाल' का अर्थ = गड़बड़ी, गड़बड़झाला, भ्रम। इसी कारण उपरोक्त ऋषि पाठ के साथ 'गोलमाल' का मेल नहीं बैठता। अतः यह परिवर्तन गलत है, असंगत है, बेहूदा है।

निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्यायी और महाभाष्य के आचार्य ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता सत्यार्थप्रकाश में गोलमाल तो नहीं कर सके, बल्कि इन्होंने अपने आप को ही गोलमाल अर्थात् होच पोच कर लिया।

(8) ऋषि पाठ = 'ये आपस्तम्ब के सूत्र हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'यह आपस्तम्ब का सूत्र है।'

समीक्षा :– इस पते के ऊपर दो सूत्र क्रमांक 1 और 2 के साथ दिये हुए अन्धों को भी दीखते हैं। विरजानन्द दैवकरणि शायद अन्धों से भी नीचे हैं। इसीलिये बहुवचन के वाक्य को एकवचन का बना दिया।

(9) ऋषि पाठ = अधर्माचरण से उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे वाले वर्ण को प्राप्त होता है।

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त के 'वर्ण' को 'वर्णों' बहुवचन कर दिया।

समीक्षा :– जब उपरोक्त वाक्य में 'मनुष्य' एक है तो बहुत वर्णों को नहीं बल्कि एक ही वर्ण को प्राप्त हो सकता है।

भ्रष्टीकरणकर्त्ताओ मान जाओ पछताओगे।
बीता हुआ समय फिर नहीं पाओगे।।

(10) ऋषि पाठ = 'धर्म में दृढ़ निश्चय रहना।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उक्त वाक्य से 'निश्चय' हटाकर उसकी जगह 'निश्चित' कर दिया।

समीक्षा :– 'ब्राह्मण के पढ़ना पढ़ाना ———— अवश्य होने चाहियें' इस सारे पैरे को पूर्णरूप से ध्यानपूर्वक पढ़ने से पता लगा कि ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(11) ऋषि पाठ = 'ये पन्द्रह कर्म और गुण ब्राह्मणवर्णस्थ मनुष्यों में अवश्य होने चाहियें।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'वर्णस्थ' से 'स्थ' हटाकर अर्थ करने में कठिनता पैदा कर दी।

(12) ऋषि पाठ = 'भ॰गी॰' अर्थात् भगवत् गीता।

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त से 'भ॰' हटाकर केवल 'गीता' लिखकर यह बता दिया कि 'गीता' केवल एक ही है जबकि 'गीता' हजारों हैं। प्रश्न खड़ा कर दिया – कौनसी गीता ?

उत्तर – जीरो।

(13) ऋषि पाठ = 'विवाह के लक्षण।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में = 'विवाह का लक्षण'

समीक्षा :– उपरोक्त ऋषि पाठ के नीचे विवाह आठ प्रकार

के तथा प्रत्येक विवाह के कई लक्षण लिखे हुए हैं इसीलिये ऋषि का बहुवचन वाला पाठ ही ठीक है दैवकरणि का एकवचन वाला यों ही बकवास है।

(14) ऋषि पाठ = 'ऐसा न होने से सन्तान उत्तम और पुनः दूसरा सन्तान भी वैसा ही होता है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = ऐसे होने से सन्तान उत्तम और दूसरा सन्तान भी श्रेष्ठ नहीं होता।

समीक्षा :– विपरीत पाठ करके यथार्थ भाव समझने के लिए अति कठिन बनाकर कल्पना के घोड़े दौड़ाते रहने के लिए अवसर प्रदान कर दिया। सरल एवं सुबोध होने से ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(15) ऋषि पाठ = 'पाक इस प्रकार बनावे जो औषध रूप होकर शरीर वा आत्मा में रोग को न आने देवे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'शरीर' से पहले 'घर' लिखकर यह बता दिया कि शरीर की तरह घर अर्थात् मकान को भी बुखार, पेट दर्द, हैजा, टी॰बी॰ आदि रोग होते हैं। विधर्मी लोग ऐसी ऐसी असम्भव बातों को ही सत्यार्थप्रकाश में मनुष्यों को दिखा दिखाकर महर्षि दयानन्द की हंसी उड़ाते हैं।

(16) ऋषि पाठ = 1– 'जो सन्ध्या–सन्ध्या काल में होम होता है वह हुतद्रव्य प्रातःकाल तक वायु शुद्धि द्वारा सुखकारी होता है 2– जो अग्नि में प्रातः प्रातः काल में होम किया जाता है वह हुतद्रव्य सांयकाल पर्यन्त वायु के शुद्धि द्वारा बल, बुद्धि और आरोग्यकारक होता है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में (1) उपरोक्त 1 और 2 में लिखे पाठ का क्रम बदल कर एक के स्थान में दो का

और दो के स्थान में एक का पाठ कर दिया। इससे उक्त 1–2 दो के पाठ के मन्त्रों का अर्थ क्रमशः नहीं रहा। (2) ऋषि के 2 के पाठ में "पर्यन्त" के बाद की पूरी लाईन छोड़ दी। (3) अथर्ववेद के जिन मन्त्रों का यह अनुवाद है उनमें 1 में कुछ अंश बढ़ाकर और 2 से कुछ घटाकर दोनों मन्त्रों में पाठ भेद कर दिया। खुदा इन की जड़ खोदे।

(17) वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पितृ तर्पण के मन्त्रों में तीन मन्त्र नये दे दिये।

(18) ऋषि पाठ = 'थाली अथवा भूमि में पत्ता रखके पूर्व दिशादि क्रमानुसार यथाक्रम इन मन्त्रों से भाग रक्खे। इन भागों को जो कोई अतिथि हो तो उसको जिमा देवे अथवा अग्नि में छोड़ देवे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त पाठ से 'पत्ता' निकाल कर यह बता दिया कि अतिथियों को हलवा, खीर आदि भूमि पर रखके खिलावे। अरे दुष्टो! भूमि पर रखकर तो कुत्तों आदि को खिलाते हैं। क्या तुम अतिथियों को कुत्ते समझते हो ? दूसरे मत वाले पौराणिक, जैनी, मुसलमान और ईसाई आदि ऐसी ऐसी बातों ही को सत्यार्थप्रकाश में लोगों को दिखाकर महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की जड़ें उखाड़ रहे हैं। यदि आर्यनेता इसी तरह चुप साधे बैठे रहे तो कुछ दिनों में आर्यसमाज खतम हो जायेगा।

(19) ऋषि का पाठ = (दुहिता) 'पुत्री।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = (दुहिता) 'कन्या।'

समीक्षा :– अरे व्याकरणाचार्यों! अब तो डिकशनरी निघण्टु, निरुक्त, महाभाष्य और अष्टाध्यायी की मान लो कि 'दुहिता' का अर्थ 'पुत्री' व कन्या तो है परन्तु यहां ऋषि ने प्रकरणानुसार ही 'पुत्री' लिखा है।

(20) ऋषि का पाठ = 'भोगने वाले दोष भागी नहीं होते, किन्तु अधर्म का कर्त्ता ही दोष का भागी होता है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में अन्तिम 'दोष' को हटाकर इसके स्थान पर 'दुःख' लिखकर ये भ्रष्ट बुद्धि कह रहे हैं कि निसन्देह प्रकरण तो 'दोष' का चल रहा है परन्तु हम तो प्रकरण विरूद्ध 'दुःख' लिखेंगे।

(21) ऋषि का पाठ = 'परलोक अर्थात् पर जन्म।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'परलोक अर्थात् परमसुख।'

समीक्षा :– निरूक्त अध्याय 9 खण्ड 28 में जन्म, स्थान और नाम इन तीनों को लोक अर्थात् धाम कहते हैं अर्थात् लोक (धाम) का अर्थ है जन्म, स्थान और नाम। यही प्रमाण ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका के वेद विषय में भी दिया है। अतः महर्षि दयानन्द और यास्काचार्य दो ऋषियों के प्रमाण से भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का पाठ सर्वथा गलत है और ऋषि का पाठ बिल्कुल ठीक है।

(22) ऋषि पाठ = 'जो ब्राह्मणवर्णस्थ हों तो पुरूष लड़कों को पढ़ावे तथा सुशिक्षिता स्त्री लड़कियों को पढ़ावे।'

अजमेरी में उपरोक्त पाठ के 'स्त्री' शब्द को उड़ा दिया।

समीक्षा :– उपरोक्त ऋषिपाठ से 'स्त्री' को निकालकर पुरूष ही लड़कियों को पढ़ाने वाला रख दिया। महर्षि दयानन्द ने तीसरे समुल्लास में लिखा है, "लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोश एक दूसरे से दूर होनी चाहिये। जो वहां अध्यापिका और अध्यापक पुरूष वा भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरूषों की पाठशाला में पुरूष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पांच वर्ष का लड़का और पुरूषों की पाठशाला में पांच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे।"

एक ही विषय में ऋषियों का विरोध नहीं होता। यदि यहां चौथे समुल्लास में 'पुरूष लड़कियों को पढ़ावे' लिख दें तो तीसरे समुल्लास के उपरोक्त लेख का विरोध हो जावे। इसीलिये चौथे समुल्लास का उपरोक्त ऋषि पाठ ही ठीक है क्योंकि यह तीसरे समुल्लास के उक्त लेख से अविरूद्ध है और चौथे समुल्लास में ऋषि कहते हैं, "ईश्वर के सृष्टिक्रमानुकूल स्त्री पुरूष का स्वाभाविक व्यवहार रुक ही नहीं सकता सिवाय वैराग्यवान् पूर्ण विद्वान् योगियों के।" इसीलिये ऋषि ने तीसरे समुल्लास में लिखा, "जब तक वे ब्रह्मचारी वा ब्रह्मचारिणी रहैं तब तक आठ प्रकार के मैथुनों से अलग रहैं और अध्यापक लोग उनको इन बातों (आठ मैथुनों) से बचावें, जिससे उत्तम विद्या, शिक्षा, शील, स्वभाव, शरीर और आत्मा के बलयुक्त होके आनन्द को नित्य बढ़ा सकें।"

उपरोक्त कारणों से ही अजमेरी का पाठ 'पुरूष लड़कियों को पढ़ावे' बिल्कुल ही गलत है।

(23) अजमेरी और भगवती में बदला हुआ पाठ = 'बिना पूछे वा विना योग्य समय के, विना जाने दूसरे के अर्थ में सम्मति न दे।'

समीक्षा :— उपरोक्त वाक्य में 'जाने' से पहले 'विना' बढ़ाकर ऋषि पाठ को भद्दा और अनर्थक सा बना दिया है।

(24) वेदानन्दी, सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में 'पढ़ने में अयोग्य और मूर्ख के लक्षण।'

समीक्षा :— 'पढ़ाने' के स्थान पर 'पढ़ने' लिखकर प्रकरण की हत्या कर दी, क्योंकि प्रकरण पढ़ाने का चल रहा है।

(25) ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में 'कुतो' की जगह 'नास्ति' करके विदुरप्रजागर के श्लोक में पाठ भेद कर दिया। ताम्रपत्रानुसारी में तो यह पूरा श्लोक ही छोड़ दिया।

(26) ऋषि का पाठ = 'पति और स्त्री का वियोग दो ही प्रकार का

होता है – कहीं कार्यार्थ देशान्तर में जाना और दूसरा मृत्यु से वियोग होना।

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ऋषि पाठ से 'जाना' शब्द निकालकर इस वाक्य खण्ड को अधूरा और अनर्थक बना दिया।

(27) ऋषि पाठ = 'विवाह क्यों करना ? क्योंकि इससे स्त्री पुरुष को बन्धन में पड़के बहुत संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है।

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ऋषि पाठ से 'को' शब्द को निकालकर वाक्य की रचना गलत बना दी तथा प्रश्न खड़ा कर दिया कि किसको संकोच करना और दुःख भोगना पड़ता है।

(28) ऋषि पाठ = 'तब तक वे मिले रहैं'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'वह तब तक मिले रहैं।'

समीक्षा :– वाह जी महाराज व्याकरणाचार्य दैवकरणि जी ! आपने क्या ही सुन्दर वाक्य रचना की है। यह कोई नया ही फार्मूला व्याकरण से खोज निकाला है जिसके अनुसार कर्ता एकवचन और क्रिया बहुवचन में शोभायमान हो रहे हैं।

(29) ऋषि पाठ = 'मोक्ष'।

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'अक्षय मोक्ष।'

समीक्षा :– ऋषि पाठ में 'अक्षय' शब्द बढ़ाकर साङ्गोपाङ्गवेदोपवेद के सिद्धान्तों की हत्या करके सान्त मुक्ति को अनन्त बना दिया। वाह रे दैवकरणि तेरे झलकारे। करते हैं इशारे।। तुम हो मूर्ख सारे।। धन्य भाग्य तुम्हारे।।।।

(30) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'उस समय

सुगन्धि युक्त उष्ण जल जो कि किञ्चित उष्ण रहा हो उसी से स्त्री स्नान करे और बालक को भी स्नान करावे।'

वेदानन्दी की पाद टिप्पणी का पाठ = 'सुश्रुत शरीर स्थान 10–10 अर्थात् इसके पश्चात् नवजातक बालक को शीतल जल से स्नान कराके———।'

समीक्षा :– (1) उष्ण जल = खूब उबालकर गर्म किया हुआ जल जिसमें गर्म करने से हानिकारक कीटाणु आदि मर चुके हों। (2) जोकि किञ्चित उष्ण रहा हो = खूब उबालकर गर्म किया हुआ जल जब ठण्डा होकर जरा सा गर्म रह जाए ताकि जच्चा बच्चा (स्त्री और बालक) के नरम, कोमल, नाजुक शरीर पर अधिक गर्म न लगे तब वह जल स्नान के योग्य होता है।

अब आइये स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' की चमड़ी उधेड़ें। इस कसाई को जरा भी दया न आई कि नवजात बालक का कोमल और नाजुक शरीर ठण्डे पानी के झटके को गर्मी के मौसम में भी सहन नहीं कर सकता फिर सर्दी के मौसम की तो कथा ही क्या है ? नवजात शिशु को सर्दी में ठण्डे जल से स्नान कराने से बच्चे की मृत्यु भी हो सकती है। दूसरे ठण्डे जल के हानिकारक कीटाणु बच्चे के नरम शरीर में रोग उत्पन्न कर सकते हैं। सुगन्धियुक्त उष्ण जल में ये कीटाणु नष्ट हो जाते हैं, पर वेदानन्द कसाई को दया से क्या काम ? कोई जीओ चाहे कोई मरो, पर स्वामी वेदानन्द कसाई का पेट पूरा भरो।। सुश्रुत का प्रमाण निश्चित रूप से प्रक्षिप्त है और आर्ष सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द सरस्वती का पाठ ही सर्वांश में सही है। पूरी परख कर ली कि भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं के कथन में कुछ भी सच्चाई नहीं।।



10. पञ्चम समुल्लास के भ्रष्टीकरण

पञ्चम समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में = 79 (2) ताम्रपत्रानुसारी में = 38
(3) झज्जरी में = 163 (4) अजमेरी में = 186
(5) भगवती में = 194 (6) सिद्धान्ती में = 79

अब परीक्षण करते हैं कि इन क्षुद्राशयों के किये परिवर्तनों में कुछ सार भी है या सारा ही तलछट है।

(1) ऋषि का पाठ = 'वन में निवास करे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'वन में निवसें।

समीक्षा – आप दुनियां भर के हिन्दी शब्द कोशों को छान मारो परन्तु किसी में भी हिन्दी शब्द 'निवसे' नहीं मिलेगा। हां विरजानन्द दैवकरणि की कोठड़ी में ऐसे शब्द रचने की मशीन लगी हुई है तभी तो यह महाशय ऐसे असम्भव, अशुद्ध शब्द रच लेता है। सज्जन पाठक वृन्द!

देखा विरजानन्द दैवकरणि का चाला।
मूण्ड मुण्ड़ाया और मुंह करवा लिया काला।।

(2) ऋषि पाठ = वेदवित् और परमेश्वर को जानने वाले गुरु के पास विज्ञान के लिये जावे।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'गुरु' शब्द से पहले 'उस' शब्द अनुचित; अनभीष्ट लगा कर अपनी घिनौनी हरकत का परिचय दे ही दिया। प्रथम समुल्लास में लगे हुए उचित शब्द 'उस' को 45 स्थानों से हटा दिया और यहां बिना जरूरत के लगा दिया। मान गये दैवकरणि तेरी मिलावट हटावट की दूषित कलाकारी को।

(3) वेदानन्दी, सिद्धान्ती, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में छान्दोग्योपनिषद् के प्रवाक में एक शब्द मिलाकर पाठ भेद कर दिया।

(4) भगवती में संन्यासी के विशेष धर्म के लिये दिये 16 श्लोकों में से बारहवें श्लोक के आरम्भ में मिलावट करके पाठ भेद कर दिया।

(5) ऋषि का पाठ = 'प्रश्न ———— क्योंकि ईश्वर का अभिप्राय मनुष्यों की बढ़ती करने में है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'मनुष्यों' की जगह 'मनुष्य' करके यह बतला दिया कि सारे संसार में केवल एक ही 'मनुष्य' है। इस महाशय दैवकरणि से कोई पूछे कि भाई साहब, एक मनुष्य की बढ़ती कैसे हो सकती है ? बढ़ती होने के लिये कम से कम दो मनुष्य अर्थात् एक पुरुष और एक स्त्री तो अवश्य ही चाहियें। और यदि विरजानन्द दैवकरणि को सन्तुष्ट करने के लिये मान भी लिया जाए कि एक मनुष्य से भी बढ़ती हो सकती है तो आज तक अकेले दैवकरणि से दश दैवकरणि क्यों नहीं हुए। इसलिये मेरे भाई! ऋषियों के साथ छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिये अन्यथा फ़जीहता ही होना पड़ेगा।

(6) ऋषि पाठ = 'जब संन्यासी एक वेदोक्त धर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उत्पन्न करावेगा, तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'उत्पन्न' की जगह 'उत्पादन' रखने से यह सिद्ध हो गया कि इन महाशयों को संज्ञा और विशेषण का भी ज्ञान नहीं। श्रीमान् जीओ 'उत्पन्न' विशेषण है जबकि 'उत्पादन' संज्ञा है। विशेषण के स्थान पर संज्ञा रखने के लिये उपस्थित वाक्य

का रूप बदलना पड़ेगा जोकि आपने नहीं बदला है। चोर तो भाग गया परन्तु अपने पांवों के निशान छोड़ गया। वाक्य का रूप बिना बदले निशानों से ही तो आप पकड़े गये। क्या इसी अधकचरे ज्ञान के बल पर ही महर्षि दयानन्द का सुधार करने चले थे। धत्त तेरे की!

(7) ऋषि पाठ = 'ब्रह्म नित्यशुद्धबुद्धमुक्त स्वभावयुक्त है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती वालों ने उपरोक्त वाक्य से 'बुद्ध' हटाकर स्वयं के बुद्धू होने का परिचय दे दिया है।

(8) ऋषि पाठ = '<u>इसी प्रकार</u> जिस पुरुष वा स्त्री को विद्या, धर्मवृद्धि और सब संसार का उपकार करना ही प्रयोजन हो, वह विवाह न करे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती वालों ने उपरोक्त में 'इसी प्रकार' की जगह 'वैसे' रखकर यह दिखा दिया कि इन बेचारों को, किसमत के मारों को वाक्य रचना का भी ज्ञान नहीं अन्यथा 'वैसे' के बाद 'ही' शब्द रख देते तो चल भी जाता। परन्तु रक्खें कैसे, चोरों ने पांवों के निशान पीछे जो छोड़ने थे।

(9) ऋषि का पाठ = 'यह चाणक्य नीतिशास्त्र का श्लोक है।'

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती वालों ने उपरोक्त 'नीतिशास्त्र' के स्थान पर 'शतक' रखकर सफेद झण्डा दिखा दिया कि इन महात्माओं ने 'चाणक्यनीति' को खोल कर तो देखा ही नहीं परन्तु इसके बाहर से भी दर्शन नहीं किये हैं। अरे भले आदमियो! चाणक्यनीति का नाम चाणक्यशतक तो तब होता जब इसके हरेक पाठ में सौ सौ श्लोक होते जैसे भर्तृहरिशतक के प्रत्येक पाठ में सौ सौ श्लोक हैं यथा नीतिशतक,

श्रृंगारशतक और वैराग्यशतक। यह नामकरण संस्कार का नया पन्थ चलाने का विचार है क्या ?

(10) आर्ष सत्यार्थप्रकाश के इस पांचवें समुल्लास के अन्त में संन्यासियों की परिभांषा में लिखे लक्षणात्मक चवालीस शब्दों के अति सुन्दर, सुगठित प्रेरणादायक उपदेशात्मक पैरे को हटाकर उसके स्थान पर झज्जरी, अजमेरी और भगवती में तेंतीस शब्दों का आदेशात्मक कचरा भर दिया। बिटोड़े में से गोसे (उपले) ही निकलते हैं।

(11) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'वे निर्मल होकर प्राणद्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित हो जाते हैं।'

सिद्धान्ती में उपरोक्त पर फुटनोट (पादटिप्पणी) = जैसे बाह्य जगत में सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र आदि हैं, इसी भान्ति शरीर के मेरुदण्ड = रीढ़ की हड्डी में योगी महात्मा सूर्य आदि पदार्थों के अंश को जानते हैं। मेरुदण्ड के इसी सूर्य स्थान पर योगी लोग प्राणों की शक्ति को नियन्त्रित करते हैं और इस स्थल पर अभ्यास करके प्राणों द्वारा मुक्ति के आनन्द को प्राप्त करते हैं।

समीक्षा – यहां पर ऋषि ने मुण्डकोउपनिषद् 1–2–11 के मन्त्र में आये 'सूर्य' का अर्थ प्राण किया है। अतः जगदेव सिंह 'सिद्धान्ती' शास्त्री तर्कवाचस्पति का 'रीढ की हड्डी में सूर्य स्थान पर प्राणशक्ति रोककर अभ्यास करना' लिखना सर्वथा ही गलत है। ऊपर ऋषि ने लिखा है 'निर्मल होकर' अर्थात् जब निर्मल ही हो चुके तब अन्य अभ्यास किसलिये ? सातवें समुल्लास में लिखा है, "जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्या

आदि मल नष्ट हो गये हैं।" अर्थात् निर्मल होकर फिर अभ्यास क्यों और वह भी सूर्य स्थान पर। सूर्य का तो यहां प्रसंग ही नहीं। जैसे सूर्य के दो अर्थ हैं – एक सूरज और दूसरा प्राण। यहां प्राण का प्रसंग है कि प्राणद्वार से परमात्मा को प्राप्त करना है ताकि आनन्दित हो सकें। जैसे हम अपने घरद्वार से घर से बाहर जाते हैं और घरद्वार (घर का गेट, द्वार) से ही घर के अन्दर आते हैं। ठीक इसी प्रकार प्राणद्वार से ब्रह्म में जाते हैं और मुक्ति की अवधि तक ब्रह्म में रहकर फिर भी प्राणद्वार से शरीर में आते हैं। प्राण तो केवल आने जाने का दरवाजा (द्वार) है। अब इतना ही देखना है कि समाधियोग से अविद्या आदि मल नष्ट होने से निर्मल होकर कौनसे प्राण के द्वारा शरीर से निकलकर जीवात्मा परमात्मा को प्राप्त होता है।

प्रश्नोपनिषद् 3, 7 से 9 तथा तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली 6–1 और छान्दोग्योपनिषद् 8–6 के अनुसार जीवात्मा उदान प्राण पर चढ़कर सुषुम्णा नाड़ी के मार्ग से सिर के ब्रह्म रन्ध्र स्थान से शरीर से बाहर निकलकर परमात्मा को प्राप्त होता है। जीव का उदान प्राण से छूटना और ब्रह्म को प्राप्त होना तत्काल, उसी समय अर्थात् छूटना और प्राप्ति एक ही क्षण में हो जाता है जैसे बिजली का बटन दबाते ही प्रकाश की प्राप्ति और अन्धेरे से छूटना एक ही क्षण में हो जाता है। इस प्रकार सिद्धान्ती का फुटनोट बिल्कुल गलत है और अनुभवहीनता को दिखा रहा है।

उपरोक्त परीक्षण से मालूम हुआ कि भ्रष्टीकरण कर्त्ता इन क्षुद्राशयों के परिवर्तनों में कुछ भी सार नहीं बल्कि सारा ही तलछट है।

❖❖❖❖

11. षष्ठ समुल्लास के भ्रष्टीकरण

षष्ठ समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में	= 115	(2) ताम्रपत्रानुसारी में	= 89
(3) झज्जरी में	= 435	(4) अजमेरी में	= 513
(5) भगवती में	= 518	(6) सिद्धान्ती में	= 115

माना कि गुलशन न कर सके सारे जहान् को हम।
पर कांटे तो कम कर ही गये गुजरे जिधर से हम।।

यह ठीक है कि मैं सैकड़ों सत्यार्थप्रकाशों में किये भ्रष्टीकरणों को नहीं दिखा सकता परन्तु कुछ के तो दिखा ही सकता हूँ। अतः देखिये और गौर से देखिये :—

(1) (क) महर्षि दयानन्द ने कई कई श्लोक इकट्ठे देकर नीचे उन सबका अर्थ इकट्ठा दिया है। स्वामी वेदानन्द और विरजानन्द दैवकरणि ने कहा दयानन्द! तेरा यह तरीका गलत है। हम तुझे सही तरीका सिखायेंगे। इतना कह कर इन दोनों उल्लुओं ने वेदानन्दी और ताम्रपत्रानुसारी में हूबहु एक ही प्रकार का परिवर्तन कर दिया। एक स्थान पर 11 (ग्यारह) श्लोकों में से पहले दो श्लोक दे दिये। इन दोनों श्लोकों का अर्थ देने के बाद शेष 9 (नौ) श्लोक देकर इनका अर्थ दे दिया। श्लोकों के क्रमांक भी नये ढंग से लिख दिये। दूसरे स्थान पर 12 (बारह) श्लोकों में से तीन श्लोक पहले फिर इनका अर्थ तथा शेष 9 (नौ) श्लोक बाद में फिर इनका अर्थ दे दिया, क्रमांक भी बदल दिये। और तीसरे स्थान पर 19 (उन्नीस) श्लोकों में से प्रथम के 10 (दश) श्लोक, इनका अर्थ, फिर शेष 9 (नौ) श्लोक तथा इनका अर्थ देकर क्रमांक बदल दिये। स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' ने

सन् 1955 ई॰ में यह तीर्थस्नान किया और विरजानन्द दैवकरणि ने सन् 1983 ई॰ में स्वामी वेदानन्द की हूबहु ज्यों की त्यों नकल करके जगत गुरु दयानन्द का सुधार कर दिया।

(ख) इन दोनों महाभूतों ने मनुस्मृति के अनेकों श्लोकों में मिलावट, हटावट और बदलावट द्वारा पाठ भेद करके महर्षि दयानन्द और महर्षि मनु दोनों का ही सुधार कर दिया जी।

(ग) अजमेरी के पृष्ठ 160 और भगवती के पृष्ठ 103 पर, प्रत्येक में दो–दो श्लोक नये मिला दिये और भगवती के पृष्ठ 104 से एक श्लोक चुराकर अपने घर ले गये, ले गये जी ये महाचोर। मनुस्मृति के अनुसार वाणी का चोर गूंगा होता है अर्थात् मूक प्राणी यानी पशु पक्षी कीड़े मकोड़ों की योनियों में जन्म लेता है।

(2) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है, अर्थात् किसी को अपने से अधिक न होने देता। श्रीमान् को लूट खूंट अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'लेके' के स्थान पर 'देके' कर दिया।

समीक्षा – प्रकरण के अनुसार 'दण्ड लेके' का तात्पर्य है अन्याय से धन लेके। इसलिये भगवती आदि का पाठ प्रकरण विरुद्ध है, अतः गलत है।

(3) ऋषि पाठ = 'सभेश राजा अन्धकार अर्थात् अविद्या अन्याय का निरोधक होवे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'सभेश राजा अन्धकार का निरोधक होवे।'

समीक्षा – यदि राजा ही अन्धेरे को रोकने वाला होवे तो सूर्य, चान्द, बिजली और दीपक आदि की जरूरत ही न पड़े और न

ही बिजली का बिल भरना पड़े। इन मूर्खों को कहां तक समझायें कि इन्होंने 'अन्धकार' के बाद के 'अर्थात् अविद्या अन्याय' ये तीन शब्द हटाकर तीन लोक में अन्धकार कर दिया।

(4) झज्जरी के पृष्ठ 267, अजमेरी के पृष्ठ 152 और भगवती के पृष्ठ 99 पर काम क्रोध और लोभ को छुड़ाने वाली शिक्षा भरे मनुस्मृति के अति मूल्यवान श्लोकों के अर्थ को अत्यधिक मिलावट, हटावट, बदलावट से इतना भ्रष्ट व दूषित कर दिया जिंतना कि एक किलो हलवे में दश किलो गोबर मिला दिया जाय। परमात्मा इन दुष्टात्माओं को यथापराध कठिन दण्ड देगा।

(5) ऋषि पाठ = 'राजा को कोई संग्राम में आह्वान करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके, संग्राम में जाने से कभी निवृत्त न हो।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती वालों ने उपरोक्त पाठ से 'में जाने' ये दो शब्द हटाकर वाक्य का अर्थ बना दिया कि चाहे सब शत्रु मारे गये हों, राजा की पूरी विजय हो गई हो, परन्तु 'संग्राम से कभी निवृत्त न हो' अर्थात् संग्राम से कभी हटे ही नहीं, लगा ही रहे। जब सामने वाले सब शत्रु खत्म हो चुके तब किसके साथ युद्ध में लगा रहे ? ऋषि जी का इतना ही मतलब था कि यदि कोई राजा को संग्राम के लिये ललकारे तो युद्ध में जाने से हटे नहीं। उपरोक्त दो शब्द हटाकर अर्थ का अनर्थ कर दिया। ऐसे ही सारा का सारा सत्यार्थप्रकाश भ्रष्ट कर दिया।

(6) ऋषि पाठ = 'उसका सत्कार राजा और सभा करें।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'उसका सत्कार राजसभा करें।

समीक्षा – उपरोक्त ऋषि पाठ से 'राजा' के 'जा' से 'आ' मात्रा तथा 'और' हटाकर राजा को ही खतम कर दिया जुल्मियों ने।

(7) ऋषि पाठ = 'बन्दीगृह'

अजमेरी और भगवती में = 'बन्धीगृह'

समीक्षा – देखिये विरजानन्द दैवकरणि को साधारण शब्दों का भी ज्ञान नहीं। व्याकरणाचार्य का पद तो इसे गधे पर भार की तरह दुःखदायक ही है।

(8) ऋषि पाठ = जो कोई युद्ध में मर गया हो, उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'सन्तान' के स्थान पर 'लड़के' करके लड़की का अधिकार खतम कर दिया। यदि 'सन्तान' को न हटाते तो लड़की भी रोटी, कपड़ा और मकान की अधिकारिणी हो जाती। शायद लड़कियों से इनकी सात जन्मों की दुश्मनी है।

(9) ऋषि पाठ = 'समीप आये'

वेदानन्दी, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'समीप में आये'

समीक्षा – अरे महारथियो ! जरा व्याकरण के भी दर्शन कर लिया करो। 'समीप' क्रिया विशेषण है और 'में' अधिकरण कारक और सप्तमी विभक्ति है। यदि यहां 'समीपता' होती तो इसके बाद 'में' लग सकता था। संज्ञा के बाद ही अधिकरण कारक का प्रयोग हो सकता है, क्रिया विशेषण के बाद नहीं। समीप के बाद 'में' का प्रयोग भद्दा भी लगता है जैसे 'मेरे समीप में आओ' से 'मेरे समीप आओ' सुन्दर लगता है। अतः इन महारथियों का यह परिवर्तन बेहूदा है।

(10) ऋषि पाठ = 'यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्रों से राजनीति का प्रकार लिया है।'
झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'यह प्रकार यहीं से लिया है।'

समीक्षा – उपरोक्त पाठों में हर तरह से उतना ही अन्तर है जितना महर्षि दयानन्द और विरजानन्द दैवकरणि में। 'यहीं से लिया है' अर्थात् दैवकरणि की कोठड़ी से लिया है। न यह बताया कि किस चीज का प्रकार लिया है और कौन से धर्मशास्त्रों आदि से लिया है। ऋषि का पाठ सब तरह से पूरा है जबकि भगवती आदि का पाठ सब तरह से अधूरा है।

(11) ऋषि पाठ = जो वृद्ध हों उनको भी आधा मिला करे।
झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'जो' के स्थान पर 'जब' रखके वाक्य रचना बिगाड़ कर तिगाड़ दी। अरे भाई! यदि आपने परिवर्तन ही करना था तो 'उनको' की जगह 'तब' रखना था ताकि आपका वाक्य तो ठीक बन जाता। उस अवस्था में आपका वाक्य 'जब वृद्ध हों तब भी आधा मिला करे' ऐसा होता। 'जब के साथ 'तब' और 'जो' के साथ 'उनको' का ही मेल खाता है। आप वाक्य रचना सीखने के लिये मेरे पास ट्यूशन रख लो। जैसे कुम्हार घड़े को पीट पीटकर ठीक बना देता है वैसे ही मैं आपको पीट पीटकर वाक्य रचना ठीक बनानी सिखा दूंगा।

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है घड़ घड़ काढ़े खोट।
अन्दर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।।

(12) ऋषि पाठ = '(यान) अकस्मात् कोई कार्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ मिलके शत्रु की ओर जाना यह दो प्रकार का गमन कहाता है।'
अजमेरी और भगवती का पाठ = '——————यह

समीक्षा – उपरोक्त ऋषि पाठ से 'राजा' के 'जा' से 'आ' मात्रा तथा 'और' हटाकर राजा को ही खतम कर दिया जुल्मियों ने।

(7) ऋषि पाठ = 'बन्दीगृह'

अजमेरी और भगवती में = 'बन्धीगृह'

समीक्षा – देखिये विरजानन्द दैवकरणि को साधारण शब्दों का भी ज्ञान नहीं। व्याकरणाचार्य का पद तो इसे गधे पर भार की तरह दुःखदायक ही है।

(8) ऋषि पाठ = जो कोई युद्ध में मर गया हो, उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'सन्तान' के स्थान पर 'लड़के' करके लड़की का अधिकार खतम कर दिया। यदि 'सन्तान' को न हटाते तो लड़की भी रोटी, कपड़ा और मकान की अधिकारिणी हो जाती। शायद लड़कियों से इनकी सात जन्मों की दुश्मनी है।

(9) ऋषि पाठ = 'समीप आये'

वेदानन्दी, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'समीप में आये'

समीक्षा – अरे महारथियो ! जरा व्याकरण के भी दर्शन कर लिया करो। 'समीप' क्रिया विशेषण है और 'में' अधिकरण कारक और सप्तमी विभक्ति है। यदि यहां 'समीपता' होती तो इसके बाद 'में' लग सकता था। संज्ञा के बाद ही अधिकरण कारक का प्रयोग हो सकता है, क्रिया विशेषण के बाद नहीं। समीप के बाद 'में' का प्रयोग भद्दा भी लगता है जैसे 'मेरे समीप में आओ' से 'मेरे समीप आओ' सुन्दर लगता है। अतः इन महारथियों का यह परिवर्तन बेहूदा है।

(10) ऋषि पाठ = 'यह वही अपने मनु आदि धर्मशास्त्रों से राजनीति का प्रकार लिया है।'
झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'यह प्रकार यहीं से लिया है।'

समीक्षा – उपरोक्त पाठों में हर तरह से उतना ही अन्तर है जितना महर्षि दयानन्द और विरजानन्द दैवकरणि में। 'यहीं से लिया है' अर्थात् दैवकरणि की कोठड़ी से लिया है। न यह बताया कि किस चीज का प्रकार लिया है और कौन से धर्मशास्त्रों आदि से लिया है। ऋषि का पाठ सब तरह से पूरा है जबकि भगवती आदि का पाठ सब तरह से अधूरा है।

(11) ऋषि पाठ = जो वृद्ध हों उनको भी आधा मिला करे।
झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'जो' के स्थान पर 'जब' रखके वाक्य रचना बिगाड़ कर तिगाड़ दी। अरे भाई! यदि आपने परिवर्तन ही करना था तो 'उनको' की जगह 'तब' रखना था ताकि आपका वाक्य तो ठीक बन जाता। उस अवस्था में आपका वाक्य 'जब वृद्ध हों तब भी आधा मिला करे' ऐसा होता। 'जब के साथ 'तब' और 'जो' के साथ 'उनको' का ही मेल खाता है। आप वाक्य रचना सीखने के लिये मेरे पास ट्यूशन रख लो। जैसे कुम्हार घड़े को पीट पीटकर ठीक बना देता है वैसे ही मैं आपको पीट पीटकर वाक्य रचना ठीक बनानी सिखा दूंगा।

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है घड़ घड़ काढ़े खोट।
अन्दर हाथ सहार दे बाहर मारे चोट।।

(12) ऋषि पाठ = '(यान) अकस्मात् कोई कार्य प्राप्त होने में एकाकी वा मित्र के साथ मिलके शत्रु की ओर जाना यह दो प्रकार का गमन कहाता है।'
अजमेरी और भगवती का पाठ = '——————————यह

दो प्रकार का 'यान' कहाता है।'

समीक्षा – ऋषि ने 'यान' का अर्थ समझाने के लिये 'गमन' लिखा, परन्तु दैवकरणि ने इसे मिटा कर समझने के अयोग्य कर दिया अर्थात् अन्धे कुवे में डाल दिया।

(13) ऋषि पाठ = 'सेना के साथ लड़ने लड़ाने वाले वीरों को आठों दिशाओं में रक्खे।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'दिशाओं' से 'दिशा' करके एकवचन, बहुवचन ज्ञानहीनता का शुभ परिचय दे ही दिया व्याकरणाचार्य जी महाराज ने।

(14) ऋषि पाठ = 'व्यूह के विना लड़ाई न करे।'

अजमेरी और भगवती का पाठ = 'व्यूह से विना लड़ाई न करे।'

समीक्षा – दैवकरणि को गलत शब्द प्रयोग के उपलक्ष्य में अन्तर्राष्ट्रीय स्वर्ण पदक मिलना ही चाहिए।

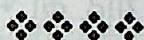
(15) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द का पाठ = 'वृद्ध पुरुषों को तोप के मुख के सामने घोड़ों पर सवार करा दौड़ावें।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में 'घोड़ों पर' की जगह 'घोड़े पर' लिख कर यह नया फार्मूला सिखा दिया कि अनेकों पुरुषों को केवल एक ही घोड़े पर सवार करा कर दौड़ाया जा सकता है। इस प्रकार अनेकों घोड़ों की जान बचाकर दैवकरणि जी महापुण्य के भागी हो गये हैं। क्या ऐसी ऐसी बिना सिर पैर की बातें महर्षि दयानन्द द्वारा लिखवाई और अपने हाथ से संशोधित की हुई हस्तलिखित मूल प्रति में हो सकती हैं ? कभी नहीं ! कभी नहीं !! कभी नहीं !!!

(16) वेदानन्दी के पृष्ठ 149 पर फुटनोट = 'बन्धनी के बीच का पाठ स॰प्र॰ द्वितीय संस्करण श्लोक 5 के अर्थ के

पश्चात् मुद्रित है। ग्रन्थकार की शैली के अनुसार हमने अन्य संस्करणों का अनुसरण करते हुए इसे यहीं रहने देना उचित समझा है।'

हमारा वक्तव्य – यह सर्वथा ही झूठ है कि उपरोक्त पाठ सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण श्लोक 5 के अर्थ के पश्चात् मुद्रित है। यदि स्वामी वेदानन्द जी 'तीर्थ' एक मिनट के लिये नरकलोक छोड़कर 3321 यू.ई. जीन्द में मेरे पास आ जावें तो मैं इन्हें दिखा सकता हूं कि स.प्र. द्वितीय संस्करण में उपरोक्त पाठ वहीं पर है जहां ग्रन्थकार की शैली के अनुसार आपने इसे रहने देना उचित समझा है।



12. सप्तम समुल्लास के भ्रष्टीकरण

सप्तम समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में = 255 (2) ताम्रपत्रानुसारी में = 92
(3) झज्जरी में = 393 (4) अजमेरी में = 462
(5) भगवती में = 468 (6) सिद्धान्ती में = 255

है कौनसा उकदा जो वाह हो नहीं सकता।
हिम्मत करे इनसान तो क्या हो नहीं सकता।।

अर्थ – वह कौनसी गांठ है जो खुल नहीं सकती अर्थात् हिम्मत करने पर प्रत्येक समस्या हल हो सकती है। हिम्मत और धीरज वाले लोग तो बाल की गांठ को भी खोल देते हैं। इसी प्रकार हिम्मत और धैर्य से सत्यार्थप्रकाश हत्याकाण्ड का भाण्डा फोड़ ही डालूंगा।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'जो कुछ उत्पन्न हुआ था, है और होगा, उसका स्वामी था, है और होगा; उस परमात्मा ही की भक्ति करें।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त अन्तिम 'होगा' को हटाकर इसकी जगह 'रहेगा' लिखकर उत्पन्न हुए संसार को नित्य अर्थात् हमेशा से है और हमेशा रहेगा बना दिया जबकि जो कुछ उत्पन्न होता है वह प्रलय अर्थात् समाप्त भी होता है।

(2) झज्जरी, अजमेरी और भगवती में (122 पृष्ठ) 2/3 पृष्ठ बहुत ही भ्रष्ट कर दिया जिससे भ्रष्टीकरण छांटना भी असम्भव हो गया।

(3) ऋषि का पाठ = 'परमेश्वर सबकी भलाई और सबके लिए सुख चाहता है।'

अजमेरी और भगवती में उक्त 'चाहता' की जगह 'इच्छता' लिख दिया जो कि बिल्कुल ही गलत है। ऐसे आश्चर्ययुक्त सर्वथा अशुद्ध और असम्भव शब्दों को रचना किसी चमत्कारी बाबा का काम दिखता है। मान गये दैवकरणि! अति घटिया है तेरी करनी।

(4) ऋषि पाठ = 'जिस पुरुष के समाधियोग से अविद्या आदि मल नष्ट हो गये हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'जिस पुरुष का समाधियोग से अविद्या आदि मल नष्ट हो गया है।'

समीक्षा – (1) ऋषि पाठ में 'आदि' शब्द ही बता रहा है कि 'मल' अनेक हैं। (2) एक एक पाप से भी तीन तीन मल लगते हैं जैसे स्थूलमल, सूक्ष्ममल और कारणमल तथा मल (स्थूल मल), विक्षेप (सूक्ष्म मल) और आवरण (कारण मल)।

इसमें प्रमाण (1) योगदर्शन 2–2 का अनुवाद = "क्रियायोग अविद्या आदि क्लेशों को सूक्ष्म करता है।" सूक्ष्म तो तभी करेगा जब पहले स्थूल क्लेश (मल) होंगे।

(2) योगदर्शन 2–11 के व्यास भाष्य का अनुवाद = जैसे वस्त्रों का स्थूल मल पहले धोया जाता है, बाद में सूक्ष्म मल यत्न से और (साबुन लगाने आदि) विशेष उपाय से दूर किया जाता है। उसी प्रकार अविद्या आदि स्थूल मल क्रिया योग से और सूक्ष्ममल ध्यान से समाप्त किये जाते हैं। इससे आगे कारण मल ब्रह्म ज्ञान से नष्ट हो जाते हैं।

(3) पिछली मुक्ति से लौटकर इस जन्म तक अर्थात् अनेकों जन्मों में असंख्य पाप कर्म किये हैं जिनसे असंख्य मल जीवात्मा में हैं। अतः सिद्ध है कि ऋषि पाठ के बहुवचन के वाक्य को एकवचन का बनाना अपनी महान् अज्ञानता का परिचय देना है।

(5) ऋषि पाठ = 'ओ३म् का जप और अर्थविचार किया करे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में 'ओ३म्' के स्थान पर 'ओङ्कार' कर दिया है। इसकी व्याख्या तृतीय समुल्लास के भ्रष्टीकरणों में कर दी है। वहीं देख लेना।

(6) ऋषि पाठ = 'मन को नाभि प्रदेश में स्थिर कर परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवें।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य से 'प्रदेश' शब्द निकाल दिया। इस से मालूम हो गया कि इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का मन स्थिर होता ही नहीं अन्यथा इन्हें पता लग जाता कि मन केवल नाभि में स्थिर नहीं होता अपितु नाभि प्रदेश में स्थिर होता है। योगदर्शन 3–1 के व्यास भाष्य में नाभि प्रदेश को नाभि चक्र लिखा है।

(7) ऋषि पाठ = 'प्रश्न – जब परमेश्वर के श्रोत्र, नेत्रादि इन्द्रियां नहीं हैं, फिर वह इन्द्रियों का काम कैसे कर सकता है ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य से 'के' हटाकर इसकी जगह 'को' कर दिया।

समीक्षा – एक घर में पति पत्नी दो ही मनुष्य थे। उनके घर में रात को एक बलवान् चोर घुस गया। पत्नी ने आहिस्ता से धीमी आवाज में अपने पति से कहा, "चोर घुस गया।" पति ने भी धीमी आवाज में पत्नी के कान में कहा, "वो तो मैं भी देख रहा हूँ परन्तु चोर बलवान् है। हम दोनों को मार देगा। इसे तरकीब से बुद्धिपूर्वक पकड़ेंगे।" उन दोनों ने फुसर फुसर कानाफूसी करके चोर को पकड़ने की पूरी स्कीम बना ली। पति ने पत्नी से कहा, "पैड़ियों के नीचे वाले कमरे में बचा हुआ हलवा रक्खा है। इसके किवाड़ बन्द कर दो ताकि बिल्ली न घुसने पावे।" पत्नी ने पैड़शाल के किवाड़ बन्द करके कुण्डी लगा दी। थोड़ी देर में पति पत्नी सोने का बहाना बना झूठे

खर्राटे भरने लगे। चोर ने विचारा कि पहले हलवा खालूं, फिर चोरी करूंगा। चोर ने आहिस्ता से किवाड़ खोले और भीतर जाकर दरवाजा आहिस्ता आहिस्ता बन्द कर दिया। चोर तो अन्धेरे में हलवा ढूंढ़ने लगा और पति ने उठकर पैड़शाल के दरवाजे की साङ्कल बन्द कर दी। चोर को भी सांकल बन्द करने की भनक पड़ गई। चोर बिल्ली की तरह म्यांऊ म्यांऊ बोलने लगा ताकि वे बिल्ली समझकर हलवा बचाने के लिये दरवाजा खोल दें। जब चोर बार बार लगातार म्यांऊ म्यांऊ कर रहा था तब पति ने कहा, "तू जैसी म्यांऊ है वैसी सुबह लोग ही बता देंगे।" इसी तरह भाई दैवकरणि जी! जैसा तेरा यह परिवर्तन है वैसा पढ़ने वाले लोग ही बता देंगे।

(8) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 127) में पूरा पैरा अत्यन्त भ्रष्ट करके अपनी भ्रष्ट बुद्धि दिखा दी।

(9) ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 127) में एक–एक प्रश्नोत्तर बढ़ाकर ऋषि दयानन्द का सुधार कर दिया।

(10) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 129) में बड़े–बड़े दो पैरे अत्यन्त भ्रष्ट कर दिये। सूअर का चारा खाना मनुष्यों को शोभा नहीं देता। यह चारा खांने के लिये तो सूअर का जन्म लेना ही उचित है।

(11) ऋषि पाठ = 'कर्म करने में जीव स्वतन्त्र है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'कर्म करने और फल भोगने में जीव स्वतन्त्र है।'

समीक्षा – यदि जीव फल भोगने में स्वतन्त्र होता तो विरजानन्द दैवकरणि 'हकलाकर' कभी नहीं बोलता। कोई भी जीव अन्धा, बहरा, गूंगा, टी॰बी॰ और कैन्सर आदि का रोगी कभी भी नहीं होता। कोई कातिल अपनी मरजी से जेल में नहीं जाता, न फांसी पर चढ़ता, उसे तो जबरदस्ती जेल और फांसी का दण्ड

दिया जाता है। इसीलिये जीव कर्म करने में स्वतन्त्र और कर्मों के फल भोगने में परतन्त्र होता है। ये सिद्धान्त हत्यारे गर्भ में ही मर जाते तो इनके पापों की गठरी इतनी भारी नहीं होती।

(12) ऋषि पाठ = 'परमेश्वर के जीवों को पाप—पुण्यों के फल देना आदि धर्मयुक्त कर्म हैं।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'को' के स्थान पर 'का' करके वाक्य रचना का रूप विकृत कर दिया।

(13) ऋषि पाठ = 'परमेश्वर अतीव सूक्ष्मात्सूक्ष्मतर है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'परमेश्वर अति सूक्ष्म है।'

समीक्षा — ऋषि पाठ का शब्दार्थ = परमेश्वर अतीव सूक्ष्म से अधिक सूक्ष्म है। अति सूक्ष्म = प्रकृति। अतीव सूक्ष्म = जीव।। अतीव सूक्ष्म (जीव) से सूक्ष्मतर = परमेश्वर।।। अरे व्याकरणचार्यो ! विशेषण की उत्तरावस्था और उत्तमावस्था का भी ध्यान रक्खो।

(14) ऋषि पाठ = वेदों के इन महावाक्यों का अर्थ क्या है ?

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = इन वेदों के महावाक्यों का अर्थ क्या है ?

समीक्षा — उपरोक्त ऋषि पाठ के 'इन' शब्द का स्थान बदल कर भैंस का कटड़ा गाय के नीचे और गाय का बछड़ा भैंस के नीचे थनों में लगाकर दूध निकालना चाहते हैं अर्थात् वास्तव में 'इन' शब्द का सम्बन्ध था तो महावाक्यों से और इन अकल के दुश्मनों ने कर दिया वेदों से।

(15) वेदानन्दी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 132) में दो प्रश्नों के 'पूर्वपक्ष' और तीन उत्तरों के 'उत्तरपक्ष' बना दिये।

(16) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 132) में बृहदारण्यक के

वचन में पाठ भेद करके महर्षि ब्रह्मा और दयानन्द के भी गुरु बन बैठे।

(17) ऋषि पाठ = 'इन पांच की आदि विदित नहीं होती।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'इन' के स्थान पर 'ये' लगाकर मूर्खता के अन्तर्राष्ट्रीय कम्पीटीशन में गधों को हराकर स्वर्णपदक (गोल्ड मैडल) प्राप्त कर ही लिया।

(18) वेदानन्दी के पृष्ठ 167 और ताम्रपत्रानुसारी के पृष्ठ 131 पर से एक-एक प्रश्नोत्तर गड़प कर डकार भी नहीं ली।

(19) वेदानन्दी के पृष्ठ 169 से आरम्भ करके नौ प्रश्नों को नौ 'वेदान्ती' और इन्हीं प्रश्नों के नौ उत्तरों को नौ 'सिद्धान्ती' लिखकर भाग गये और नरक लोक में जा छिपे।

(20) ऋषि पाठ = इसी प्रकार जीव तथा सब संसार के पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में भिन्न और स्वरूप भिन्न होने से एक भी नहीं होते।

वेदानन्दी पृष्ठ 173 और सिद्धान्ती के पृष्ठ 174 पर उपरोक्त 'व्याप्य' का 'व्याप्त' बना कर उल्टी गंगा पहाड़ चढ़ा दी। यदि ये दोनों महापुरुष जरा मनन करने का कष्ट कर लेते तो सारा ही मामला सुलझ जाता। सब लोगों के समझने के लिए ऋषि ने ऊपर 'आकाश' और घर का दृष्टान्त देकर अच्छी प्रकार समझाया और फिर निष्कर्ष रूप में 'जीव और संसार के सब पदार्थ परमात्मा से भिन्न भी हैं और अभिन्न भी हैं' यह बताया। जैसे घड़ा आकाश में व्याप्य (आकाश द्वारा व्याप्त, व्यापक होने योग्य) है अर्थात् घड़ा आकाश में है अतः आकाश से अभिन्न (अपृथक) है। और घड़ा आकाश नहीं है। अतः आकाश से भिन्न (पृथक) है। इसी प्रकार जीव और संसार के सब पदार्थ ईश्वर से स्थूल होने से व्याप्य (जिन में ईश्वर व्याप्त, व्यापक हो) हैं। परमेश्वर में व्याप्य का अर्थ है कि

परमेश्वर आकाश की तरह सब जगह है, अतः सब कुछ परमेश्वर में है परन्तु व्याप्य (ईश्वर जिन में व्यापक, व्याप्त हो) भाव से है। परमात्मा से बाहर नहीं जा सकते, अतः पृथक् (भिन्न) नहीं हैं। और जीव और संसार के पदार्थ परमात्मा नहीं हैं, परमात्मा से अलग चीज हैं, अतः परमात्मा से भिन्न (पृथक्) भी हैं। इसीलिये ऋषि के उपरोक्त पाठ में 'व्याप्य' का 'व्याप्त' करना गलत है।

(21) ऋषि पाठ = 'भला एक मियान में दो तलवार कभी रह सकती हैं ?'

वेदानन्दी और सिद्धान्ती में उपरोक्त 'मियान' का 'घर' कर दिया। इन अनाड़ियों को यह नहीं पता कि एक 'घर' में तो हजारों तलवार भी रह सकती हैं, तुम्हारी गर्दन सलामत चाहिये। परिवर्तन भी फूहड़ ढंग का किया।

(22) ऋषि का पाठ = इसलिये ब्रह्म जीव और जीव ब्रह्म कभी न हुआ, न है और न होगा।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'कभी' के बाद 'एक' मिला दिया।

समीक्षा :– ऋषि का तात्पर्य = जैसे नवीन वेदान्ती कहते हैं कि सृष्टि से पहले प्रलय में केवल एक ब्रह्म ही था, जीव नहीं थे। सृष्टि में ब्रह्म से ही जीव बने हैं तथा प्रलय में सब जीव ब्रह्म में विलीन (जैसे पानी में पानी मिल जाता है) होकर ब्रह्म ही हो जायेंगे। ऋषि जी कहते हैं कि सब जीव हमेशा से हैं और हमेशा रहेंगे। अतः ब्रह्म से जीव नहीं बनता और जीव से ब्रह्म नहीं बनता। ब्रह्म और जीव अनादि और अनन्त अर्थात् नित्य हैं। इसीलिये उपरोक्त ऋषि पाठ में 'एक' मिलाना अनुचित कलाकारी है।

(23) चार आदमी घोड़ों पर सवार और इन चारों के पीछे एक

व्यक्ति गधे पर चढ़कर पांचों जा रहे थे। रास्ते में कुछ लोगों ने पूछा, "भाई साहब ! कहां जा रहे हो ?" घोड़ों वाले तो बोल ही न पाये, गधे वाले ने कहा, "ये पांचों सवार दिल्ली जा रहे हैं।" इसी प्रकार झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 138) वाले 'यूनान' की जगह 'यवन' (मुसलमान) लिखकर पांचवां सवार बन ही गये।

(24) ऋषि का पाठ = 'यह कात्यायन का वचन नहीं हो सकता।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'यह कात्यायन का वचन माननीय नहीं हो सकता।

समीक्षा – ऋषि तो कह रहे हैं कि यह कात्यायन का वचन नहीं है और ये भण्डेले कह रहे हैं कि यह कात्यायन का वचन तो है, परन्तु यह कात्यायन का वचन मानने योग्य नहीं। धन्य है उन माताओं को जिन्होंने ऐसे भ्रष्ट बुद्धि कुपुत्र उत्पन्न किये हैं।

(25) ऋषि का पाठ = 'पुस्तक तो पत्रे और स्याही का बना है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती वालों ने उपरोक्त 'पत्रे' छोड़कर उस की जगह 'कागज' छपवाकर ऋषि की गहराई को न समझने का प्रमाणपत्र सर्टीफिकेट दे दिया है, क्योंकि पुस्तकें तो भोजपत्र, ताम्रपत्र और कागज पत्र सभी पर लिखी गई हैं। ऋषि के लिखे 'पत्र' में इस प्रकार के सभी पत्र समा जाते हैं। 'कागज' से कोरा कागज ही रह गया। ठीक ही कहा है कि 'बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद।'

(26) ऋषि का पाठ = 'वेद परमेश्वरोक्त हैं' इन्हीं के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये।

अजमेरी और भगवती का पाठ = वेद परमेश्वरोक्त हैं। इसी के अनुसार सब लोगों को चलना चाहिये।

समीक्षा – ऋषि ने उपरोक्त दोनों वाक्यों में बहुवचन का प्रयोग किया है, किन्तु इन भ्रष्टों ने पहले वाक्य में बहुवचन और दूसरे वाक्य में एकवचन का प्रयोग किया है। इन्होंने यह दोगली नीति इसलिये अपनाई है कि दयानन्द रूपी सूर्य पर धूल फैंक कर इसे मैला करेंगे कि दयानन्द पहले वाक्य में वेदों को अनेक (चार) मानते हैं और दूसरे वाक्य में वेद को केवल एक ही मानते हैं।

(27) आठ वसुओं के विषय में वेदानन्दी के पृष्ठ 152 पर पाद टिप्पणी = 'पृथिवी का अर्थ जल सहित पृथिवी है। अतः पृथिवी के आगे 'जल' न होकर 'द्यौ' होना चाहिये। वह वैसा ही कर दिया गया है और आकाश के स्थान में 'अन्तरिक्ष' होना चाहिये, वह भी वैसा कर दिया गया है। इसकी पुष्टि में बृहदारण्कोपनिषद् अध्याय 3 ब्राह्मण 9 का एक पाठ देते हैं।

समीक्षा – स्वामी वेदानन्द का फुट नोट बिल्कुल गलत और अनुचित है। यदि पृथिवी का अर्थ जल सहित हो तो क्या जल केवल पृथिवी पर ही है ? आकाश में भी तो समुद्र है। ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 190 मन्त्र 2 में पृथिवी पर जल को 'समुद्र' और आकाश के सागर को 'अर्णव' कहा है। इसी आकाशीय अर्णव अर्थात् समुद्र से वर्षा होती है। श्रीमान् जी ! जल की सृष्टि (रचना) पृथिवी से पहले हुई है। जब पृथिवी रची ही नहीं गई थी तो जल किसके साथ था ? इसलिये आपका यह कहना कि 'पृथिवी का अर्थ जल सहित पृथिवी है' सर्वथा ही गलत है 'जल' भी वसुओं में से एक वसु है।

आप ने जो बृहदारण्यक का प्रमाण दिया है वह शतपथ ब्राह्मण काण्ड 14 प्रपाठक 16 में ज्यों का त्यों है, क्योंकि बृहदारण्यकोपनिषद् शतपथ काण्ड 14 का ही भाग है। ऋषि दयानन्द को यह मालूम था कि आठ वसुओं में 'द्यौ' भी एक

वसु है। इसीलिये तो ऋषि ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका वेदविषय विचार में उपरोक्त शतपथ का प्रमाण देकर आठ वसुओं में 'द्यौ' भी लिखा है। अब विचारणीय है कि ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में 'द्यौ' के स्थान में 'जल' क्यों लिखा? देखिये 'द्यौ' के अनेक अर्थ हैं जैसे – वर्षा, जल, अन्तरिक्ष, सूर्य, प्रकाशयुक्त पदार्थ, स्वर्ग अर्थात् सुख, प्रकाशरूप लोक, विद्युत, दिन, आग, सूर्यमण्डल तथा अन्य अनेक भी 'द्यौ' के अर्थ हैं। ऋषि ने समझा कि लोग इन अर्थों के झमेले में पड़ कर उलझ जायेंगे। इसी झमेले से बचाने के लिये 'द्यौ' का जो अर्थ वसुओं में है वो 'जल' लिख दिया और सबको मालूम होवे कि सत्यार्थप्रकाश ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि तक के लगभग तीन हजार संस्कृत ग्रन्थों का साररूप सरल हिन्दी अनुवाद है। इसीलिये संस्कृत के शब्द 'द्यौ' और 'अन्तरिक्ष' का सरल हिन्दी अनुवाद 'जल' और 'आकाश' सत्यार्थप्रकाश में दे दिया। इससे वेदानन्दी की टिप्पणी अण्ड बण्ड पाखण्ड और बिल्कुल ही गलत है।

उपरोक्त विवरण उदयाचल के चौथे पाठ 'भ्रष्टीकरणकर्त्ता श्रीमानों का शुभ परिचय' में प्रमाण सहित विस्तारपूर्वक दिया है। वहां भी अवश्य देखें।

(28) वेदानन्दी के पृष्ठ 168 पर फुट नोट = 'अपनी स्त्री मैत्रेयी तथा मैत्रेयी के स्थान में 'उद्दालक' पाठ चाहिये।' ताम्रपत्रानुसारी (पृष्ठ 131–132) में तो 'मैत्रेयी' हटाकर 'उद्दालक' घुसेड़ ही दिया है।

समीक्षा – स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ' ने समझा होगा कि ऋषि दयानन्द तो मर गया। वह तो पूछने आयेगा नहीं। पर स्वामी जी महाराज ! ऋषि पर आस्था रखने वाले तो अब भी बचे खुचे हैं उनसे तो निबटना ही होगा।

आपने मैत्रेयी के स्थान में उद्दालक पलट देने में कोई कारण

नहीं बताया। पर शायद यही विचार होगा कि उद्दालक प्रश्न करने वाला है तो उत्तर उसी को सम्बोधन कर दिया जाना चाहिये, पर यह तो उसी समय होता है जब पूछने वाला एक ही हो और उत्तर सुनने वाला भी एक ही हो। जहां हजारों में से एक ने प्रश्न पूछा और उस प्रश्न का उत्तर सुनने की सबकी इच्छा है तो किसी को भी सम्बोधन कर उत्तर दिया जा सकता है। यहां भी महाराज जनक वैदेह के अश्वमेध यज्ञ में हजारों श्रोता उपस्थित थे। अश्वल, आर्त्तभाग, भुज्यु, उषस्त, कहोल आदि ऋत्विजों के प्रश्न करने के बाद गार्गी ने भी बहुत प्रश्न्न किये। याज्ञवल्क्य ने सबके उत्तर दिये। गार्गी प्रश्न पर प्रश्न करती जा रही थी। उसे रुकते न देख याज्ञवल्क्य झिड़ककर बोले गार्गी बहुत बढ़ कर मत पूछ। प्रश्न पर प्रश्न पूछने से तेरा सिर फट जायेगा। गार्गी बेचारी चुप हो गई। इसके बाद उद्दालक आगे आये और एक कथानक कहकर उसी गार्गी वाले प्रश्न को पूछ कर कहा कि जानते हो तो बताओ, नहीं तो तुम्हारा सिर फट जायेगा। याज्ञवल्क्य को उत्तर देते हुए ध्यान आया कि गार्गी ने भी तो यही प्रश्न पूछा था। अतः गार्गी को ही सम्बोधन कर उत्तर देना न्याय है। ऐसा ध्यान आते ही गार्गी को अभिमुख हो उत्तर देना आरम्भ कर दिया। इसलिये याज्ञवल्क्य ने गार्गी के साथ में उपस्थित मैत्रेयी को सम्बोधन कर उत्तर दे दिया। इसी प्रकरण के आरम्भ के मन्त्र (बृहदा॰ 3 – 7 – 2) में उद्दालक को चार बार 'गौतम' करके सम्बोधन किया है उद्दालक करके नहीं। फिर आप उद्दालक किस आधार से पलटने की बात कहेंगे। अरे व्याकरणाचार्यो, सोलह सतरह भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डितो ! कभी शतपथ ब्राह्मण के दर्शन भी कर लिये होते तो अच्छा होता।

(29) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'प्रश्न – किसी देशभाषा में वेदों का प्रकाश न करके संस्कृत में क्यों किया?

उत्तर–जो किसी देश भाषा में प्रकाश करता तो ईश्वर पक्षपाती हो जाता, इसलिये संस्कृत ही में प्रकाश किया जो किसी देश की भाषा नहीं।'

उपरोक्त ऋषि पाठ पर वेदानन्दी पृष्ठ 175 पर फुट नोट = 'सृष्टि के आरम्भ में देश भेद कल्पना तथा भाषा भेद था ही नहीं।'

समीक्षा :– परमात्मा सर्वज्ञ होने से आगामी भविष्य में होने वाले देश भेद तथा भाषा भेद सृष्टि के आरम्भ में ही जानता है। अतः वेदानन्द का आक्षेप निर्मूल है।



(13) अष्टम समुल्लास के भ्रष्टीकरण

अष्टम समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1) वेदानन्दी में	= 202	(2) ताम्रपत्रानुसारी में	= 80
(3) झज्जरी में	= 198	(4) अजमेरी में	= 234
(5) भगवती में	= 236	(6) सिद्धान्ती में	= 202

भाण्डाफोड़क कहता है :–

सच्चाई छुप नहीं सकती कभी झूठे असूलों से।
खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से।।

भ्रष्टीकरणकर्त्ता बकते हैं :–

सच्चाई छुप भी सकती है अगर आपस में मेल हो।
खुशबू आ भी सकती है अगर कागज में तेल हो।।

भाण्डाफोड़क कहता है :–

सच्चाई निकल आयेगी जब मेल टूट जायेगा।
खुशबू निकल जायेगी जब तेल सूख जायेगा।।

पाठक वृन्द ! आओ देखें कि ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता सच्चाई को छुपाने में कहां तक कामयाब़ होते हैं और हम इनके कागजों के तेल को सुखाने में कहां तक सफल होते हैं।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = 'परमेश्वर ने अपने सामर्थ्य से कारण रूप से कार्य रूप कर दिया।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = 'परमेश्वर ने अपनी महिमा = सामर्थ्य से कारण रूप से कार्य रूप कर दिया।'

समीक्षा – दैवकरणि ने महिमा = सामर्थ्य लिखकर 'महिमा' का अर्थ 'सामर्थ्य' लिखकर अपनी शब्दार्थ योग्यता का परिचय दे दिया कि यह महाभूत निरक्षर भट्टाचार्य है, व्याकरणाचार्य

नहीं है। श्रीमान् जी अपनी अयोग्यता को ऋषि दयानन्द के सिर नहीं मण्ढ़ सकते। आपके कागजों का तेल सूख गया है। उपरोक्त दोनों शब्दों के सही अर्थ देखिये – महिमा = महानता, महत्व, गौरव, बड़प्पन। सामर्थ्य = कर सकने की योग्यता, क्षमता, शक्ति।।

(2) ऋषि पाठ = क्या प्रकृति परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ?

भगवती में पाठ = क्या प्रकृति को परमेश्वर ने उत्पन्न नहीं की ?

समीक्षा – श्रीमान् जी ! यदि ऋषि वाक्य में 'की' को 'किया' कर देते तो आपकी घुसपैठ छुप सकती थी। आपने ऋषि वाक्य में 'को' घुसेड़ कर अपनी पोल को और भी पोला कर लिया। अब खुली खुलाई पोल को और अधिक खोलना व्यर्थ है।

(3) ऋषि पाठ = 'परस्पर मित्रतायुक्त।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती पाठ = 'आपस में परस्पर मित्रतायुक्त।'

समीक्षा – 'परस्पर' का अर्थ 'आपस में' ही होता है। फिर दो बार देकर पुनरुक्तदोष क्यों किया। इनके वाक्य का अर्थ सूंघिये = 'आपस में आपस में' बदबूदार है।

(4) ऋषि पाठ = जब कोई वस्तु बनाया जाता है, तब जिन जिन साधनों से अर्थात् ज्ञान, दर्शन, बल, हाथ और नाना प्रकार के साधन साधारण कारण। दण्ड, चक्र आदि सामान्य निमित्त।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'साधन' के स्थान पर 'औजार' लिख दिया।

समीक्षा – भाई जी! यदि ऋषि के 'साधन' का अर्थ 'औजार' होता तो बाद में 'दण्ड, चक्रादि' औजारों के नाम न लिखते। औजार को अंग्रेजी में 'टूल' कहते हैं और मूर्ख को फूल कहते हैं। दैवकरणि टूल से फूल बन गये।

(5) ऋषि पाठ = 'क्योंकि प्रलय में जगत प्रसिद्ध (प्रकट) नहीं था और सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से जब तक दूसरी बार सृष्टि न होगी तब तक भी जगत का कारण सूक्ष्म होकर अप्रसिद्ध (अप्रकट) रहता है।'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ऋषि वाक्य के 'क्योंकि' के बाद 'सृष्टि की आदि अर्थात्' ये चार शब्द मिलाकर गुड़ गोबर कर दिया। ऋषि ने उपरोक्त में लिखा है, "सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के आरम्भ से।" जब सृष्टि के अन्त में प्रलय आरम्भ होता है तो सृष्टि की आदि में सृष्टि का आरम्भ होता है जैसे दिन की आदि में सूरज निकलने पर दिन का आरम्भ। इन्होंने तो ऐसे बना दिया जैसे दिन के आदि अर्थात् रात में। जब दिन का आदि (आरम्भ) हो गया तब रात तो खतम हो गई। इसी प्रकार जब सृष्टि की आदि (आरम्भ) हो गई तब प्रलय तो खतम हो गई। इसीलिये 'सृष्टि की आदि अर्थात् प्रलय में' लिखना मूर्खतम का ही कार्य है।

(6) ऋषि पाठ = 'प्रश्न–जगत के बनाने में परमेश्वर का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर – नहीं बनाने में क्या प्रयोजन है ?

प्रश्न – जो न बनाता तो आनन्द में बना रहता।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में अन्तिम प्रश्न को लिखा – 'जो न बनाता तो आनन्द में बैठा रहता।'

समीक्षा – इनसे कोई पूछे कि जो परमेश्वर सर्वव्यापक है वह बैठेगा कैसे ? तो तेरी भी चुप मेरी भी चुप। इन भ्रष्टों के अनुसार यदि परमेश्वर बैठता है तो खड़ा भी रहता होगा और दौड़ भी लगाता होगा। सर्वव्यापक ब्रह्म को एक देशी बनाना

उसका ऐसे ही महा अपमान करना है जैसे एक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा को एक छोटी सी झोंपड़ी का मालिक कहकर उसका महा अपमान करना है।

(7) ऋषि पाठ = 'यह तुम्हारा प्रश्न लड़के के समान है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = यह तुम्हारा प्रश्न अविद्या के = लड़के के समान है।

समीक्षा – 'अविद्या' का अर्थ 'लड़के' किसी अलौकिक डिक्शनरि में देख के ही लिखा होगा। ऐसी अलौकिक डिक्शनरि विश्व भर में किसी के पास नहीं है, केवल एक दैवकरणि के पास ही है जो शब्दों के अलौकिक अर्थ बतलाती है।

(8) ऋषि पाठ = 'मृगतृष्णिका के जल में स्नान करते।'

अजमेरी और भगवती में 'मृगतृष्णिका' को 'मृगतृष्णि' करके इन्होंने अशुद्ध जल में स्नान कर ही लिया।

(9) अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 149) में ऋषि पाठ 'फोलाद' को 'पोलाद' करके अपने जीवन को पोलाद (खोखला) कर ही लिया।

(10) वेदानन्दी पृष्ठ 186, सिद्धान्ती पृष्ठ 189, ताम्रपत्रानुसारी पृष्ठ 146 पर दो दो जगह 'नित्यता' को 'अनित्यता' करके अर्थ का अनर्थ कर दिया।

(11) ऋषि पाठ = 'प्रश्न–कल्प कल्पान्तर में ईश्वर सृष्टि विलक्षण विलक्षण बनाता है, अथवा ऐकसी ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'कल्पान्तर' के स्थान पर 'कल्पान्त' कर दिया।

समीक्षा – ऋषि का अर्थ = एक सृष्टि और अन्य सृष्टियों में———।

दुष्टात्माओं के पाठ का अर्थ = सृष्टि और सृष्टि के अन्त में ——————।

अरे उल्लू के चरखो! सृष्टि के अन्त में सृष्टि कैसे बनायेगा? जैसे दिन के अन्त में दिन नहीं बना सकता वैसे ही सृष्टि के अन्त में सृष्टि नहीं बना सकता, दिन के अन्त में रात और सृष्टि के अन्त में प्रलय होती है। अतः ऋषि का पाठ ही सार्थक है।

(12) ऋषि पाठ = परमेश्वर जैसे पूर्व कल्प में सूर्य, चन्द्र, विद्युत, पृथिवी, अन्तरिक्ष आदि बनाता था। वैसे ही अब बनाये हैं और आगे भी वैसे ही बनावेगा।

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'आदि' का आदित्य (सूर्य) बना दिया, जबकि इसी लाईन में पाँच शब्द पहले 'सूर्य' आ चुका है। अब विरजानन्द दैवकरणि के लिये दो सूर्य हो गये – एक दिन के लिये और दूसरा रात के लिये। इन्होंने चार सत्यार्थप्रकाश भ्रष्ट करके विश्व के सब सूर्य बुझा दिये और अपनी कोठड़ी में दो–दो सूर्य रखता है। कमाल हो गया। धोती फटकर रुमाल हो गया!

(13) ऋषि पाठ = 'प्रथम समुल्लास में लिख भी आये हैं'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'प्रथम अध्याय में लिख भी आये हैं।'

समीक्षा – महर्षि दयानन्द ने हिन्दी के माध्यम से जितने ग्रन्थ रचे हैं, उनमें से किसी में भी अध्याय नहीं हैं। सत्यार्थप्रकाश में चौदह विभाग हैं। सब विभागों के नाम समुल्लास हैं। विरजानन्द दैवकरणि ने 'समुल्लास' के स्थान पर 'अध्याय' लिखकर अपनी दूषित मनोवृत्ति की बदबू फैलाई है। सूंघते रहिये, सूंघते रहिये।

(14) ऋषि पाठ = 'देखो ! शरीर में किस प्रकार की ज्ञानपूर्वक सृष्टि रची है कि जिसको विद्वान् लोग देखकर आश्चर्य मानते हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'मानते' की जगह 'रह जाते' कर दिया।

समीक्षा – दैवकरणि जी, यदि आप अपने 'रह जाते' से पूर्व 'चकित' शब्द भी लिख देते तो शायद आपकी चोरी पकड़ी न जाती। अब तो आप सरे बाजार रंगे हाथों पकड़े गये जी महाराज!

(15) ऋषि पाठ = जब उनसे कोई पूछेगा कि शेष और बैल किसका बच्चा है ?

अजमेरी में इस अक्ल के पूरे दैवकरणि ने 'बच्चा' के स्थान पर 'लड़का' लिख दिया।

समीक्षा – दैवकरणि के घर में शेष (सांप) और बैल भी किसी का लड़का अवश्य होगा अन्यथा ऐसे महापुरुष झूठ थोड़े ही लिखते हैं। धन्य हैं वे माता पिता जिनके यहां दैवकरणि से सत्यवादी हरीश्चन्द्र के अवतार हुए हैं।

(16) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 156) में 'आदित्य' का 'आदि' बना दिया। भगवती पृष्ठ 150 पर 'आदि' का 'आदित्य' बनाया था। लगता है पागल हो गया !

(17) वेदानन्दी, सिद्धान्ती, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में यजुर्वेद वचन में पाठ भेद कर दिया। ऋषि ने यह वचन प्रसंगानुसार थोड़ा बदलकर लिखा था, परन्तु इन महाशयों ने ऋषि के ऋषित्व अधिकार को स्वीकार नहीं किया।

(18) ऋषि पाठ = 'सूर्य पृथिवी से लाख गुना बड़ा है।'

वेदानन्दी, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'लाख' का 'लाखों' करके महर्षि दयानन्द सरस्वती

के ज्योतिष् ज्ञान और ब्रह्मज्ञान को ललकारा है।

(19) वेदानन्दी पृष्ठ 179 की टिप्पणी में 'अनादि' का लक्षण अशुद्ध है। देखो 'सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा' पृष्ठ 116 पर।

(20) वेदानन्दी पृष्ठ 117, सिद्धान्ती पृष्ठ 188 पर टिप्पणी अनुसार न्यायदर्शन 4–1 सूत्र का अर्थ नहीं समझे, घुसेड़ दिया। सूत्र का वह अर्थ ही नहीं जिसके लिये घुसेड़ा है। देखो, आचार्य राजेन्द्र नाथ शास्त्री (स्वामी सच्चिदानंद योगी) द्वारा लिखित सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा पृष्ठ 117 से।

(21) वेदानन्दी के पृष्ठ 190 की टिप्पणी गलत है। देखो उपरोक्त संख्या 20 में लिखी पुस्तक पृष्ठ 60 से 93 तक।

(22) वेदानन्दी के पृष्ठ 199 पर टिप्पणी 'ग्रन्थकार की शैली के अनुसार यहां———लिखा गया।' गलत है। देखो, उपरोक्त संख्या 20 की पुस्तक में पृष्ठ 140 पर।

पाठकगण ! देखा आपने, इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं के कागजों का तेल सूख कर इन की खुशबू निकल गई। इनका मेल टूट गया और सच्चाई निकल आई कि ये सरासर झूठ बोलते हैं कि इन्होंने महर्षि दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रक्खा है।



(14) नवम समुल्लास के भ्रष्टीकरण

नवम समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

(1)	वेदानन्दी में	= 178	(2)	ताम्रपत्रानुसारी में	= 73
(3)	झज्जरी में	= 209	(4)	अजमेरी में	= 244
(5)	भगवती में	= 249	(6)	सिद्धान्ती में	= 180

लगे रहो लगे रहो मत हो डावांडोल।
उखड़ों की कौड़ी नहीं जमों के लाखों मोल।।

यह वचन शुभ कर्मों में लगे रहने के लिये कहा है। यदि मनुष्य किसी कारण से अशुभ कर्मों में लग जावे तो उसे छोड़ देने चाहियें। अतः भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं को अपना यह अशुभ कार्य छोड़ देना चाहिये। इनके भ्रष्टीकरणों के कुछ नमूने देखिये :–

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में महर्षि दयानन्द का पाठ = 'यह उपनिषद् का वचन है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'वचन' के स्थान पर 'श्लोक' करके यह सिद्ध कर दिया कि इन आचार्य की डिग्री रखने वालों को मन्त्र और श्लोक का अन्तर मालूम नहीं। ये यदि वेद के मन्त्रों को भी श्लोक कहने लग जायें तो कोई आश्चर्य नहीं क्योंकि इन्हें ज्ञान ही नहीं कि मन्त्र क्या होता है और श्लोक क्या होता है जैसे कोई हलवे को खीर बतावे तो उसे न खीर का ज्ञान न हलवे का। देखिये उपनिषदों के वचनों को मन्त्र, प्रवाक और कण्डिका आदि कहते हैं, श्लोक नहीं। अतः ऐसे परिवर्तन अशुभ कर्म होने से छोड़ देने चाहियें।

(2) ऋषि पाठ – 'जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे, तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव <u>निश्शेष</u> हो जाने चाहियें।

प्रश्न – ईश्वर जितने जीव मुक्त होते हैं, उतने नये उत्पन्न करके संसार में रख देता है, इसलिये निश्शेष नहीं होते।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त दोनों निश्शेष की जगह 'कमती' शब्द लिखकर अपनी कमती बुद्धि का परिचय दे दिया। भले आदमियो! ऋषि ने 'अर्थात्' लगा कर जिस शब्द का अर्थ 'निश्शेष' दिया है उस 'उच्छेद' शब्द का अर्थ तो देख लिया होता। क्या 'उच्छेद' का अर्थ 'कमती' हो सकता है? कभी नहीं। देखिये 'उच्छेद' का अर्थ है – सर्वनाश, सर्वसमाप्ति और 'निश्शेष' का अर्थ है – जो शेष न रहे। इसीलिये उच्छेद अर्थात् निश्शेष लिखा। अतः तुम्हारा निश्शेष के स्थान पर 'कमती' लिखना पागलों का गीत नहीं तो और क्या है?

दूसरे जब मुक्ति से लौटकर कोई भी जीव वापस इस संसार में न आवे और तुम्हारे कमती जीवों में से मुक्त हो हो कर जाते रहें तो तुम्हारे कमती जीव भी एक दिन उच्छेद अर्थात् निश्शेष अर्थात् सर्वसमाप्त हो जायेंगे। देखो मैंने अर्थात् पर अर्थात् लगा दिया। अब तो मान जाओ कि तुम्हारा 'निश्शेष' के स्थान पर 'कमती' लिखना बेहूदापन है।

(3) ऋषि पाठ = 'पांचवाँ –'आनन्दमय कोश' जिसमें प्रीति–प्रसन्नता, न्यून आनन्द, अधिक आनन्द, आनन्द और आधार कारणरूप प्रकृति है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'आधार' की जगह 'साधारण' लिख दिया। यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे किसी ने गधे वाले से पूछा, "अरे भाई गधे वाले! कहां जा रहे हो?" गधे वाले ने उत्तर दिया, "इतना अच्छा गधा सात सौ रुपये में बेचूंगा लेना हो तो लो वरना ऐश करो।" ऋषि दयानन्द तो कह रहे हैं कि आनन्दमय कोश का आधार प्रकृति है और

दयानन्द का सुधारक दैवकरणि बक रहा है कि प्रकृति साधारण कारण है। अरे चुड़ैल! ब्रह्मा से लेकर जैमिनि मुनि और महर्षि दयानन्द तक लगभग तीन हजार ग्रन्थों के रचयिता तो कह रहे हैं कि प्रकृति जगत का उपादान कारण है और तुम प्रकृति को जगत का साधारण कारण बता कर उपरोक्त सबका गुरु बनना चाहते हो। नहीं! नहीं!! नहीं!!! तुम जैसे निखट्टू को किसी का भी गुरु नहीं बनने दूंगा। सारी उम्र तुम्हारे खिलाफ लिखता रहूंगा।

लिखूंगा प्यारे लिखूंगा।
खिलाफ तुम्हारे लिखूंगा।।
और जी लगाकर लिखूंगा।
जब जी कहेगा खिचूंगा।।
तो कौन कहेगा लिखूंगा।
मैं मरा मरा भी लिखूंगा।।

(4) ऋषि का पाठ = 'वाम मार्गी श्रीपुर, शैव कैलाश, वैष्णव वैकुण्ठ और गोकुलिये गोसाईं गोलोक आदि में जाकर उत्तम स्त्री, अन्न, पान, वस्त्र, स्थान आदि को प्राप्त होकर आनन्द में रहने को मुक्ति मानते हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त पाठ से 'वैष्णव' उड़ा कर वैकुण्ठ लोक को अनाथ और वहां की उत्तम स्त्रियों को विधवा बना दिया। वहां के उत्तम पदार्थों को अब कौन प्राप्त होगा? शायद विरजानन्द दैवकरणि ने वैकुण्ठ लोक को अपने लिये रिजर्व (आरक्षित) करवा लिया है।

(5) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 170) में एक प्रश्न से पूर्व 'वादी' और इसी के उत्तर के पूर्व 'प्रतिवादी' बढ़ाकर अपनी वादी प्रतिवादी की अयोग्यता दिखा दी है।

(6) ऋषि पाठ = विना पूर्वसञ्चित पुण्य के राज्य, धनाढ्यता और बुद्धि उसको क्यों दी ?

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, झज्जरी, अजमेरी और भगवती वाले सभी महारथियों ने उपरोक्त 'बुद्धि' के स्थान में 'निर्बुद्धिता' लिखकर यह बता दिया कि पूर्व सञ्चित पुण्य का फल 'निर्बुद्धिता' है। फिर तो पाप का फल 'बुद्धिता' भी हो गया। वाह रे लबाड़ियो, तुम्हें ऐसा लिखते हुए शर्म नहीं आई? क्या सिद्धान्त की ऐसी खुली हत्या हस्तलिखित मूलप्रति में हो सकती है? कभी नहीं! कभी नहीं!! कभी नहीं!!!

(7) ऋषि पाठ = 'परमात्मा जितना काम करना है उतना करता है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ = परमात्मा जितना कम करना है उतना कम करता है।'

समीक्षा :– वाह रे पंजाबी मुण्डे! पंजाबी दी बारिस कर दित्ती क्योंकि पंजाबी भाषा में 'काम' को 'कम' कहते हैं।

(8) ऋषि पाठ = 'जब वह दूध पीना चाहता है तो उसके साथ मिश्री आदि मिलाकर यथेष्ठ मिलता है।'

अजमेरी पृष्ठ 262 पर उपरोक्त 'मिलाकर' के स्थान पर 'मिलकर' लिखकर यह बता दिया की 'मिश्री' भी मनुष्यों की तरह जिन्दा प्राणी है। इसीलिये तो मिश्री बर्तन से निकलकर खुद ही दूध में मिल जाती है।

(9) ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 171) "प्रश्न – किस प्रकार जाता आता है? उत्तर" इतना पाठ मूल में बढ़ाकर अपनी बढ़ी हुई नाक मूल (जड़) से कटवा ली।'

(10) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 175) श्लोक मण्डल के पांचवें श्लोक की आर्य भाषा के आरम्भ के "जो अत्यन्त रजोगुणी

हैं वे" ये पांच शब्द खाकर अत्यन्त रजोगुणी नट बने फिरते हैं।

(11) वेदानन्दी पृष्ठ 200 पर "अविद्या का लक्षण—अविद्या के निरूपण का स्थान यह नहीं है।" यह फुटनोट सर्वथा ही गलत है।

समुल्लास के प्रारम्भ में ही यजुर्वेद 40–14 मन्त्र दिया है। इस मन्त्र में दो बार 'विद्या' शब्द और दो बार 'अविद्या' शब्द आया है। श्लेष अलंकार सिखाने के लिये अनेकार्थ शब्द का प्रयोग किया है। पहले 'अविद्या' शब्द का अर्थ = अनित्य को नित्य, अपवित्र को पवित्र, दुःख को सुख और अनात्मा को आत्मा अर्थात् जड़ को चेतन समझना अर्थात् विपरीत ज्ञान।। पहले विद्या शब्द का अर्थ = अनित्य को अनित्य तथा नित्य को नित्य, अपवित्र को अपवित्र तथा पवित्र को पवित्र, दुःख को दुःख तथा सुख को सुख और जड़ को जड़ तथा चेतन को चेतन समझना अर्थात् यथार्थज्ञान।

मन्त्र में आये दूसरे 'अविद्या' शब्द का अर्थ =

(1) कर्म (इन्द्रियों द्वारा किये जाने वाले बाहर के शुद्ध कर्म),

(2) उपासना (मन द्वारा की जाने वाली भीतर की क्रिया)।

मन्त्र में आये दूसरे 'विद्या' शब्द का अर्थ = शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना द्वारा प्राप्त ब्रह्मज्ञान।

ऋषि ने इस मन्त्र के क्रम से ही लिखा है। अतः ऋषि का पाठ यथास्थान ही ठीक है। वेदानन्दी का फुटनोट कोरी बकवास है।

(12) वेदानन्दी के पृष्ठ 205 पर फुटनोट =

(1) वेदान्त 4–4–10 का अर्थ सूत्र के आशय के विपरीत है।

(2) बन्धनी में दिया पाठ अनपेक्षित है। इन्द्रियों और प्राणों की मुक्ति दशा में विद्यमानता कोई भी नहीं मानता।

(3) सूत्रगत 'द्वादशाहवद्' पद का अर्थ रह गया है।

समीक्षा :–

(1) ऋषि ने अर्थापन्न अर्थ ही दिया है। जरा सिर खुजलाइये।

(2) यहां इन्द्रियों और प्राणों की मुक्ति दशा में विद्यमानता का अर्थ जीव के अभौतिक सूक्ष्म शरीर की विद्यमानता से है। देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास 9 में।

(3) ऋषि लोग जितना देना अभीष्ट होता है, उतना ही देते हैं। यहां 'द्वादशाहवद्' पद का अर्थ अभीष्ट नहीं है।

(13) ऋषि पाठ = शरीर अर्थात् जीव, पंचकोशों का विवेचन करें।

समीक्षा :– प्रायः सभी सत्यार्थप्रकाशों में उपरोक्त 'जीव' के बाद लगे कोम्मा को हटा रक्खा है, जिससे लोग अपनी कल्पना अनुसार भिन्न भिन्न अर्थ करते हैं। कोम्मा लगा रहने से अर्थ होगा 'शरीर अर्थात् जीव और पंचकोशों का विवेचन करें, पृथक् पृथक् जानें।

प्रश्न – उपरोक्त ऋषि पाठ में 'शरीर अर्थात् जीव' लिखा है। क्या जीव भी किसी का शरीर है?

उत्तर – हां है। जैसे पांचों कोष स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर इन तीनों में आ जाते हैं, वैसे जीवात्मा परमात्मा का शरीर है अर्थात् जैसे जीव शरीर में रहता है वैसे परमात्मा जीव से सूक्ष्म होने से जीव में रहता है। देखो बृहदारण्यकोपनिषद 3–7–22 में लिखा है – 'जीवात्मा जिस परमात्मा का शरीर है।'

(14) ऋषि पाठ = 'चौथा तुरीय शरीर।'

वेदानन्दी पृष्ठ 210 पर टिप्पणी = 'यहां 'शरीर' के स्थान में 'अवस्था' शब्द चाहिये।'

समीक्षा :– यहां 'शरीर' के स्थान में 'अवस्था' शब्द क्यों चाहिये! इसके लिये कोई कारण नहीं बताया। महर्षि दयानन्द को तीन बार

कापी देखने पर भी यह दिखाई नहीं दिया कि यहां 'शरीर' के स्थान में 'अवस्था' शब्द चाहिये? माण्डूक्योपनिषद् में जागृतावस्था स्थूल शरीर की, स्वप्नावस्था सूक्ष्म शरीर की तथा सुषुप्ति अवस्था कारण शरीर की बताकर कहा कि जीवात्मा के शरीर के साथ संयोग से ही ये अवस्थायें प्रकट होती हैं अन्यथा नहीं। फिर आगे मन्त्र 7 में उपरोक्त तीन अवस्थाओं के बाद किसी भी अवस्था से इनकार किया है क्योंकि समाधि में जीवात्मा का संयोग किसी शरीर से न होकर केवल ब्रह्म से होता है और उस समय जीव अपने स्वाभाविक गुण अर्थात् अभौतिक शरीर (संकल्पमय शरीर, विचारमय शरीर) से ब्रह्मानन्द में मग्न है। इसी को चौथा तुरीय शरीर (समाधि संस्कारजन्य शुद्ध शरीर) ऋषि ने कहा है और अगले ही वाक्य में कहा, "इन सब कोश अवस्थाओं से जीव पृथक् है।" जब अवस्थाओं से जीव पृथक् है तो तुरीय अवस्था जीव के साथ संयुक्त करना अपने अज्ञानरूपी ढ़ोल की पोल खोलना है।

(15) ऋषि पाठ = दूसरा साधन 'वैराग्य' अर्थात् जो विवेक से सत्य असत्य को जाना हो उसमें से सत्याचरण का ग्रहण और असत्याचरण का त्याग करना विवेक है। जो पृथिवी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त पदार्थों को गुण, कर्म स्वभाव से जानकर उसकी आज्ञापालन और उपासना में तत्पर होना, उससे विरूद्ध न चलना, सृष्टि से उपकार लेना विवेक कहाता है।

वेदानन्दी पृष्ठ 210–211 का फुटनोट = 'यहां दोनों स्थानों में 'विवेक' छपा है। प्रकरणानुसार 'वैराग्य' चाहिये। हमने वैसा कर दिया है।'

समीक्षा :– जैसे 'न्याय और दया का नाम मात्र ही भेद है। दोनों का अर्थ एक ही होता है (सत्यार्थप्रकाश 7 समुल्लास)' वैसे 'वैराग्य' और 'विवेक' का नाम मात्र ही भेद है। अतः वैराग्य विवेक है। ऋषि पाठ ही ठीक है। विवेक के चार

प्रकार होते हैं :–

(1) सत्य असत्य, धर्म अधर्म, कर्त्तव्य अकर्त्तव्य का निश्चय करना।

(2) जीव को पांच कोशों और तीन अवस्थाओं से भिन्न जानना।

(3) योगदर्शन 1–15 के अनुसार अपर वैराग्य प्राप्त करना।

(4) योग दर्शन 1–16 के अनुसार परवैराग्य प्राप्त करना।

विवेक की इन चारों अवस्थाओं को वैराग्य कहें या विवेक कहें एक ही बात है। इसके लिये प्रमाण देखियेः- योगदर्शन 1–16 के व्यास भाष्य में कहा है, "ज्ञान (विवेक) की पराकाष्ठा ही वैराग्य है।"

इसलिये कार्य कारण में अभेद अभिप्राय से ऋषि ने वैराग्य को यहां विवेक कहा है। वैराग्य विवेक की अभिन्नता को बलपूर्वक कहने के लिये ऋषि ने वैराग्य को ही विवेक बताया है।

सिद्धान्ती जी ने तो विवेक हटाकर वैराग्य कर ही दिया है। उन्होंने प्रायः वेदानन्द जी को ही प्रकाशन में आधार रक्खा है। यह ठीक नहीं। आधार द्वितीय संस्करण ही हो सकता है, अन्य नहीं। इसी बात को पण्डित भगवद्दत जी ने भी बड़ी सरलता से मानो स्वामी वेदानन्द के पाण्डित्य पर हंसते हुए अपनी टिप्पणी में लिख दिया है –

टिप्पणी : वस्तुतः स्वामी (दयानन्द) जी ने वैराग्य और विवेक में भेद नहीं किया है। सन्तों ने भी कहा है –

ज्ञान हुआ तब जानिये जब कुकर्म छूटै।
दादू भाण्डा भ्रम का चौड़े में फूटै।।

देशभक्तों ने भी कहा है –

ऐ मेरे वतन के लोगो मानों यह बात हमारी।

इतबार करो सब मिलकर वैराग्य विवेक इकसारी।।

(16) ऋषि पाठ = 'इसलिये पूर्व जन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

उपरोक्त पर वेदानन्दी पृष्ठ 216 पर टिप्पणी – 'तथा पूर्व यह शब्द नहीं होने चाहियें।'

समीक्षा :– "जब पाप बढ़ जाता है, पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पश्वादि नीच शरीर में जाता है। जब अधिक पाप का फल पश्वादि शरीर में भोग लिया है पुनः पाप पुण्य के तुल्य रहने से मनुष्य शरीर में आता है।" सत्यार्थप्रकाश नवम समुल्लास के इस ऋषि सन्दर्भ से सिद्ध है कि उपरोक्त पश्वादि जन्म के बाद होने वाला मनुष्य जन्म इन (पश्वादि) के जन्म से पहले वाले मनुष्य जन्म में किये कर्मों का फल है। अतः पूर्व जन्मों के कर्मानुसार भी भविष्यत् जन्म होते हैं। यह ऐसे होता है जैसे एक मनुष्य के हजार कर्म सञ्चित हैं। इनमें चार सौ कर्म तो पैरिस में जन्म लेकर रबड़ की सड़कों पर कार में चलने के हैं, तीन सौ कर्म भारत में बनाई जा रही सड़कों पर रोड़े फोड़ने के हैं, दौ सौ कर्म इग्लैंड की कल्बों में डांस करने के हैं और सौ कर्म उत्तरकाशी के पहाड़ों में योगाभ्यास करने के हैं। अब अगला जन्म वहां होगा जहां के लिये सब से अधिक कर्म हैं अर्थात् अगला मनुष्य जन्म पैरिस में होगा। यदि वह पैरिस के वर्तमान जन्म में सारे ही आठ सौ कर्म करता है और यह सभी कर्म उत्तरकाशी के पहाड़ों में योगाभ्यास करने के हैं तो अब उसके कुल कर्म (1000–400) + 800 = चौदह सौ हो गये। इनमें तीन सौ कर्म सड़क पर रोड़े फोड़ने के, दो सौ नाचने के और नौ सौ कर्म योगाभ्यास

करने के हैं। अब अगला जन्म सब कर्मों से अधिक योगाभ्यास के नौ सौ (आठ सौ वर्तमान तथा एक सौ पूर्व जन्म के) कर्मों के अनुसार उत्तरकाशी के पहाड़ों में होगा। यदि उत्तरकाशी में योगाभ्यास करते करते निर्बीज समाधि सिद्ध योगी हो जाये तो पिछले शेष सभी पांच सौ कर्म ब्रह्मज्ञान में जल कर भस्म हो जायेंगे और वह योगी महाकल्प पर्यन्त के लिये मुक्ति प्राप्त कर लेगा।

स्वामी वेदानन्द के अनुसार 'तथा पूर्व' यह दो शब्द हटाने से केवल वर्तमान जन्म के पुण्य पाप अनुसार ही भविष्यत् जन्म होते हैं जोकि सब वेदशास्त्रों के विरूद्ध अशुद्ध सिद्धान्त है।

(17) ऋषि पाठ = 'जीव कर्मों का साक्षी नहीं, किन्तु कर्त्ता भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है वह ईश्वर साक्षी नहीं।'

उपरोक्त पर सिद्धान्ती में पृष्ठ 208 पर टिप्पणी = "वह ईश्वर साक्षी नहीं" इस वाक्य का अर्थ यह है कि जो जीव कर्मों में लिप्त होता है "वह" जीव है, ईश्वर नहीं है।

समीक्षा :— सिद्धान्ती का अर्थ सर्वथा ही गलत है। सही अर्थ = 'वह ईश्वर साक्षी नहीं' अर्थात् कर्मों का साक्षी ईश्वर कर्मों में लिप्त नहीं होता, यानी कर्मों का फल परमात्मा नहीं भोगता।

(18) सिद्धान्ती पृष्ठ 214 पर टिप्पणी का सार = 'मुक्ति में जाने से पहले जीव के केवल दुष्ट कर्म ही नष्ट होते हैं, शेष साधारण अच्छे कर्म नष्ट नहीं होते। मुक्ति की अवधि पूरी होने पर इन्हीं शेष साधारण अच्छे कर्मों के कारण ही जीव पुनः संसार में जन्म लेता है।'

समीक्षा :—

(1) योग दर्शन 4—30 व्यास भाष्य के अनुसार 'धर्म मेघ समाधि सिद्ध होने पर पाप और पुण्य कर्म समूल नष्ट हो जाते हैं।'

(2) वेदान्त दर्शन 4, 1, 13—14 के अनुसार 'परमात्मा प्राप्त हो जाने पर 'पाप और पुण्य कर्म सब नष्ट हो जाते हैं।'

(3) मुण्डकोपनिषद् 3, 1, 3 के अनुसार 'पाप और पुण्य दोनों छोड़कर मोक्ष प्राप्त करता हैं।

(4) बृहदारण्यकोपनिषद् 4—4—22 में कहा है कि यह ज्ञानी पाप और पुण्य दोनों से तर जाता है।

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट खारी बावली दिल्ली—6 द्वारा प्रकाशित 'दयानन्द शास्त्रार्थ संग्रह' के पृष्ठ 249—250 पर महर्षि दयानन्द ऋग्वेद 1—24—2 मन्त्र के अनुवाद में लिखते हैं, "जगदीश्वर प्राप्त मोक्ष जीवों को पुनः अवधि पर संसार में माता—पिता के दर्शन कराता है।" अर्थात् जिस प्रकार सृष्टि के बाद प्रलय होने का कारण सृष्टि की अवधि समाप्त होना ही है, ठीक इसी प्रकार मुक्ति से लौट कर पुनः संसार में जन्म लेने का कारण मुक्ति की अवधि समाप्त होना ही है। उपरोक्त विवरण से सिद्ध है कि सिद्धान्ती जी की टिप्पणी सर्वांश में गलत है।



(15) दशम समुल्लास के भ्रष्टीकरण

दशम समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या –

(1) वेदानन्दी में = 80 (2) ताम्रपत्रानुसारी में = 57
(3) झज्जरी में = 276 (4) अजमेरी में = 325
(5) भगवती में = 328 (6) सिद्धान्ती में = 80

महाकवि भारवि ने कहा है, "विकार के कारण प्राप्त होने पर भी जिनके मन विकृत नहीं होते वही धीर हैं।",

किसी अन्य कवि ने चौपाई में कहा है –

धीरज धर्म मित्र और नारी।
आपत् काल परीखिये चारी।।

दोहा –

(1) धीरे–धीरे रे मना धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा ऋतु आये फल होय।।
(2) धीरज धरो आगे बढ़ो पूरा हो सब काम।
उस दिन ही फलते नहीं जिस दिन बोते आम।।

दिहाती कहावत है = गादड़ की तौल में बेर कोनीं पाकैं।

(3) बून्द बून्द से घड़ा भर जावै।
विद्या धर्म और धन ज्यों आवै।।

इसलिये आदरणीय पाठकगण ! धैर्य रखिये, धैर्य रखिये। मैं इन कुकर्मियों द्वारा किये सब भ्रष्टीकरण धीरे–धीरे आपकी सेवा में उपस्थित कर दूंगा।

(1) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 177) में दशम समुल्लास के पहले श्लोक मण्डल में एक श्लोक नया

घुसेड़ दिया तथा एक अन्य श्लोक में कुछ मिलावट और कुछ हटावट से पाठ भेद करके महर्षि मनु और दयानन्द दोनों का सुधार कर दिया। इसी प्रकार अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 180) में वेद मन्त्र में पाठ भेद करके परमात्मा का भी सुधार कर दिया।

(2) ऋषि पाठ = 'केशान्तकर्म क्षौर मुन्डन।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 178) में पाठ = 'केशान्तकर्म और मुण्डन।'

समीक्षा :– ऋषि पाठ का अर्थ है 'केशान्त कर्म अर्थात् क्षौर मुण्डन।' 'क्षौर' का अर्थ है उस्तरे से सिर के बाल मूंडना। और भ्रष्टों के पाठ का अर्थ है केशान्त कर्म और मुण्डन = बाल मूंडने का कार्य और मूंडना। इनसे कोई पूछे कि भाई जी बाल काटने के बाद और क्या मूंडना ?

उत्तर – और भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं की नाक मूंडना। ऋषि ने एक अर्थ के दो शब्द बताकर कुछ योग्यता बढ़ाई थी। इन्होंने इस बढ़ी हुई योग्यता को दिल्ली के गन्दे नाले में फैंक दिया।

(3) ऋषि पाठ = 'जो शीत प्रधान देश हो तो चाहे जितने केश रक्खे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'जो शीत प्रधान देश हो तो चाहे पंच केश रक्खे।'

समीक्षा – ऋषि के पाठ का अर्थ है कि चाहे सारे केश रक्खे चाहे कुछ थोड़े रक्खे। भ्रष्टों का अर्थ है कि चाहे पंचकेश रक्खे, पर पंच केश से कम न रक्खे। ऐसी अनार्ष कल्पनाओं से ही झूठे मतमतान्तर खड़े होते हैं।

(4) ऋषि पाठ = 'जो विद्या नहीं पढ़ा है, वह जैसा काष्ठ का हाथी होता है, वैसा नाममात्र मनुष्य कहाता है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'काष्ठ' की जगह 'लकड़े' शब्द रख दिया। हमने लकड़ी का हाथी तो देखा है पर 'लकड़ा या लकड़े' का हाथी आज तक नहीं देखा है। शायद दैवकरणि की कोठड़ी में 'लकड़ा' का हाथी भी देखने को मिल जाए। चलिये वहीं चलकर देखेंगे कि मिलेगा या नहीं।

(5) उपरोक्त संख्या 2 में ऋषि पाठ को पलट कर वेदानन्दी (पृष्ठ 223), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में लिखा – 'केशान्त कर्म और क्षौर मुण्डन।'

समीक्षा – ऋषि ने तो एक ही कार्य के दो नाम बताये थे, परन्तु इन्होंने बीच में 'और' लगा कर दो बना दिये। एक तो केशान्त कर्म अर्थात् बच्चे के सिर के बाल मूंडना और दूसरा कार्य बच्चे का क्या मूंडना यह तो स्वामी वेदानन्द और इनकी नकल करने वाले सिद्धान्ती जी तथा महाशय दैवकरणि ही बता सकते हैं।

(6) ऋषि पाठ = 'जैसे घोड़ों को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग में चलाता है।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 223), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त 'घोड़ों को' के स्थान में 'घोड़े को' करके बहुवचन का एकवचन बना दिया।

समीक्षा – ऋषि पाठ में 'सारथि' का अर्थ है रथ चलाने वाला। रथ एक घोड़े से कभी चलता नहीं। शायद उपरोक्त तीनों अक़्ल के दुश्मन अपनी बात को सच्ची सिद्ध करने के लिये एक घोड़े से चलने वाला रथ भी बनवा लें।

(7) ऋषि का पाठ = 'उस देश के मनुष्य भूरे नेत्र वाले हैं।'

अजमेरी (पृष्ठ 276) का बदला हुआ पाठ = 'उस देश के मनुष्य भूरे नेत्र होते हैं।'

समीक्षा – यदि मनुष्य ही नेत्र हैं तो ऊपर नीचे दायें बायें आगे और पीछे सब तरफ से देखते होंगे।

(8) ऋषि पाठ = 'जो आर्यावर्त में रहकर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म और आचार भ्रष्ट कहावेगा।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 225) और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त 'धर्म' के स्थान में 'अधर्म' रख दिया।

समीक्षा – धर्म भ्रष्ट तो सर्वमान्य है परन्तु अधर्म भ्रष्ट को मान्यता दिलवाने के लिये इन्हें कोई नई यूनिवर्सीटि ही खोलनी पड़ेगी।

(9) ऋषि पाठ = 'सखरी जो जल आदि में अन्न पकाये जाते हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में से उपरोक्त 'अन्न' शब्द निकालकर यह प्रशन उत्पन्न कर दिया कि जल आदि में क्या पकाये जाते हैं ?

(10) ऋषि पाठ = 'आटा पीसते समय।'

अजमेरी और भगवती में पाठ = 'आटे पीसने समय।'

समीक्षा – आटा हमेशा एकवचन में आता है और 'पीसने' से 'पीसते' अधिक ठीक है। अतः ऋषि का पाठ ही ठीक है। दैवकरणि ने तो व्याकरणाचार्य की डिग्री की मिट्टी पलीत कर रक्खी है।

(11) ऋषि पाठ = 'गाय दूध में अधिक उपकारक होती है।'

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में बदला हुआ पाठ = 'भैसें गाय से दूध में अधिक उपकारक होती है।'

समीक्षा – उदयाचल के पाठ पांच 'सत्यार्थप्रकाश की हस्तलिखित मूलप्रति' की संख्या दश में इसकी समीक्षा विस्तारपूर्वक की गई है। वहां अवश्य देखियेगा। और यहां भी कुछ बताते हैं।

1. यह तो कह सकते हैं कि भैंस का दूध गाय के दूध से माप तोल आदि वजन में अधिक होता है परन्तु उपकार की दृष्टि से गाय का दूध सबसे अधिक उत्तम है। इसी स्थान पर ऋषि ने कहा है, "गाय के दूध घी से जितने बुद्धिवृद्धि से लाभ होते हैं, उतने भैंस के दूध से नहीं। इससे मुख्य उपकारक आर्यों ने गाय को गिना है।"

2. भैंस के दूध से आलस्य और गाय के दूध से चुस्ती व फुर्ती उत्पन्न होती है। इसीलिये भैंस का कटड़ा आलसी और गाय का बछड़ा फुर्तीला होता है।

3. गाय का दूध सतोगुणी, ज्ञान और पहचान शक्ति बढ़ाने वाला होता है जबकि भैंस का दूध तमोगुणी और अज्ञान व मूर्खता बढ़ाने वाला है। तभी तो कहावत है कि अक्ल बड़ी कि भैंस। भैंस का कटड़ा दश भैंसों में खड़ी अपनी मां को नहीं पहचान सकता और गाय का बछड़ा सौ गायों में खड़ी अपनी मां के पास ही जायेगा।

4. भैंस के दूध से वैर बुद्धि बढ़ती है और गाय के दूध से प्रेम बढ़ता है। इसीलिये भैंस के दूध से पला हुआ भैंसा (झोटा) दूसरे भैंसे को गांव में नहीं रहने देता जबकि गाय के दूध से पले हुए दश दश खागड़ (गाय का साण्ड) भी इक्ट्ठे खड़े एक दूसरे को चाटते रहते हैं।

5. गाय के दूध में सोने (गोल्ड) के गुण हैं, इसीलिये गाय का दूध और घी सोने के रंग जैसा होता है तथा भैंस के दूध में केवल चान्दी के गुण हैं। अतः भैंस का दूध और घी चान्दी के रंग वाला होता है।

6. गाय का दूध और मूत्र अनेक बीमारियों और दवाइयों में काम आता है जबकि भैंस का दूध किसी भी बीमारी या दवाई के काम नहीं आता।

गाय के दूध में और भी अनेक गुण हैं जो भैंस के दूध में नहीं हैं। विरजानन्द दैवकरणि की भ्रष्ट की हुई उपरोक्त चारों सत्यार्थप्रकाशों के अतिरिक्त किसी भी सत्यार्थप्रकाश में ऐसा नहीं मिलेगा कि भैंस गाय से दूध में अधिक उपकारक होती है। और इसकी वाक्य रचना की शक्ल पर बारह बजे हुए हैं क्योंकि बहुवचन के कर्त्ता के साथ एक वचन की क्रिया लगा रक्खी है मूर्ख ने। ऐसी बातों ही से तो हम डंके की चोट कह सकते हैं कि जिस मूलप्रति के एक एक अक्षर से मिलान करके महर्षि के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखने का दावा किया है उस मूलप्रति को बिगाड़ कर तिगाड़ दिया है और इसमें कम से कम 10947 (दश हजार नौ सो सन्तालीस) भ्रष्टीकरण कर दिये हैं।

(12) ऋषि पाठ = 'मद्यपानी'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 184) में पाठ = 'मद्याहारी'।

समीक्षा – ऋषि पाठ का अर्थ = मद्य (शराब) पीने वाला।

सड़ियलों के पाठ का अर्थ = शराब खाने वाला। पान माने पीने की वस्तु और आहार माने खाने की वस्तु। शराब खाने की वस्तु नहीं है बल्कि पीने की वस्तु है। अतः ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(13) ऋषि का पाठ = 'बछड़ा अपनी मां के बाहिर का दूध पीता है भीतर के दूध को नहीं पी सकता। इसलिये उच्छिष्ट नहीं [परन्तु बछड़े के पिये पश्चात् जल से उसकी मां का स्तन धोकर शुद्ध पात्र में दोहना चाहिये।]'

नोट – झज्जरी, अजमेरी और भगवती में से उपरोक्त बन्धनी के भीतर का पाठ निकालकर महान् सामाजिक हानि कर दी।

(14) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 185) में $\frac{2}{3}$ (दो तिहाई) पृष्ठ पर तीन पैरे अत्यधिक भ्रष्ट कर दिये जिससे भ्रष्टीकरणों का गिनना कठिन हो गया।

(15) ऋषि का पाठ = (क) जितने पदार्थ अपनी प्रकृति से विरुद्ध विकार करने वाले हैं '[जिस जिस के लिये जो जो पदार्थ वैद्यकशास्त्र में वर्जित किये हैं, उन उन का सर्वथा त्याग करना]।'

(ख) 'इसमें सब विद्वान् लोग विचारकर विरोधभाव छोड़के [अविरुद्धमत के स्वीकार से सब जने मिलकर सबको] आनन्द को बढ़ावें।'

सिद्धान्ती तथा वेदानन्दी (क – पृष्ठ 230, ख–पृष्ठ 23[illegible]) में उपरोक्त (क) और (ख) की दोनों बन्धनियों का पाठ नहीं छपवाया।

परमात्मा न करे किसी का इन दुष्टन सा सुभाय।
थोथा थोथा गहि लिया सार है दिया उड़ाय।।

(16) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = (क) 'शूद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावे। (ख) प्रश्न – कहो जी! मनुष्य मात्र के हाथ की की हुई (पकी हुई) रसोई के खाने में क्या दोष है ? उत्तर – दोष है क्योंकि चाण्डाल का शरीर दुर्गन्ध के परमाणुओं से भरा हुआ होता है। इसलिये चाण्डाल आदि नीच भंगी चमार आदि का न खाना।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 228) में उपरोक्त (क) पाठ को बन्धनी [ ] में देकर नीचे फुटनोट दिया है – 'बन्धनी के भीतर का पाठ फालतू है।'

समीक्षा – हमारा विचार स्वामी वेदानन्द जी से बिल्कुल मेल नहीं खाता। ऋषि का पाठ फालतू क्यों है, क्योंकि

आप ऋषि से बढ़कर विचारक उत्पन्न हुए हैं इसीलिये न अन्यथा आपने पाठ फालतू होने का कोई कारण नहीं बताया। देखिये छान्दोग्य उपनिषद् [प्रपाठक 7 खण्ड 26 प्रवाक 2] में बताया है, "शुद्ध भोजन के करने से अन्तःकरण की शुद्धि और बुद्धि की प्राप्ति होती है तथा जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती है।" इसलिये 'जैसा अन्न वैसा मन' यह कहावत सच्चाई से भरी है। चारों वर्णों का खाना पीना रहन सहन अपने अपने गुणों के अनुसार भिन्न भिन्न है। तमोगुणमय शूद्र के भोजन से क्या ब्राह्मण सत्त्वगुण प्रधान या क्षत्रिय रजोगुण प्रधान रह जाएगा ? कभी नहीं। कभी नहीं। भोज़न अनुसार ही पात्र रक्खे जाते हैं। सात्विक ब्राह्मण के तो आसन, कुशासन, कदली, पलाश पत्र आदि के सात्विक पात्र होंगे। जैसा कि साहित्य में विदुर, द्रोण, वसिष्ठ, चाणक्य आदि का वर्णन मिलता है। क्षत्रियों के राजसी ठाठ के पात्र होंगे। यदि शूद्र के पात्रों में जली भुनी महीनों पुरानी हाण्डी में पका भोजन खायेगा तो क्या ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् अपनी सतोगुणी वृत्ति और क्षत्रिय अपनी रजोगुणी वृत्ति को सुरक्षित रख सकता है ? कभी नहीं। कभी नहीं। इसलिये ऋषि ने लिखा है कि 'शुद्र के पात्र तथा उसके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के बिना न खावें।' अतः भगवन् यह पाठ फालतू नहीं। इसे फालतू कहना पाप है।

अतिशूद्र तमोगुणी आहार खाने वालों को पंक्ति में बिठा, साथ खा अछूत उद्धार के ढ़ोंग करने से उन नीचों का तो उद्धार हुआ नहीं। हम और नीचे गिर गये। आचार अनाचार की भावना जाती रही। हर चाय की दुकान पर अण्डे, हर शुद्ध भोजनालय के तन्दूर के साथ दूसरा मांस पकाने वाला तन्दूर, घर घर में मांस, मदिरा, मच्छी का प्रचार हो गया। यदि हम

आचार व्यवहार को प्रधान मान कर चलते तो ये दुर्दिन देखने को न मिलते। जन्म की पूछ न होती, योग्यता की होती।

जन्म से शूद्र व्यवस्था नहीं, किन्तु मूर्खता अनपढ़ता आदि के कारण है। इसका किसी उपजाति, कुल, बिरादरी से अभिप्राय नहीं लेना चाहिये। हां, शूद्र के घर का पका अन्न खाना इसलिये निषिद्ध किया है कि उनके घर में यज्ञ आदि कार्य नहीं होते, अतः द्विजों को उनके घर का आपत्काल के बिना भोजन करना ठीक नहीं, इसका अभिप्राय शुद्धता एवं स्वच्छता से है। परन्तु मद्य मांसाहारी लोगों के साथ खाने का सर्वथा निषेध किया है। इसका कारण स्पष्ट है कि ये दुर्गुण आर्यों में भी न लग जावें। अतः निषेध है। चाण्डाल, भंगी, चमार आदि का अभिप्राय भी जाति परक नहीं, किन्तु पेशे धन्धे के कारण है। जो लोग टट्टी उठाना और मुरदार खींचना, मुख में चमड़ा देकर खाल उतारना आदि कर्म करते हैं चाहे वे कोई क्यों न हों, उनके शरीर अवश्य ही दूषित होते हैं, अतः उनके हाथ के खाने का निषेध है। जो इन कामों को नहीं करते चाहे वे किसी कुल में पैदा क्यों न हुए हों उनके हाथ का खाने का कोई निषेध नहीं। भोजन की व्यवस्था आयुर्वेद और विज्ञान पर आश्रित है। एक सहोदर मद्य मांस खाता पीता है तो उसके भाई को उसके हाथ का और उसके घर का अन्न भी नहीं खाना चाहिये। ऋषि दयानन्द के वचन स्मार्त धर्म के अनुसार माननीय हैं।

• इति पूर्वार्द्ध भ्रष्टीकरण समीक्षा •



16 एकादश समुल्लास के भ्रष्टीकरण

एकादश समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या=

1.	वेदानन्दी में	=	812
2.	ताम्रपत्रानुसारी में	=	376
3.	झज्जरी में	=	2422
4.	अजमेरी में	=	2616
5.	भगवती में	=	2383
6.	सिद्धान्ती में	=	812

जो बरबाद उजड़े घरों को बसाये।
जो औरों को सुख देके खुद दुःख उठाये।।
समझलो वही आर्य वीर है।
समझलो वही आर्य वीर है।
जो ऋषियों के ग्रन्थों में गड़बड़ मचाय।
जो भ्रष्टीकरणों की बाढ सी लाय।।
समझ लो वही दुष्ट महानीच है।
बुद्धि में उसके भरा कीच है।।

पाठकगण ! आओ देखें कि इन महा नीचों द्वारा किये भ्रष्टीकरणों की बाढ़ ने सत्यार्थप्रकाश को किस हद तक डुबो दिया है।

(1) इस ग्यारहवें समुल्लास में 30 (तीस) परिच्छेद (पैराग्राफ) अत्यधिक भ्रष्ट कर दिये कि जिससे ऋषि दयानन्द के शब्दों को ढूंढना अत्यन्त कठिन हो गया।

(2) अनेकों जगह कई कई लाइनें छोड़ दी।

(3) कई जगह नये परिच्छेद प्रक्षिप्त अर्थात् मिला दिये।

(4) कई जगह नये श्लोक मिला दिये।

(5) मन्त्रों और श्लोकों आदि में घटा बढ़ी करके पाठ भेद कर दिया।

(6) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = ' जो जो इसमें सत्य मत का मण्डन और असत्य का खण्डन लिखा है वह सब को जनाना ही प्रयोजन समझा गया है।'

वेदानन्दी, ताम्रपत्रानुसारी और सिद्धान्ती में उपरोक्त वाक्य के 'जनाना' शब्द के स्थान पर ' जानना' शब्द रखकर ऋषि का भाव ही उलटा कर दिया। ऋषि का तात्पर्य था–जनाना = मालूम कराना।

(7) ऋषि का पाठ = ' मुसलमानों की बादशाही के सामने 'शिवाजी' 'गोविन्द सिंह जी' ने खड़े होकर मुसलमानों के राज्य को छिन्न–भिन्न कर दिया।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ऋषि वाक्य से 'ने' शब्द निकालकर वाक्य को अर्थहीन सा कर दिया।

(8) वेदानन्दी (पृष्ठ 238) और सिद्धान्ती में ऋषि के 'नागपाश' शब्द को हटाकर इसकी जगह 'नागफांस' गलत लिखकर सब नागों को फांसी पर लटका दिया।

(9) ऋषि पाठ = ' उसमें इस मन्त्र का अर्थ यथार्थ किया है।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त से 'अर्थ' शब्द हटाकर प्रश्न पैदा कर दिया कि मन्त्र का यथार्थ क्या किया है ? कहीं मन्त्र का यथार्थ विवाह तो नहीं कर दिया है।

(10) ऋषि पाठ = ' कभी कभी बहुत नशा चढ़ने से जूते, लात, मुक्का मुक्की, केशा केशि आपस में लड़ते हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'मुक्कामुक्की' की जगह 'मुष्टा–मुष्टि' लिखकर चूहा चूहिया की पूंछ और मूंछ काट ली।

(11) ऋषि पाठ = 'यद्यपि सुधन्वा जैन मत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी बुद्धि में कुछ विद्या का प्रकाश था।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ ='यद्यपि सुधन्वा जैन मत में थे तथापि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से उनकी आँख कुछ खुली थी।"

समीक्षा – उपरोक्त परिवर्तन में 'आँख' भी एकवचन में और इसकी क्रिया 'थी' शब्द भी एकवचन में होने से मालूम हुआ कि सुधन्वा की एक ही आँख खुली थी। जैन मत में होने से दूसरी आँख नहीं खुली होगी। और विचारने की बात यह है कि यदि संस्कृत ग्रन्थ पढ़ने से मनुष्य की आँख खुल जाती है तो संसार के सभी अन्धों को संस्कृत ग्रन्थ पढ़ लेने चाहियें ताकि उन सबकी एक एक आंख तो खुल जाय। 'अन्धों में काना राजा' सही। गुरूकुल के स्नातक व्याकरणाचार्य विरजानन्द दैवकरणि ने यह आंख खोलने का नुस्खा खोजकर संसार का महान् उपकार किया है। श्रीमान् जी ' नकल को अक्ल की जरूरत है।' यदि आप 'उनकी विद्या या बुद्धि की आँख कुछ खुली थी' लिख देते तो आपकी कुचाल चल भी जाती । ऋषियों के ग्रन्थों में फेरफार करना विद्वानों को शोभा नहीं देता। पर आप को 'शोभा' से क्या मतलब। 'शोभा' तो स्त्री है और आप ठहरे कलयुगी नैष्ठिक ब्रह्मचारी ।

(12) ऋषि पाठ = 'उत्तर में जोसी और द्वारका में शारदा मठ बान्धकर शंकराचार्य के शिष्य महन्त बन आनन्द करने लगे।'

वेदानन्दी में उपरोक्त में ' जोसी' शब्द की जगह 'ज्योतिः' लिखकर अन्धों की भी नेत्र ज्योति ठीक कर दी। पर श्रीमान् जी, उत्तर दिशा के इस मठ का नाम 'जोसी' ही है। सही नाम छोड़कर गलत नाम लिखना संन्यासाश्रम को कलंकित करना है। परन्तु आपको सही और गलत से कुछ लेना देना नहीं । आपने तो भूण्ड की तरह उलटा ही चलना है। आदत से लाचार जो

ठहरे।

(13) ऋषि पाठ = ' तब यही कहोगे कि इसमें दोनों धातु मिले हैं।'

अजमेरी और भगवती में 'कहोगे' की जगह ' कहोगा' लिखकर किसी भी दीन का नहीं छोड़ा।

(14) ऋषि पाठ = 'तुम उनकी युक्तियां लेकर हमारी बात का खण्डन क्यों न कर सकते ?'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य के ' का' की जगह 'को' करके व्याकरण की मिट्‌टी पलीत कर दी। अरे योद्धाओ ! यदि आपसे परिवर्तन युद्ध में कूदे बगैर नहीं रहा जाता तो उपरोक्त वाक्य में आये 'खण्डन' शब्द को भी 'खण्डित' शब्द लिख देना चाहिये था ताकि आपके परिवर्तन युद्ध में व्याकरण तो न मारी जाती।

(15) ऋषि पाठ = 'हे परमेश्वर ! मेरे नेत्र की ज्योति तिगुणी अर्थात् तीन सौ वर्ष पर्यन्त रहै।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'ज्योति' की जगह 'आयु' लिखकर अपनी सारी आयु को दूषित कर लिया।

(16) वेदानन्दी (पृष्ठ 268) सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में 'स्पर्शन' का 'पर्सन' करके किसी अर्थ का भी न छोड़ा।

(17) ऋषि पाठ = 'ये लोग बड़ा कोलाहल करते हैं।'

अजमेरी और भगवती में 'बड़ा' की जगह 'बड़े' लिखकर दही बड़े को महंगा कर दिया। शोर या कोलाहल तो हमेशा एकवचन में प्रयुक्त होता है। इन्होंने बहुवचन का बनाकर व्याकरण की टांग ही तोड़ के रख दी।

(18) ऋषि पाठ = 'पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिनमें ईश्वर ने अद्‌भुत रचना की है।'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त 'जिनमें' की जगह 'जिसमें' लिखकर ये भ्रष्ट कह रहे हैं कि यद्यपि ऊपर अनेक पदार्थ गिनायें हैं, पर हम तो अनेकों को एक वचन में ही लिखेंगे। हमारी तो गलत लिखने की आदत पककर तबियत (नेचर) हो गई है। आदत तो छूट सकती है पर तबियत का छूटना असम्भव है।

(19) वेदानन्दी (पृष्ठ 269) और सिद्धान्ती में 'नीम–नीम' के स्थान पर 'नींब–नींब' लिखकर इन्होंने कहा, " चाहे परमात्मा हमें भूण्ड योनि में जन्म देवे परन्तु हम तो हमेशा ऋषि दयानन्द के उलट ही चलेंगे क्योंकि भूण्ड तो उलटे ही चलते हैं। भूण्ड का बगीचा क्या कम खुशबूदार है। हम अगले जन्म में इसी बगीचे में जाने की तैयारी कर रहे हैं।

(20) ऋषि पाठ–'घंटा, घरियाल, झांज, पखाजों को लकड़ी से कूटना पीटना क्यों करते हो ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पलटा हुआ पाठ= 'घण्टा, घरियाल, झांज, पखाजों को लट्ठ आदि से क्यों ठोकते ?'

समीक्षा– वाह! क्या लट्ठमार परिवर्तन किया है।

(21) ताम्रपत्रानुसारी और भगवती (पृष्ठ 216) में यजुर्वेद अध्याय 16 मन्त्र 15 के 'नो' शब्द को [ ] ऐसी बन्धनी में देकर यह बताया है कि इस बन्धनी में दिया 'नो' शब्द ऋषि ने सत्यार्थप्रकाश में नहीं दिया। ऋषि को पता ही नहीं था कि इस मन्त्र में 'नो' शब्द भी है। यह अनूठी खोज तो दैवकरणि की ही है। और इनको यह खोज अभी थोड़ी देर से प्राप्त हुई है क्योंकि स्वयं दैवकरणि ने इसी भगवती के पृष्ठ 180 पर इसी मन्त्र में यह शब्द नहीं दिया है। और कमाल इस बात का भी है कि सन् 1983 ई० में इन्हीं द्वारा प्रकाशित ताम्रपत्रानुसारी के दशवें समुल्लास में इस मन्त्र में 'नो' शब्द दिया है। सन् 1994 ई० में झज्जरी में भी यह शब्द

दसवें समुल्लास में है, ग्यारहवें में नहीं है। तथा सन् 1998 ई० में प्रकाशित अजमेरी के दसवें तथा ग्यारहवें में इस मन्त्र में यह शब्द दोनों जगह नहीं है। इन चारों सत्यार्थप्रकाशों का सम्पादक एक ही दैवकरणि एवं मूलप्रति भी एक ही है। फिर चारों में परस्पर यह भिन्नता लट्ठमार बुद्धि की परिचायक नहीं तो और क्या है? श्रीमान् जी, आप द्वारा प्रकाशित इन चार सत्यार्थप्रकाशों के अतिरिक्त संसार की सभी हिन्दी, अंग्रेजी, उर्दू तथा अन्य भाषाओं में छपी सभी सत्यार्थप्रकाशों में दोनों जगह इस मन्त्र में यह 'नो' शब्द है ! है !! है !!!

(22) ऋषि पाठ – 'तीसरा 'आचार्य' जो विद्या का देने वाला है, उसकी तन–मन–धन से सेवा करनी।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य से 'धन' शब्द उड़ाकर जताया है कि 'आचार्य' को रोटी, कपड़ा और मकान की जरूरत नहीं।

(23) ऋषि पाठ–'वह विरक्त होकर मथुरा में आया था। उसने ये सब बातें झूठ बतलाई।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ–'वह विरक्त होकर मथुरा में आया था। उन्होंने ये सब बात झूठ बतलाई।'

समीक्षा– उपरोक्त ऋषि पाठ में 'उसने' एकवचन का 'उन्होंने' बहुवचन बना दिया जबकि 'वह' एकवचन के साथ 'उसने' ही ठीक था। दूसरे 'बातें' का 'बात' तो कर दिया परन्तु 'ये' और 'बतलाई' का वचन बदलना भूल गया। बदमाश की बदमाशी इसी तरह पकड़ी जाती है।

(24) ऋषि पाठ–'चूल्हों पर चावल पका, पके हुए चावलों को दिखला।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ –'चूल्हों पर चावल चुड़ा, चुड़े हुए चावलों को दिखला।'

समीक्षा—मैं तो केवल हिन्दी, अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू और गुरूमुखी ये पांच भाषाएं ही पढ़ा हूं। इन पांच भाषाओं की किसी भी डिक्शनरि में 'चुड़ा, चुड़े' शब्द नहीं मिले। अब पाठक ही बतायेंगे कि यह 'चुड़ा, चुड़े' किस चुड़ैल का नाम है।

(25) ऋषि पाठ —' उसको सफल यात्रा होना मूढ़ मानते हैं।' झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'सफल' को मूढ़ों ने 'सुफल' बना दिया।

समीक्षा—सफल= फल सहित —कामयाब=प्रकरणानुसार। सुफल=अच्छा फल जैसे आम=प्रकरण विरूद्ध । अतः ऋषि पाठ ही ठीक है।

(26) ऋषि पाठ —'गंगा यमुना के संगम में स्नान करने से।'

वेदानन्दी पृष्ठ 285 पर उपरोक्त 'में' की जगह 'से' कर दिया।

समीक्षा—'संगम' कोई जल की तरह वस्तु नहीं जिससे स्नान किया जा सके। ऋषि पाठ ही सार्थक है। बुद्धू का पाठ निरर्थक है।

(27) ऋषि पाठ—'यह बड़ी असम्भव बात है कि अयोध्या नगरी बस्ती, कुत्ते, गधे, जाजरू सहित तीन बार स्वर्ग में गई।'

वेदानन्दी में उपरोक्त 'बस्ती' को 'वस्तु' लिख दिया, पर यह नहीं बताया कौन सी वस्तु। ऋषि का पाठ व्यापक अर्थ वाला तथा सही है। उल्लू का गलत है।

(28) ऋषि पाठ—'जो ब्रह्मचारी एक आचार्य से और एक शास्त्र को साथ साथ पढ़ते हों वे सब समान तीर्थ सेवी होते हैं।'

वेदानन्दी में उपरोक्त आचार्य के बाद वाला 'से' हटाकर वाक्य का अर्थ कर दिया कि जैसे एक शास्त्र को पढ़ते हैं, वैसे एक आचार्य को भी पढ़ते हैं, मानो आचार्य भी कोई पुस्तक है। शर्म का बीज भी नहीं इन लोगों के पास।

(29) ऋषि पाठ–'पुराण विद्या वेदार्थ के जनाने ही से वेद हैं।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 286), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त 'जनाने' को 'जानने' कर दिया।

समीक्षा –क्या पुराण (प्राचीन) विद्या वेद के अर्थ को जान सकती है ? कभी नहीं। ऋषि का अर्थ है कि प्राचीन विद्या (ब्राह्मण ग्रन्थ) वेद के अर्थ को जनाते हैं, बताते हैं।

(30) झज्जरी, अझमेरी और भगवती में ऋषि पाठ 'अथवा' की जगह 'सायत' कर दिया।

समीक्षा –अथवा= वा, या। सायत =एक मुहूर्त का समय, अपशकुन या शुभ शकुन।

'अथवा' संयोजक है जबकि 'सायत' संज्ञा है। प्रकरण के अनुसार 'सायत' तो लग ही नहीं सकता। ऋषि का पाठ सर्वथा ही ठीक है। दैवकरणि की निरी बकवास है। कहावत है, " नीम हकीम खतरा जान" अर्थात् अधकचरा वैद्य डाक्टर जान का दुश्मन होता है। इसी प्रकार दैवकरणि से अधकचरे पढ़व्वे खतरनाक हैं।

(31) ऋषि पाठ= 'भुक्खड़ों ने भी बहुत सा माल पेट में भरा।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 307), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त 'भुक्खड़ों' की जगह 'भुक्कड़ों' लिखकर अरबी और फारसी को लंगड़ा बना दिया। ऋषि पाठ ही ठीक है।

(32) ऋषि पाठ= ' यह पुस्तक तुम्हारे पुरूषाओं ने तुम्हारी जीविका के लिये बनाया है।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 307), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में ऊपर लिखी 'तुम्हारी' की जगह 'तुम्हारे' लिखकर यह सिद्ध कर दिया कि इनको लिंग और वचन का ज्ञान भी नहीं है क्योंकि 'जीविका' स्त्रीलिंग एक वचन के साथ स्त्रीलिंग एकवचन की 'तुम्हारी'

शब्द ही लगेगा। 'तुम्हारे' शब्द पुल्लिंग और बहुवचन है। अतः जीविका के साथ 'तुम्हारे' लगाना व्याकरण का महा अपमान करना है।

(33) ऋषि पाठ= 'दाता तीन प्रकार के हैं–उत्तम, मध्यम और निकृष्ट।' अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 237) में 'निकृष्ट' के स्थान पर 'कनिष्ठ' कर दिया।

समीक्षा–कनिष्ठ = सब से छोटा (आयु, कद आदि में) जैसे कनिष्ठ ब्रह्मचर्य अर्थात् सबसे छोटी आयु यानी 24 वर्ष तक विद्या पढ़ने तक ब्रह्मचारी रहना फिर विवाह करना।
निकृष्ट = गुणों में घटिया, नीच।
इस तीसरे प्रकार के दाता के लिये ऋषि ने इसकी व्याख्या में 'नीच' शब्द दिया भी है। अतः दैवकरणि का परिवर्तन निकृष्ट है, घटिया नीच है, गलत है।

(34) ऋषि पाठ= ब्रह्मलोक में एक वेश्या थी। उसने कुछ अपराध किया। उसको शाप हुआ। तू पृथिवी पर गिर।

वेदानन्दी (पृष्ठ 311), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त अन्तिम वाक्य को लिखा–'वह पृथिवी पर गिर।'

समीक्षा–मध्यम पुरूष को प्रथम पुरूष (अन्य पुरूष) में लिखकर गलत कर दिया। परिवर्तन भी किया, परन्तु अन्धा होकर किया। सही परिवर्तन ऐसे होता कि 'वह पृथिवी पर गिरे।' किसी के ग्रन्थ में परिवर्तन करना भी महापाप है, नैतिक पतन है, घिनौना कार्य है।

(35) ऋषि पाठ='वैष्णव मांस नहीं खाते न मद्य पीते हैं।'

अजमेरी के पृष्ठ 368 पर उपरोक्त वाक्य से 'न' हटाकर वैष्णव सम्प्रदाय पर मद्य पीने का मिथ्या आरोप लगाया है। किसी

वैष्णव ने विरजानन्द दैवकरणि की पूंछ मरोड़ी होगी। इसलिये इन्होंने अजमेरी के चार साल बाद स्वयं द्वारा सम्पादित भगवती में लिख दिया—'वैष्णव मद्य नहीं पीते।' पुंछ छुड़ाने का सही तरीका अपनाया अन्यथा पूंछ को जड़ से उखड़वा बैठते।

(36) ऋषि पाठ = बहुत से खाखी लकड़े की लंगोटी लगा धूनी तापते हैं।

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'लंगोटी' को लंगोली (ढेरी) लिख दिया है।

समीक्षा – लकड़े की लंगोटी से भाव है कि खाखी लोग भूमि पर बैठकर अपने से कुछ दूर चारों तरफ लकड़ों का घेरा (चक्र) बनाकर इन लकड़ों में अग्नि जलाकर कहते हैं कि हम चारों तरफ से धूनी तापते हैं और हमारे ऊपर से सूरज तप रहा है। इस प्रकार हम पंच अग्नि तप कर रहे हैं। खाखी के चारों तरफ जलती हुई इन लकड़ियों को ही ऋषि ने लकड़े की लंगोटी कहा है क्योंकि लंगोटी (लंगोट) चारों तरफ ही बान्धी जाती है। दैवकरणि ने ऋषि का भाव न समझकर लंगोटी को लंगोली और कोष्ठ में इसका अर्थ ढेरी लिख दिया जो सर्वथा ही गलत है। आप लोग सारी दुनियां भर की हिन्दी की डिक्शनरियां छान मारो परन्तु किसी में भी 'लंगोली' शब्द नहीं मिलेगा। यह शब्द घड़ने की टकसाल तो दैवकरणि के पास ही है। जब लंगोली हिन्दी का कोई शब्द ही नहीं है तो इसका अर्थ ढेरी लिखना तो आकाश के फूलों से इतर निकालने के समान ही है।

(37) ऋषि पाठ = 'काशी का कोई जुलाहा थोड़ी सी रात्रि रहे बाजार में चला जाता था तो देखा सड़क के किनारे में एक टोकनी में फूलों के बीच में उसी रात का जन्मा बालक था।'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त पाठ की 'टोकनी' के स्थान पर 'टोकरी' लिखकर

इतिहास के शत्रु होने का परिचय दे दिया।

समीक्षा—उपरोक्त में स्वामी वेदानन्द 'तीर्थ', जगदेव सिंह सिद्धान्ती शास्त्री 'तर्कवाचस्पति' और गुरूकुल के स्नातक कलयुगी नैष्ठिक ब्रह्मचारी विरजानन्द दैवकरणि इन सभी महारथियों ने मिलकर इतिहास की हत्या ठीक ऐसे ही कर दी जैसे महाभारत युद्ध में सात महारथियों ने मिलकर अर्जुन पुत्र निहत्थे अभिमन्यु की निर्मम हत्या की थी।

(38) ऋषि पाठ= 'वेद तो सब विद्याओं का भण्डार है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'भण्डार' की जगह 'कोष' करके बता दिया कि दैवकरणि 'भण्डार' और 'कोष' में अन्तर नहीं जानते जबकि इनका अन्तर कोसों दूर का है। 'कोष' तो केवल खजाना या शब्द संग्रह, खोखा, खोल आदि का नाम है। परन्तु खजाना या खोखा आदि को भण्डार नहीं कह सकते । भण्डार तो जैसे अन्न भण्डार, बर्तन भण्डार इत्यादि को कहते हैं। अन्न भण्डार या बर्तन भण्डार आदि को 'कोष' नहीं कह सकते । इसी प्रकार विद्याओं के भण्डार को भी 'कोष' कहना अनाड़ीपन ही है। अतः ऋषि पाठ ही ठीक है।

39. ऋषि पाठ= 'जांघिया को अखाड़मल्ल और नट इसीलिये धारण करते हैं कि जिससे शरीर का मर्मस्थान बचा रहै।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में ' बचा रहै' के स्थान पर 'ढका रहै' कर दिया।

समीक्षा—बचा रहै= सुरक्षित रहै अर्थात् चोट आदि न लगने पावे।

ढका रहै=जैसे ढोल की पोल ढकी रहे, दिखाई न दे।

ढके ढकाये ढोल राहन दे के लेगा इन बातां म्हां तैं।
जिनकी गलगी म्याद टटोलै के काढै इन खात्यां म्हां तैं।

अतः ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(40) ऋषि पाठ= 'एकान्त में भी स्त्रियों और साधुओं की बैठक होती रहती है।'

सिद्धान्ती और झज्जरी में उपरोक्त 'बैठक' की जगह 'लीला' कर दिया और अजमेरी तथा भगवती में बैठक' की जगह 'लीली ' कर दिया।

समीक्षा – ऋषि का संकेत सभ्यता पूर्वक है और सिद्धान्ती और झज्जरी का संकेत भद्दे, असभ्य और गन्दे ढंग से है तथा अजमेरी और भगवती वालों के जाते हुओं के पाँव (पैर) दीखते हैं।

उज्जड़ खेड़ै कांकरी घड़ घड़ गये कुम्हार।
कितनिक दूध बिलो गई चूड़ा छणकती नार।।
लीली घोड़ी कनकटी गये माणीगर असवार।
देख देख कै रूप नूरजहां गई पिंगला रानी नार।।
दैवकरणि भी जावैगा जो ग्रन्थों को रहा बिगाड़।
भाण्डाफोड़ को जब पढेंगे मिट ज्यागी सब राह्ड़।।

(41) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ ='न्यायाधीश ने उसको नाक काट डालने का दण्ड किया।'

घेदानन्दी (पृष्ठ 339) और सिद्धान्ती में उपरोक्त 'नाक' के बाद 'कान' शब्द और बढ़ाकर अपनी महामूर्खता का परिचय दे ही दिया।

समीक्षा–1. इस सारे प्रकरण में 'नाक' शब्द इक्कीस बार आया है। परन्तु कहीं भी 'नाक' के साथ 'कान' शब्द नहीं आया। यदि वेदानन्द जी हर 'नाक' के बाद 'कान' शब्द बढ़ा देते तो शायद इनकी यह काली करतूत आसानी से पकड़ में न आती।

2 अगले ही वाक्य में लिखा है, " जब उसकी नाक काटी गई तब वह धूर्त नाचने, गाने और हंसने लगा" यदि नाक के साथ

कान काटने का भी जिक्र आता तब यह परिवर्तन उस समय तक मालूम न होता जब तक वेदानन्दी का मिलान आर्ष सत्यार्थप्रकाश के साथ न किया जाता।

3. इसी प्रकरण में थोड़ा आगे लिखा है, " उन सहस्र नकटों के सीधे बान्ध दिये।" यहां भी नकटों के बाद 'कनकटों' नहीं आया। इससे भी 'कान' शब्द बढ़ाना सिद्ध ही है।

4. और थोड़ा आगे लिखा है, "उन नाककटों की बातें सुनाई। यहां भी 'कानकटों' शब्द नहीं आया।

5. आगे लिखा है, " जिसकी प्रथम नाक कटी थी।" यहां भी कान कटने का जिक्र नहीं ।

6. फिर लिखा है, " तब नाक कटे का सम्प्रदाय बन्द हुआ।" यहां भी कान कटे का वर्णन नहीं।

7. एक स्थान पर लिखा ," नाक की आड़ हो रही है, जो नाक कटवा लो तो नारायण दीखे । मैं वेदानन्दी वाले से पुछता हूँ कि बेचारा कान तो किसी की आड़ नहीं। इस निरपराध को काट डालने का दण्ड क्यों दिया ? पाठकगण ! इतने पड़ापड़ लगने पर भी यदि स्वामी वेदानन्द और जगदेव सिंह सिद्धान्ती के होश ठिकाने न आयें तो उन्हें गधों का कोच न कहा जाय तो क्या कहा जाय ?

(42) ग्यारहवें समुल्लास के अन्त में आर्यावर्तदेशीय राजवंशावली में श्रीमान् महाराज युधिष्ठिर से लेके महाराज यशपाल तक का इतिहास दिखाने के लिये प्रत्येक राजा के राज्यकाल के वर्ष, मास और दिन के आंकड़े दिये हुए हैं। भ्रष्टीकरणकर्त्ता इतिहास के दुश्मनों ने इन आंकड़ों में भी फेरबदल आदि परिवर्तन कर दिये हैं। देखिये—झज्जरी में एक आंकड़े में, अजमेरी में दो आंकड़ों में, भगवती में दो आंकड़ों में और ताम्रपत्रानुसारी में 40 (चालीस) आंकड़ों में परिवर्तन करके बड़ा भारी अपयश कमा लिया है और

कमाते ही जा रहे हैं।

ज्यों ज्यों भीजै काम्बली त्यों त्यों भारी होय।
न्यायकारी के दण्ड से बच नहीं सकेगा कोय।।



17 द्वादश समुल्लास के भ्रष्टीकरण

द्वादश समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या =

1.	वेदानन्दी में	=	410
2.	ताम्रपत्रानुसारी में	=	180
3.	झज्जरी में	=	1736
4.	अजमेरी में	=	1879
5.	भगवती में	=	2067
6.	सिद्धान्ती में	=	410

करनी दैवकरणि की पढ़ो लगाकर ध्यान।
सर्वव्यापक परमात्मा करे सब का कल्याण।।

(1) सत्यार्थप्रकाश में सब से अधिक गड़बड़ बारहवें समुल्लास में की है। जैसे एक आदमी गेहूं का आटा, चावल का आटा, चने का आटा, जौ का आटा, मूंग का आटा, बाजरे का आटा और जुवार का आटा इन सातों प्रकार के आटों को सब बराबर तोल में लेकर परस्पर अच्छी तरह मिलाकर खूब गुँध कर रोटियां बनाकर किसी को खिलावे और खाने वाला इन रोटियों में अलग–अलग अनाजों का स्वाद लेना चाहे तो ले नहीं सकता। इसी प्रकार इस समुल्लास के प्रकरणों में भिन्न भिन्न प्रकरण तथा विषयों में भिन्न भिन्न विषय परस्पर इस तरह मिला दिये हैं कि पढ़ने वाला समझ ही नहीं सकता कि कौन सा विषय या प्रकरण है और क्या कहा जा रहा है। कुछ पृष्ठ आरम्भ के और कुछ अन्त के छोड़कर बाकी सारे समुल्लास में आगे का पीछे, पीछे का आगे, बीच का आरम्भ व अन्त में, आरम्भ व अन्त का बीच में करके और अनेकों मिलावट, हटावट तथा बदलावट आदि करके अत्यन्त गड़बड़ा दिया है।

(2) 94 (चुरानवें) परिच्छेद (पैराग्राफ) अत्यन्त भ्रष्ट कर दिये। इन पैरों से दयानन्दर्षि की शिक्षा सर्वथा समाप्त कर दी। इनमें भ्रष्टीकरणों की गणना करना भी अत्यधिक कठिन है।

(3) बड़े–बड़े पैरों को बिल्कुल छोटे छोटे कर दिया। जैसे पचास लाइनों के पैरे को चौदह लाइनों का बना दिया।

(4) अनेकों जगह कई कई लाइनें छोड़ दीं।

(5) कई जगह नये पैरे प्रक्षिप्त कर दिये।

(6) कई जगह नये श्लोक मिला दिये।

(7) अलग अलग स्थानों के श्लोक एक जगह इकट्ठे कर दिये।

(8) झज्जरी के पृष्ठ 790 से 795 तक नास्तिक आस्तिक के लम्बे प्रकरण को प्रश्न–उत्तर ढंग से बना दिया।

(9) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ ='सब संसार में दुःखरूप दुःख का घर, दुःख का साधन रूप भावना करके संसार से छूटना, चारवाकों में अधिक मुक्ति और अनुमान तथा जीव को न मानना; बौद्ध मानते हैं।'

वेदानन्दी, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ऋषि पाठ से 'न' हटाकर चारवाकों के सिद्धान्त से विपरीत कर दिया। ऋषि तो कह रहें हैं कि 'चारवाक मत वाले मुक्ति, अनुमान प्रमाण और जीव को नहीं मानते, परन्तु बौद्ध मत वाले इन तीनों को भी मानते हैं अर्थात् बौद्धों की यह मान्यता चारवाकों से अधिक है, शेष बातों में दोनों समान हैं। उपरोक्त महाशय लोग ऋषि के भाव तो समझे नहीं, पर 'न' हटाकर औरों के समझने लायक भी नहीं छोड़ा।

(10) ऋषि पाठ ='बस उसके समय में एक ही उनका मत रहा होगा।'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, अजमेरी और भगवती

में उपरोक्त वाक्य के प्रथम शब्द 'बस' को हटाकर इसकी जगह 'पस' शब्द रखकर अपने मन की गन्दगी दिखा दी।

समीक्षा –'पस' शब्द हिन्दी (आर्य भाषा) का नहीं है। हम तो फोड़े की पीप अर्थात् राध को पस कहते हैं। गन्दी मनोवृत्ति से गन्दे ही शब्द निकलेंगे। धन्य हो दयानन्द के सुधारकों को ।

(11) ऋषि पाठ = 'अनादि देव का स्वरूप चन्द्रसूरी ने आप्तनिश्चयालंकार ग्रन्थ में लिखा है–।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य के प्रथम शब्द 'अनादि' को 'आदि' लिखकर जैनियों से दुश्मनी मोल ले ली जबकि इसी के नीचे श्लोक में 'जो 'सर्वज्ञ' अर्हन् देव है वही परमेश्वर है' लिखा है। जैनी लोग इनको अनादि मानते हैं।

(12) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 289) में दो नास्तिक आस्तिक एक में ही दे दिये। शायद भैंस दोहने का समय हो गया था। इसलिये जल्दी जल्दी में दोनों एक में ही दे दिये अन्यथा काटड़ा भैंस चूंग जाता।

(13) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 293) में प्रकरण रत्नाकर आदि के तेंतीस सूत्र जो यहां से प्रारम्भ होने थे वे पृष्ठ 302 से प्रारम्भ किये और अगले.सात प्रश्नोत्तोरों में से चार प्रश्नोत्तर पृष्ठ 292 पर दे दिये। यह नमूने के लिये दिया है। अनेकों स्थानों पर ऐसे ही आगे का पीछे और पीछे का आगे कर दिया है।

(14) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 294) में 'सन्ध्या समय के भोजन में जिनबिम्ब अर्थात् उनकी मूर्तियों का पूजन' से लेकर 'तो जैनी लोग गोतम का अंगूठा धोकर पीके अमर क्यों नहीं हो जाते' तक की अठारह लाइनें पृष्ठ 309 पर 'श्राद्धदिनकृत्य' के छः सूत्रों के बाद की हैं। इन अठारह लाइनों से आगे का बहुत अधिक भाग छोड़ ही दिया अर्थात् छपवाया ही नहीं।

(15) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 298) में छत्तीस लाइनों में लिखी काल गणना पृष्ठ 291 पर होनी चाहिये तथा इन छत्तीस लाइनों में ऋषि के लेख को अत्यन्त अदल बदल कर दिया है। वाह रे दयानन्द की विद्या सन्तानो ! कृतघ्नता की पराकाष्ठा पर पहुँच गये। ऋषि ऋण से अनृण होने का यही तरीका है क्या ?

(16) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 310) में पूरे पृष्ठ की चालीस और दो बयालीस लाईनों में से कोई लाईन आगे की और कोई पीछे की है। इस महामिश्रण रूपी ढूंढ में ढूंढना असम्भव है।

(17) ऋषि पाठ ='आजकल'

अजमेरी और भगवती में पाठ ='आजकाल'

समीक्षा–'कल' के दो अर्थ = 1. बीता हुआ दिन।
2. आने वाला दिन।
'काल' के भी दो अर्थ हैं =1. समय 2. मृत्यु।
मालूम होता है दैवकरणि का काल आ गया है। अतः इनके अन्त्येष्टि संस्कार की तैयारी फटाफट की जाय।

(18) ऋषि पाठ ='सूर्य पृथिवि के चारों ओर घूमे तो कई एक वर्षों का दिन और रात होवे।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य में 'कई' के स्थान पर 'कै' लिख दिया।

समीक्षा– 'कै' शब्द के हिन्दी में दो अर्थ हैं–
1. कै= कितने=प्रश्नवाचक। यहां ऋषि प्रश्न नहीं पूछ रहे बल्कि सूचना दे रहे हैं कि सूर्य पृथिवी के चारों और घूमे तो कई कई वर्षों के दिन और रात होवें।
2. दूसरा अर्थ पाठकों को खुश करने के बाद बताऊँगा। दो फौजी थे। एक राजस्थान का रहने वाला था और दूसरा हरयाणा का रहने वाला था। दोनों दो महीने की छुट्टी ले घर को आ रहे

थे। जब वे हरयाणा राजस्थान की सीमा से अलग अलग हो अपने अपने प्रान्त की तरफ जाने को तैयार हुए उसी समय उनके सामने से एक ऊँट गुजरा। हरयाणे वाले फौजी ने सोचा कि इस ऊँट के बहाने से राजस्थानी का मजाक तो कर लूँ। उसने ऊँट की तरफ इशारा करके राजस्थानी से पूछा, " भाई साहब ! आपके राजस्थान में इस जानवर को क्या कहते हैं ?" राजस्थानी ने कहा, " हमारे तो फूफा कहते हैं, तुम्हारे क्या कहते हैं ?" इसी तरह भाई साहब ! हमारी डिकशनरी में तो 'कै' का दूसरा अर्थ उल्टी (वमन) है, तुम्हारी में क्या है दैवकरणि ?

उपरोक्त संख्या 10 में मैंने कहा है, 'गन्दे मन से गन्दे शब्द ही निकलते हैं सो ठीक ही कहा है। बदनाम करने चले थे महर्षि दयानन्द सरस्वती को, पर बदनाम हो रहे हैं खुद ही ।

(19) ऋषि पाठ = 'प्रश्न –दूध और खटाई के संयोग के बिना दही नहीं होता। इसी प्रकार जीव और कर्म के योग से कर्म का परिणाम होता है।

उत्तर –जैसे दूध और खटाई को मिलाने वाला तीसरा होता है वैसे ही जीवों को कर्मों के फल के साथ मिलाने वाला तीसरा ईश्वर होना चाहिये।'

वेदानन्दी' (पृष्ठ 400), सिद्धान्ती और ताम्रपत्रानुसारी में उपरोक्त उत्तर में 'दूध' की जगह 'दही' कर दिया।

समीक्षा– इन किस्मत के मारों को शर्म भी नहीं आती कि लोग तुम्हारा परिवर्तन पढ़कर तुम्हारी हंसी उड़ायेंगे। अरे भक्त जीओ! दही तो खुद ही खटाई है। फिर खटाई में खटाई मिलाने की क्या तुक है। असल बात यह है कि जैसे सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखता है वैसे ही दयानन्द को सुधारने की धुन में भलाई भी बुराई दीखती है, ठीक बात भी गलत दीखती है। प्यारे मित्रो!

दयानन्द के सुधारको !! अहंकार को छोड़कर ऋषियों की शरण में आजाओ। बेड़ा पार हो जायेगा।



18 त्रयोदश समुल्लास के भ्रष्टीकरण

त्रयोदश समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या=

1. वेदानन्दी में	= 327	2. ताम्रपत्रानुसारी में	= 217
3. झज्जरी में	= 769	4. अजमेरी में	= 673
5. भगवती में	= 797	6. सिद्धान्ती में	= 327

दोहा = अपने घर को आग लगा ली पड़ोसियों को दी लगाय।
देश विदेश को जला करके पहुँचे नरक में जाय।।
दुष्टों द्वारा भ्रष्ट किये ग्रन्थों को न पढ़ना भाई
सावधान सबको करने को दो दोहे दिये बनाई।।

भावार्थ – महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सांगोपांग वेदोपवेद का सही ज्ञान लिखकर देश विदेश में फैले मिथ्या मतों का खण्डन किया जिससे सारे विश्व को धर्म अधर्म, सत्य असत्य और कर्तव्य अकर्तव्य का यथार्थ विवेक हो सके । परन्तु भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं ने अपने पराये और देश विदेश को सही रास्ता दिखाने वाले सत्यार्थप्रकाश रूपी दीपक को बुझा दिया। इनके भ्रष्ट किये सत्यार्थप्रकाशों को त्त पढ़ने के लिये उपरोक्त कविता द्वारा सावधान किया है। विदेशी कृष्चीन मत अर्थात् बाइबल मतों को दिखाये गये सही रास्ते में जो कांटे इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं ने बखेरे हैं, उन कुछ कांटों का नमूना इस तेरहवें समुल्लास के भ्रष्टीकरणों द्वारा दिखाते हैं। बार बार पढ़िये।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में समीक्षा किये गये विषयों की कुल क्रमांक संख्या 133 (एक सौ तेंतीस) है तथा वेदानन्दी और सिद्धान्ती की उपरोक्त संख्या 130 (एक सौ तीस) है। स्वामी वेदानन्द और जगदेव सिंह सिद्धान्ती ने अपने द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाशों में

से तीन तीन क्रमांक विषय घटा दिये।

विरजानन्द दैवकरणि ने अपने द्वारा सम्पादित चार सत्यार्थप्रकाशों में से प्रथम ताम्रपत्रानुसारी में तो वही सही संख्या 133 (एक सौ तेंतीस) रखी है। परन्तु बाद के तीनों झज्जरी, अजमेरी और भगवती में समीक्ष्य विषयों की कुल क्रमांक संख्या 142 (एक सौ बयालीस) कर दी है। इनमें क्रमांक 65, 66, 71, 72 और 83 संख्यायें नई मिलाकर बढ़ा दी और कुछ क्रमांकों के दो दो तीन तीन भाग कर दिये। जैसे क्रमांक संख्या 69 के दो भाग तथा क्रमांक 80 के तीन भाग बना दिये। दैवकरणि ने अपने सम्पादकीय आदि में चारों सत्यार्थप्रकाशों को हस्तलिखित मूलप्रति के एक एक अक्षर से मिलान करके महर्षि दयानन्द के वाक्यों को ज्यों का त्यों रखने की बात लिखकर भी यह भिन्नता कर दी कि एक सत्यार्थप्रकाश के क्रमांक तो 133 और बाकियों के 142 बना दिये। यह जानबूझकर किया गया महाघुटाला नहीं तो और क्या है ?

(2) 54 (चव्वन) आयतों में परिवर्तन इस प्रकार कर दिया कि किसी आयत का पता बदल दिया, किसी के पते में मिलावट कर दी और कोई पता गुम कर दिया। इससे यह हानि हुई कि जब हम इन बदले हुए पतों पर समीक्ष्य विषयों को बाइबल में देखते हैं तो वहां ये विषय न मिलकर और ही विषय मिलते हैं। इससे स्वामी दयानन्द झूठा सिद्ध होता है कि उसने बनावटी विषय देकर बाइबल के नाम से झूठे पते दे दिये।

(3) अनेकों स्थानों पर कई कई लाइनें छोड़ दीं और कहीं नई लाईनें मिला दीं।

(4) कई स्थानों पर नये पैरे बना दिये और कहीं कहीं असली पैरे छोड़ दिये।

(5) बीसियों जगह 'वह' का 'वुह' कर दिया।

(6) ऋषि पाठ—'ईश्वर बेडौल उसका ज्ञान—कर्म बेडौल होता है वा

सब डौल वाला ?

ईसाई–डौल वाला होता है।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'कर्म' के बाद 'कार्य' शब्द और बढ़ा दिया तथा 'ईसाई' शब्द के बाद के एकवचन वाक्य को बहुवचन का बनाकर लिख दिया " डौल वाले होते हैं।"

समीक्षा –कर्म और कार्य दोनों का एक ही अर्थ है। अतः 'कार्य' बढ़ाना अनावश्यक और अनुचित है। यदि एक–एक शब्द के दो दो करने थे तो ऐसे करना चाहिये था कि 'ईश्वर परमात्मा बेडौल बेढंगा उसका तिसका ज्ञान जानकारी कर्म कार्य बेडौल बेढंगा होता भवता है सै वा या सब सारे डौल ढंगा वाला वाला।' मतलब यह है कि यदि चोथ (गोबर) खावे तो हाथी का खावे ताकि पेट भर जावे। अपनी मूर्खता ही दिखानी हो तो जरा अच्छी तरह दिखावे ताकि गधे का भी फूफा बन जावे।

दूसरा, जब पूछने वाला एक वचन में पूछ रहा है तो बहुवचन में उत्तर देना कोई खास कलाकारी नहीं। यदि आपको बहुवचन का ही शौक था तो नैष्ठिक ब्रह्मचर्य की दीक्षा क्यों ली थी। शादी करवा लेते । कुछ वर्षों में बहुत से बहुवचन आपके चारों तरफ भागते फिरते।

(7) ऋषि पाठ =‘जिस पेड़ का फल मैंने तुझे खाने से वर्जा था तूने खाया है।'

नोट अर्थात् ध्यान दीजिये–(1) ताम्रपत्रानुसारी और भगवती में उपरोक्त वाक्य के 'फल' की चोरी करके सवाल पैदा कर दिया कि पता नहीं पेड़ का क्या खाने से वर्जा था और क्या खाया है। (2) झज्जरी और अजमेरी वाले उपरोक्त ऋषि पाठ के 'फल' को तो आप खा गये और ऋषि पाठ को जरा बदलकर यों लिखा–'जिस पेड़ को मैंने तुझे खाने से वर्जा था तूने खाया है।'

समीक्षा –पाठक पूछ सकते हैं कि पेड़ को खाने से मना किया सो

तो ठीक किया लेकिन पेड़ को खाया कैसे ?

उत्तर–जब लोग सिमेन्ट के लाखों कट्टे खा सकते हैं, लाखों बोरी यूरिया खा सकते हैं, लाखों मन पशुओं का चारा खा सकते हैं, मुर्दा आदमी रखने के लाखों बकस अर्थात् ताबूत खा सकते हैं, लाखों बोफोर्स तोप खा सकते हैं, और लाखों मन लोहा खाकर हजम कर सकते हैं तो पेड़ को खाना कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं ।

3. बगैर ईमानदार आदमी के पराये फल को कोई नहीं छोड़ता। वेदानन्दी और सिद्धान्ती वालों ने भी उपरोक्त ऋषि पाठ के 'फल' को तो खा लिया तथा उक्त वाक्य को जरा घुमाकर ऐसे लिखा–जिस पेड़ से मैंने तुझे खाने से वर्जा था तूने खाया है। इन्होंने भी वही प्रश्न खड़ा कर दिया कि पेड़ से क्या खाने को रोका था और क्या खाया है ? पाठक ! देखा आपने, तिल का ताड़ और राई का पहाड़ ऐसे बनता है।

(8) ऋषि पाठ ='जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो उस वृक्ष की उत्पत्ति किसलिये की थी ?''

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'उस वृक्ष' के स्थान पर 'उन वृक्षों' लिख दिया।

समीक्षा –इस क्रमांक 7 के समीक्षा किये जाने वाले विषय और समीक्षा में इसी पेड़ का जिक्र कुल छः बार आया है। जब पहले पाँच बार एकवचन में जिक्र आ चुका तो छठी बार उसी एक पेड़ का जिक्र बहुवचन में कभी भी नहीं आ सकता। इसी छठी बार वाले परिवर्तन से सिद्ध है कि मूलप्रति में अदल बदल की गई है। यदि पहले पाँच को भी बहुवचन कर देते तो इनकी बदमाशी कुछ देर छुप भी सकती थी। बाइबल में लिखे सृष्टि के इतिहास में गड़बड़ी करना ईसाइयों से शत्रुता मोल लेना है।

ऋषि पाठ = 'मुझ से'

अजमेरी और भगवती में 'मुझ से' की जगह 'मुस्से' लिख कर सब

को मालूम करा दिया कि परिवर्तनकर्त्ता के घर में 'मुस्से' अर्थात् चूहे ज्यादा तंग कर रहे हैं।

(10) ताम्रपत्रानुसारी में छः बार तथा अजमेरी और भगवती में दो दो बार 'गाड़ना' का गाढ़ना कर दिया। देखो समीक्ष्य 27 और इसकी समीक्षा।

समीक्षा—हिन्दी की डिकशनरि में 'गाढ़ना' कोई शब्द नहीं है।

(11) वेदानन्दी (पृष्ठ 471) और सिद्धान्ती में एक एक समीक्ष्य तथा समीक्षा छोड़ दी। इसी प्रकार वेदानन्दी (पृष्ठ 472) और सिद्धान्ती में दो दो समीक्ष्य और इनकी समीक्षायें छोड़कर इनसानों की कौम को धोखा दे दिया।

(12) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 337 तथा 349) में तीन–तीन बार 'शाप' का 'स्राप' करके परमात्मा से शाप ले लिया।

(13) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 341 तथा 352)में दो दो बार 'भवन' का 'भुवन' लिख दिया।

समीक्षा—इस परिवर्तन से मालूम हुआ कि इन नाथों को न तो 'भवन' का अर्थ आता है और न 'भुवन' का। भवन का अर्थ =घर–महल–हाऊस। 'भुवन का अर्थ =भूमि, पानी, लोग और विश्व रचना। उपरोक्त के प्रकरणों में भुवन के अर्थ की संगति नहीं बैठती। अतः ऋषि का लिखा 'भवन' ही ठीक है।

(14) ऋषि पाठ = जैसे आजकल पोपलीला ताबीज और भस्म की चुटकी देने से रोगों को छुड़ाना सच्चा हो तो वह इंजील की बात भी सच्ची होवे।

वेदानन्दी और सिद्धान्ती में उपरोक्त 'ताबीज' की जगह 'बीज' लिखकर अपना बीज नष्ट कर लिया। प्रसंगानुसार 'बीज' की बिल्कुल भी संगति नहीं बैठती। इसीलिये तो इनकी घुसपैठ को

भ्रष्टीकरण का नाम दिया है।

(15) ऋषि पाठ ='लाखों अन्धे और बहिरों को आँख और कान दिये।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'अन्धे' की जगह 'अन्धा' लिखकर बागड़ी बोली में घुसकर अन्धे ही हो गये।

(16) ऋषि पाठ = तब वह हर एक मनुष्य को उसके कार्य के अनुसार फल देगा।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'एक' के बाद 'एक' और लिखकर बना दिया 'तब वह हर एक एक मनुष्य को फल देगा।'

समीक्षा –इन बुद्धि के मालिकों ने ऋषि के अर्थ से बिल्कुल उलटा अर्थ कर दिया। मुलाहिजा फरमाइये–ऋषि का अर्थ है 'हर एक' अर्थात् प्रत्येक मनुष्य को फल मिलेगा।

इन चिमगादड़ों का अर्थ है कि प्रत्येक मनुष्य को फल नहीं मिलेगा बल्कि हर (प्रत्येक में से) एक एक मनुष्य को फल मिलेगा, बाकियों को नहीं। पाठक ! देखा आपने गड़बड़झाला में गोरखधन्धा।

(17) ऋषि पाठ = इस पहाड़ को मार्ग में से हटा देवें, यदि उनके हटाने से हट जाय, तो भी पूरा विश्वास नहीं, किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हटा सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास 'ईमान' अर्थात् धर्म का ईसाइयों में नहीं है।

अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 347) में उपरोक्त चारों जगह 'हट' का 'हठ' कर दिया।

समीक्षा –यदि 'हट' ठीक नहीं था तो भूमिका पृष्ठ सात पर 'हठ' का 'हट' क्यों किया था। वैसे 'हट' और 'हठ' दोनों ही संस्कृत के धातु हैं। दोनों में से प्रत्येक का प्रयोग ठीक है। परन्तु इन माया के मजदूरों ने तो महर्षि दयानन्द के विरोध करने का

हठ कसकर पकड़ रक्खा है। क्या करें बेचारे, गुरूदक्षिणा जो देनी है अन्यथा कृतघ्न कहलायेंगे।

(18) वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 352) में 'बाना' शब्द को 'बागा' करके बाइबल का इतिहास नष्ट कर दिया।

(19) ऋषि पाठ ='ग्यारह शिष्य गालील में उस पर्वत पर गये जो यीशु ने उन्हें बताया था।'

झज्जरी अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ऋषि पाठ के 'पर' का 'में' कर दिया।

समीक्षा–जैसे जल भूमि के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है वैसे ही ग्यारह शिष्य पर्वत में समा गये होंगे। बिना सिर पैर की बातें लिखते हुए इन्हें शर्म भी नहीं आती।

(20) ऋषि पाठ ='एक पुस्तक देखा। यह पुस्तक खोलने योग्य कौन है।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 500) और सिद्धान्ती में पाठ ='एक पुस्तक देखा। यह पुस्तकें खोलने योग्य कौन है।'

समीक्षा – पहले वाक्य में 'पुस्तक' एकवचन में लिखकर उसी पुस्तक को दूसरे वाक्य में 'पुस्तकें' बहुवचन में लिखना अपनी अक्ल की गैरहाजरी को दिखाना है और फिर 'पुस्तकें' बहुवचन के पहले एकवचन का सर्वनाम 'यह' लगाना तो सब तरह से सिद्ध कर रहा है कि इन दोनों को जल्दी से जल्दी फटाफट अमृतसर के पागलखाने में दाखिल कर देना चाहिये।

(21) ऋषि पाठ = 'भला कुछ तो बुद्धि काम में लाते।'

वेदानन्दी (पृष्ठ 501) और सिद्धान्ती में पाठ = 'भला कुछ तो बुद्धि लाते।''

समीक्षा– इन मतंगड़ों ने यह नहीं लिखा कि बुद्धि कहां से लाते।

बाजार से लाते या किसी के घर से लाते। बादाम लाते या बेदाम लाते। और कुछ बुद्धि लाते तो इसका मतलब है बुद्धि कुछ (थोड़ी सी) भी नहीं थी। यह सच है कि जो दूसरों की कमियों को ही देखते रहते हैं उनके पास कुछ बुद्धि भी नहीं रहती। ऐसे ही ये दोनों पत्थर बुद्धि के हैं। एक कमाल हो गया और धोती फटकर रूमाल हो गया। अर्थात् ऋषि पाठ से 'काम में' ये दो शब्द हटाकर वाक्य का अर्थ सर्वथा उलटा कर दिया। ऋषि वाक्य का अर्थ है कि बुद्धि तो थी पर बुद्धि को काम में नहीं लाये और इन भतंगडों के वाक्य का अर्थ बना कि बुद्धि थोड़ी सी भी नहीं थी, कुछ तो ले आते। मेरा विचार है कि जब ये दोनों महात्मा नरक लोक में कीड़े मकोड़ों की योनि में इन कुकर्मों के दुःखरूप फल भोगकर वापस आयेंगे तब कुछ तो बुद्धि लायेंगे।

(22) ऋषि पाठ = उनमें अविद्या जितनी कहें उतनी ही थोड़ी है।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ =उनमें अविद्या जितनी थोड़ी कहें उतनी ही थोड़ी है।

समीक्षा –दैवकरणि ने उपरोक्त ऋषि पाठ में 'थोड़ी' शब्द बढ़ाकर वाक्य का अर्थ उलटा कर दिया। ऋषि पाठ का अर्थ = जितनी कहें अर्थात् जितनी ज्यादा कहें और इन 'विनाश काले विपरीत बुद्धि' वालों का अर्थ = जितनी थोड़ी कहें अर्थात् जितनी थोड़ी से थोड़ी कहें। पाठक! इन गधे राजा जी का बुरा मत मानना क्योंकि–

जैसी जाकी बुद्धि है तैसी कहै बनाय।
वाको बुरा न मानिये और कहां से लाय।।

(23) ऋषि पाठ = 'जंगली'
झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'जांगल'
समीक्षा – आसान छोड़ मुश्किल को ध्यावे।

आसान रहे न मुश्किल थ्यावे।।

सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने लिखा है, "महर्षि लोगों का आशय जहां तक हो सके वहां तक सुगम और जिसके ग्रहण में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहां तक बने वहां तक कठिन रचना करनी, जिसको बड़े परिश्रम से पढ़के अल्प लाभ उठा सकें जैसे पहाड़ का खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्ष ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना।"

पाठक ! देखी आपने क्षुद्राशयों की क्षुद्र मनसा।

(24) ऋषि पाठ = उसने अपना दाहिना पांव समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में से उपरोक्त वाक्य का 'पांव' निकाल कर उसे धड़ाम से पृथ्वी पर गिरा दिया और सवाल खड़ा कर दिया कि पता नहीं उसने समुद्र पर क्या रक्खा और पृथिवी पर क्या रक्खा ? कहीं ऐसा तो नहीं है कि उसने अपना दाहिना कान काटकर समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा हो ?

(25) ऋषि पाठ = 'सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को लुभाने की हैं।'

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'लुभाने' की जगह 'भुलाने' करके सब को भुलाने में डालकर लखनऊ की 'भूल भुलैया' में फसा दिया।

(26) ऋषि पाठ = प्रसव की पीडा उसे लगी है और वह जनने को पीड़ित है।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = प्रसव की पीड उसे लगी है और वह जन्मे को पीड़ित है।

समीक्षा –'पीड़ा' का 'पीड़' लिखके दैवकरणि ने यह डींग मारी है कि यह महाशय पंजाबी भाषा के विशेषज्ञ हैं क्योंकि दोनों पंजाबों में 'पीड़ा' को 'पीड़' कहते हैं। जब अगले जन्म में इनको यह पीड़ा लगेगी तब भाषाओं की अदल बदल भूल जायेंगे। दूसरे 'जनने को' 'जन्मे' करके घापटघोल मचा दिया । जैसे 'जनने को' का अर्थ है जन्म देने के लिए और 'जन्में को' का अर्थ है जन्म दिये हुए को। यह सब को मालूम है कि जन्म देने के बाद कोई पीड़ित नहीं होती । हां, यदि यह अदल बदल करने वाला जन्म देने के बाद पीड़ित हुआ है तो यह उसका अपना अनुभव है। इसको कहते है, स्वानुभूत प्रसव पीड़ा। यह तो वह स्वयं ही जानते हैं। औरों को क्या पता। क्योंकि

जिसके कभी न फटी बिवाई
वो क्या जाने पीड़ पराई।।
सत्यार्थप्रकाश भ्रष्ट करी कराई।
इसीलिये तो हो रही है जगत हंसाई।।

(27) झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 359) में क्रमांक 130 के समीक्ष्य में एक बार और इसी की समीक्षा में भी एक बार 'सियोन पर्वत' को 'सिहोर पर्वत' लिखकर बाइबल के इतिहास को बदल दिया।

समीक्षा – बाइबल का अनुवाद सैकड़ों भाषाओं में हुआ है। आज तक किसी भी अनुवादक ने ऐसी नफरत भरी हरकत नहीं की। यह महाघिनौना कार्य तो शेर की खाल ओढ़े हुए नकली आर्य सिंह ही कर सकते हैं।

(28) ऋषि पाठ =''एक बात में दोनों तो सच्चे हो ही नहीं सकते।''

ताम्रपत्रानुसारी और भगवती में 'संच्चे' का 'सच्चा' लिखकर बागड़ी भाषा जानने का अपना सर्टीफिकेट दिखा रहे हैं।

(29) ऋषि पाठ ='देखो स्वर्ग में साक्षी के तम्बू का मन्दिर खोला गया।' झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ ='देखो स्वर्ग में साक्षी के मन्दिर का तम्बू खोला गया।'

समीक्षा–हेराफेरी की अपनी पुरानी आदत दिखाकर उलटी गंगा पहाड़ चढ़ा दी और साक्षी के मन्दिर का तम्बू खोलकर अपने घर ले गये। अब कौन इनकी पूंछ उखाड़ेगा।

(30) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = झाड़ी में खड़ा करके कहा कि "आँख मीच लो। जब मैं कहूँ तब खोलना और फिर जब कहूँ तभी मीच लो। जो न मीचेगा वह अन्धा हो जायेगा।"

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त तीनों जगह 'मीच' का 'बींच' लिख दिया।

समीक्षा–हिन्दी की डिक्शनरि में 'बींच' कोई शब्द नहीं है। इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं ने औरों को 'आँख मीच लो, आँख मीच लो' कहते कहते अपनी भी विद्या और बुद्धि की आँख मीच ली अर्थात् अपने ज्ञाननेत्र फोड़ लिये।



19 चतुर्दश समुल्लास के भ्रष्टीकरण

चतुर्दश समुल्लास में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या=

1.	वेदानन्दी में	=	399
2.	ताम्रपत्रानुसारी में	=	199
3.	झज्जरी में	=	1179
4.	अजमेरी में	=	1192
5.	भगवती में	=	1404
6.	सिद्धान्ती में	=	399

मुसाफिर उस वक्त हिम्मत हारता है अक्सर।
जब रह जाती है मंजिल दो चार कदम पर।।

दश महीने बीत गये। पन्द्रह जुलाई सन् 2003 ई0 में भगवती लेजर प्रिन्ट्स, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के दर्शन हुए थे। इसको पढ़ने लगा तो इसे अत्यन्त भ्रष्ट किया हुआ पाया। आर्ष सत्यार्थप्रकाश से भगवती के प्रत्येक शब्द का मिलान किया। तत्पश्चात् ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी, वेदानन्दी और सिद्धान्ती का मिलान भी किया। मिलान करते समय साथ साथ भ्रष्टीकरणों पर निशान लगाता जाता था। फिर उक्त छः सत्यार्थप्रकाशों के भ्रष्टीकरणों की गिनती की। प्रत्येक समुल्लास के भ्रष्टीकरणों की संख्या अलग अलग लिखकर सब का टोटल किया। फिर यह भाण्डाफोड़ पुस्तक लिखने लगा। प्रत्येक पाठ को लिखना आरम्भ करने से पहले इसके लिये समीक्षा योग्य कुछ विषय (पाइन्टस) छांट कर एक कागज पर अलग से क्रमवार लिख लेता। फिर छांटे हुए विषयों की क्रमशः समीक्षा करके अगले पाठ के लिये मसौदा (ड्राफ्ट, प्रारूप) बना कर यह धर्मयात्रा आरम्भ कर देता। ऐसे करते करते यहां तक आ पहुँचा। कल जब सूर्यदेव अस्ताचल के समीप था तो कान

खुजलाते हुए लेखनी हाथ से खिसक कर नीचे गिर गई। मैं पैन की तरफ देखकर सोचने लगा कि पैन मेरे से बिछुड़ गया या मैं कलम से बिछुड़ गया। अचानक बहुत समय पहले की बात याद आई। जीवन का सफर करते करते रास्ते में एक राही मिला था। ऐसे राही को जीवन साथी कहते हैं। जीवन साथी कई वर्ष पहले मुझे छोड़कर चला गया, मुझ से बिछुड़ गया। ऐसा तो होता ही है क्योंकि :–

जीवन के सफर में राही मिलते हैं बिछुड़ जाने को ।
दे जाते हैं यादें तनहाई में तड़फाने को।।

लेकिन यह पैन मुझ से क्यों बिछुड़ गया। मैंने अपना अन्तर टटोला। हिम्मत हारने के कुछ लक्षण दिखाई दिये। मैं चट से समझ गया कि भाण्ड़ाफोड़ की यात्रा पूरी होने वाली है। इसका डैस्टीनेशन, गन्तव्यस्थान आने ही वाला है। क्योंकि :–

आदमी उस वक्त हिम्मत हारता है अक्सर।
जब रह जाती है मंजिल दो चार कदम पर।।

मैंने हिम्मत बटोर कर नीचे गिरी हुई लेखनी उठाई और कुछ शेष रहे भ्रष्टीकरणों का भाण्डा फोड़ना शुरु कर दिया।

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश के चौदहवें समुल्लास में समीक्षा योग्य विषयों की क्रमांक संख्या 161(एक सौ इकसठ) है परन्तु (i) झज्जरी में 156 और 157 संख्या वाले विषयों को एक में ही मिलाने के बाद भी विषयों की क्रमांक संख्या 171 (एक सौ इकहत्तर) है अर्थात् झज्जरी में दश समीक्ष्य विषय और इनकी समीक्षाएं बढ़ा दी हैं। अतः ये दश प्रक्षिप्त हैं।

(ii) अजमेरी तथा भगवती में उपरोक्त संख्या 172 (एक सौ बहत्तर) है अर्थात् इन दोनों में ग्यारह ग्यारह विषय और इनकी समीक्षायें प्रक्षिप्त हैं, बाद में मिलाई हैं। ये प्रक्षिप्त विषय स्वामी दयानन्द

द्वारा दिये हुए नहीं हैं।

(iii) कमाल की बात तो यह है कि उपरोक्त तीनों सत्यार्थप्रकाशों और ताम्रपत्रानुसारी का सम्पादक विरजानन्द दैवकरणि उक्त चारों को मूलप्रति से मिलान करके छपवाने की बात लिखकर भी ताम्रपत्रानुसारी के समीक्ष्य विषयों की संख्या 161 (एक सौ इकसठ) ही दे रहा है जो कि आर्ष सत्यार्थप्रकाश अनुसार बिल्कुल ठीक है।

(iv) वेदानन्दी और सिद्धान्ती में उपरोक्त संख्या 159 (एक सौ ऊनसठ) है। इन दोनों महाशयों ने दो दो अपनी गान्ठ के भी खो दिये। 'चौब्बे गये थे छब्बे बनने। पर पल्ले के दो देकर दूबे बनकर आ गये।

(2) झज्जरी, अजमेरी और भगवती इन तीनों में परस्पर कुछ कुछ भिन्नता रखकर 229(दो सौ उनतीस) आयतों के पते बदल दिये, कुछ नये अंक लिख दिये तथा कुछ छोड़ दिये। इस मिलावट, हटावट, बदलावट और टहलावत इत्यादि के पतों से जब कुरान में ये विषय नहीं मिलते तब महर्षि दयानन्द सरस्वती झूठा सिद्ध हो जाता है। इन महापापी कृतघ्नों ने अपना विद्या पिता भी झूठा बना दिया।

(3) बहुत से पैरे आगे पीछे कर दिये उदाहरण के लिये देखिये क्रमांक 156 की समीक्षा में प्रथम आयत की कहानी की नौ लाइनें लिखकर इसे अधूरी छोड़कर दूसरी आयत की कहानी लिख दी। इसके बाद पहली आयत की अधूरी कहानी की शेष दश लाइनें लिखीं। और अजमेरी में इसी 156 की समीक्षा में दूसरी आयत की समीक्षा की ही नहीं। यह समीक्षा दश लाइनों की बनती है जो छोड़ ही दी।

(4) अनेकों जगह कई कई लाइनें तथा कई पैरे छोड़ दिये।

(5) नये पैरे बनाकर कई पैरे प्रक्षिप्त कर दिये।

(6) अनेकों पैरे अत्यधिक भ्रष्ट कर दिये। जिनमें दयानन्द के शब्द तो गोता मारने पर कहीं कहीं ही मिलते हैं।

(7) कई जगह फुट नोट (पाद टिप्पणियां) छोड़ दिये।

(8) झज्जरी पृष्ठ 1113 पर क्रमांक 156 का समीक्ष्य सारा छोड़कर इसी क्रमांक 156 पर क्रमांक 157 का पूरा समीक्ष्य दे दिया और इसकी समीक्षा में पहले तो उक्त छोड़े हुए समीक्ष्य की प्रथम आयत की केवल दूसरी कहानी आधी ही दी अर्थात् नौ लाइनें छोड़कर शेष दश लाइनें दे दीं। तत्पश्चात् इसी के नीचे क्रमांक 157 के समीक्ष्य की पूरी समीक्षा दे दी। पाठक ! इसे ग्रेट घुटाला कहो या महाघपला । बात एक ही है।

(9) वेदानन्दी और सिद्धान्ती में क्रमांक 15 से 23 के विषय आगे के पीछे और पीछे के आगे करके महामिश्रण कर दिया तथा क्रमांक 17 को उठाकर 14 में मिला दिया। आर्ष सत्यार्थप्रकाश का क्रमांक 46 का समीक्ष्य विषय और समीक्षा वेदानन्दी और सिद्धान्ती दोनों से ही निकाल दिये इन जादूगरों ने।

(10) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ =
'इत्यनुभूमिका' = इति अनुभूमिका।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ ='इति भूमिका।

समीक्षा –किसी गांव का एक गधे वाला अपना गधा लेकर बाजार से बनोले की बोरी खरीदने गया। जब वह वापस अपने गांव को आ रहा था तब रास्ते में दोपहर हो गई। गधे वाले ने सोचा कि इस बड़ के पेड़ के नीचे दोपहरी में विश्राम करना चाहिये। घर से लाया हुआ खाना खांऊगा और गधे को भी घर से लाया हुआ चने का सूखा चारा खिलाऊंगा। उस आदमी ने गधे पर से बोरी उतार दी और घर से लाया हुआ चने का सूखा चारा गधे के सामने रखकर कहा, " खूब जीम लिये खूब।" गधे ने आगे लपक कर सूखे चारे पर अपना मुंह रक्खा और एक दम मुंह उठा पीछे हटकर खड़ा हो गया। उस आदमी ने प्यार से कहा, "अरे भैया ! जीम ले।" गधे ने चारों तरफ देखा। सावन का महीना है। चारों

तरफ हरी हरी घास और चरी खड़ी है। फिर गधा चारे की तरफ देखकर रोकर गाने लगा–

अरे हाय हाय ये मजबूरी। ये मौसम और ये दूरी।
तेरा दो पैसों का सूखा चारा खड़ी चारों तरफ गलूरी।।

गधे वाला समझ गया कि चारों तरफ हरा चारा खड़ा देखकर सूखे चारे को नहीं खायेगा। उस आदमी ने एक तरकीब लड़ाई । उसने चारे को उठाया और इसे हरी फसल में छुपाकर वापस आ गया। गधा यह नाटक देख रहा था। गधे वाले ने अपनी जेब से हरा चश्मा निकाल कर गधे की आँखों पर लगा दिया। फिर वह फसल के अन्दर जाकर वही सूखा चारा उठा लाया और गधे के सामने रखकर बोला, "लो भई ! सूखे के बदले हरा चारा ले आया हूँ। खूब जीम लिये खूब।" गधे को हरे चश्मे में से सूखा चारा भी हरा हरा दिखाई दिया। उसने सारा सूखा चारा हरा समझ कर खूब जीम लिया खूब।

पाठकवृन्द ! योग दर्शन 2–34 के अनुसार दुःख और अज्ञान (उलटा ज्ञान) पाप कर्मों के फल हैं। इन भ्रष्टीकरण कर्त्ताओं के पिछले जन्मों और इस जन्म में किये पाप कर्मों के फलस्वरूप परमात्मा ने इनकी बुद्धि की आँखों पर उलटे ज्ञान का हरा चश्मा चढ़ा रखा है जिससे इन्हें ऋषि ग्रन्थों की ठीक बातें भी गलत दीखती हैं और 'अनुभूमिका' की 'भूमिका' दीखती है। इनसे पूछिये कि श्रीमान् जीओ! यहां तो कोई भूमिका है ही नहीं तो आपने इति भूमिका अर्थात् भूमिका समाप्ति क्यों लिख दिया? जब कोई भूमिका शुरू ही नहीं हुई तो इति (खतम) कहां से हुई? भूमिका तो स्वामी दयानन्द ने प्रथम समुल्लास से पहले एक ही लिखी थी जिसके अन्त में लिखा हुआ है 'इति भूमिका।' यहां तो केवल अनुभूमिका है और एक नहीं बल्कि–उत्तरार्द्ध की चार अनुभूमिकायें हैं। अन्तिम चौथी अनुभूमिका के बाद में 'इति अनुभूमिका

लिखने का मतलब है कि 'अनुभूमिका प्रकरण' समाप्त हुआ। यों ही अक्ल के पीछे लट्ठ लेकर पड़े रहना विद्वानों को शोभा नहीं देता।

(11) ऋषि पाठ = " आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" ऐसा न कहता।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ =' मैं परमेश्वर के नाम पर आरम्भ करता हूं' ऐसा न कहता।

समीक्षा– उपरोक्त तीनों सत्यार्थप्रकाशों में उक्त पाठ से तीन लाइन ऊपर इन्होंने स्वयं भी आयत नम्बर 1 में लिखा है, "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के" और यहां 'अल्लाह' की जगह 'परमेश्वर' लिखा तथा वाक्य के दूसरे शब्द भी स्वयं ही बदलकर कुरानकर्त्ता पर इलजाम लगा रहे हैं कि 'ऐसा न कहता" यह तो ऐसी ही बात हुई जैसे कोई भेड़िया भेड़ के बच्चे को खाने के लिये कहे कि 'अबे तूने मुझे दो साल पहले गाली क्यों दी थी ?' बच्चे ने कहा 'ताऊ, मेरा जन्म हुए कुल छः महीने ही हुए हैं।' जब कुरानकर्त्ता ने तुम्हारे अनुसार लिखा ही नहीं तो आप झूठ मूठ लिखकर उन पर क्यों झूठा इलजाम लगा रहे हो।

घर में तेल न त्याई।
मर हे राण्ड गुलगुलें आई।।

(12) ऋषि पाठ ='किसी के मन पर मोहर लगाना।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'मोहर' के स्थान पर 'ताला' लिख दिया।

समीक्षा –अरे भाई कभी कुरान खोल कर भी पढ़ लिया करो ताकि झूठ का पाप सिर पर न लेना पडे। 'मोहर' के बदले 'ताला' लिखकर अपनी अक्ल को ताला क्यों लगा लिया है।

(13) ऋषि पाठ = 'अपने साक्षी लोगों को पुकारो।'
झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ ='अपने को पुकारो।'

समीक्षा–अरे हजरतो ! अपने आप को भी कोई पुकारता है। यदि आप का मतलब है कि अपने आदमियों को पुकारो। अपने तो स्त्री, पुरूष, बालक और पशु आदि बहुत से हैं। कौन से अपने को पुकारें। ऋषि का पाठ ही सर्वांश में पूर्ण और सही है।

(14) ऋषि पाठ = उनके वास्ते बहिश्तें हैं जिनके नीचे से चलती हैं नहरें।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त ' के नीचे से" को हटाकर इनकी जगह 'में' कर दिया।

समीक्षा–परमात्मा इन दुष्टात्माओं को बहिश्त (स्वर्ग) में घुसने नहीं देगा अन्यथा मैं इनको वहां ले जाकर दिखा देता कि नहरें बहिश्तों में नहीं चलती बल्कि बहिश्तों के नीचे से चलती हैं। ऐसी बड़ी भारी गलत बात लिखने से पहले कुछ पैसे कुरान खरीदने में लगा देते और कुरान में देखकर लिखते तो ऐसी जग हंसाई न होती। मेरे विचार में इस किस्म के आप सब लोग बेइज्जती प्रूफ हो चुके हो।

(15) ऋषि पाठ = कभी कभी खुदा भी किसी को गुमराह कर देता है। खुदा ने ये बातें शैतान से सीखी होंगी और शैतान ने खुदा से, क्योंकि बिना खुदा के शैतान का उस्ताद और कोई नहीं हो सकता।

भगवती में उपरोक्त आखरी 'शैतान' की जगह 'फरिश्तों' लिख दिया।

समीक्षा– सारी कुरान को छान मारो। बहकाने में फरिश्तों का नाम कहीं नहीं मिलेगा। मेरे विचार में दैवकरणि 'फरिश्ता' का अर्थ भी 'शैतान' ही समझता है। अगर यह भाई मुझको ट्यूशन फीस दे तो मैं इसे बता सकता हूँ कि 'फरिश्ता' शब्द का अर्थ 'देवता या देवदूत' है और सारे सन्दर्भ को पढ़कर देखो। फरिश्तों

का तो वहां प्रकरण ही नहीं है। आपने महाझूठ लिखकर गलती, नहीं, बलन्डर किया है कि मूलप्रति के एक एक अक्षर से मिलान करके महर्षि के वाक्यों को ज्यों का त्यों रक्खा है। क्या महर्षि मूलप्रति में प्रकरण विरूद्ध लिख सकते हैं ? कभी नहीं ! कभी नहीं !! कभी प्रकरण विरूद्ध नहीं लिख सकते।

(16) ऋषि पाठ ='ये निशानियां'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ = 'यह निशानियां'

समीक्षा–इसे कहते हैं आँखों वाला अन्धा। 'यह' एक वचन और साथ वाला 'निशानियां' बहुवचन। भाई दैवकरणि ! दिन में रात और रात में दिन कभी मिल नहीं सकता। ऋषि पाठ ही माननीय है।

(17) ऋषि पाठ = 'जो फरिश्तों, पैगम्बरों का शत्रु है, अल्लाह भी ऐसे काफिरों का शत्रु है। समीक्षक –क्या जो औरों का शत्रु वह खुदा का भी शत्रु है ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'औरों' की जगह शैतान कर दिया।

समीक्षा–अब पक्कम पक्का सिद्ध हो गया कि दैवकरणि 'फरिश्तों पैगम्बरों' का अर्थ 'शैतान' ही समझता है। अरे भाई साहब हिन्दी की डिक्शनरि में तो ऋषि पाठ में उक्त दोनों शब्दों का अर्थ 'देवदूत' अर्थात् खुदा का सन्देशा लाने वाला है। तथा ऋषि का 'औरों' शब्द से अर्थ ऊपर लिखे फरिश्तों, पैगम्बरों से है जो खुदा से और अर्थात् अन्य हैं। आपको सलाह दी जाती है कि 'ओ३म्' का जप किया करो और परमात्मा से सद्बुद्धि की प्रार्थना किया करो।

भज ओम नाम तू सुबह शाम क्यों भाङ्ग भ्रम की खा राखी।
बार बार क्यों गाह्वै सै या गार बहुत बै गाद् राखी।।

(18) ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी और भगवती (पुष्ठ 372) में दो प्रश्नों के पूर्वपक्षी और इन दोनों के उत्तरों के उत्तरपक्षी बनाकर हिमालय के सब पक्षी उड़ा दिये और दयानन्द की गलतियों का पक्का सुधार कर दिया। क्योंकि इनको अपने गुरू की ग़लतियां अच्छी नहीं लगी। अतः मजबूरी में दयानन्द का सुधार करना ही पड़ा। खैर, यह इनका आपसी मामला है। गुरू चेला कैसे ही रहें। हमें क्या आपत्ति ऐतराज ? जब गुरू ऐसे मूर्ख शिष्यों को बोगस समझता था तो शिष्य अपना बदला क्यों न लेवें।

(19) ऋषि पाठ = वैसे ही मुहम्मद साहब ने छोटे बुत् को मुसलमानों के मत से निकाला, परन्तु बड़ा बुत् जो कि पहाड़ सदृश मक्के की मस्जिद है, वह सब मुसलमानों के मत में प्रविष्ट करा दी।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त दोनों 'मत' की जगह 'मन' लिखकर मन को मलीन कर लिया। इसीलिये इनको ज्ञान, कर्म, उपासना द्वारा मन को शुद्ध करना पड़ेगा जिससे यथार्थ ज्ञान प्राप्त होकर मन की उड़ान बन्ध हो सके। कहा भी है।

मन पंछी तब लग उड़ै विषय वासना माहीं।
ज्ञान बाज की झपट में जब लग आवै नाहीं।।

(20) ऋषि पाठ = 'तुम पर मुर्दार, लोहू और गोश्त सूअर का हराम है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त में 'तुम' के बाद 'को' और जोड़ कर वाक्य को सर्वथा अर्थहीन बना दिया।

(21) ऋषि पाठ =खुदा जिसको चाहे अनन्त रिज़क देवे।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'रिज़क' को 'आनन्द' लिखकर दयानन्द के सुधार की खुशी में आनन्द ले रहे हैं। ये लोग 'रिज़क' (रोजी रोटी) को ही आनन्द समझ बैठे हैं जबकि 'रिज़क' आनन्द का साधन मात्र है, आनन्द नहीं।

(22) ऋषि पाठ = ' जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखा और जैसा

जिस तरह चाहो जाओ यह मनुष्यों को विषयी करने का कारण है।'

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ=जो यह स्त्रियों को खेती के तुल्य लिखना और जैसा जिस ओर से चाहो उनसे बर्तो यह विषयी और पुंसि मैथुन का भी कारण हो सकता है।

समीक्षा–उपरोक्त ऋषि पाठ में ग्यारह शब्द नये मिला दिये और पांच शब्द पाठ से हटा दिये तथा एक शब्द में परिवर्तन कर दिया। एक ही वाक्य में 17 (सतरह) भ्रष्टीकरण कर दिये। यह पूरे सत्यार्थप्रकाश के लिये एक नमूना है अर्थात् प्रायः पूरा सत्यार्थप्रकाश इसी ढङ्ग से बिगाड़ दिया है और एक नहीं बल्कि चार सत्यार्थप्रकाश तो अकेले विरजानन्द दैवकरणि ने खराब कर दिये।

दूसरे हिन्दी की डिक्शनरि में 'पुंस' (पुरूष) शब्द तो है, पर 'पुंसि' कोई शब्द नहीं है।

तीसरे महर्षि ने प्राकृतिक विषयीपन का जिक्र किया है परन्तु इस महाशय ने ऋषि पाठ में अप्राकृतिक व्यभिचार घुसेड़ दिया है। इन्होंने यह अपनी गन्दी मनोवृत्ति का प्रदर्शन किया है।

(23) ऋषि पाठ = 'क्या, वह व्यापारादि में मग्न होने से टोटे में फंस गया था जो उधार लेने लगा।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त टोटे की जगह 'तोटा' बिल्कुल ही अप्रचलित शब्द लिखकर यह बता दिया कि चाहे कोई समझे या न समझे, पर इन्हें क्या मतलब चाहे कोई भाड़ में गिरे। चाहे कोई मरे वा जीवे । चाहे घोल बताशे पीवे।। इन्हें तो बस ऋषि ग्रन्थों को भ्रष्ट करने से मतलब है।

(24) ऋषि पाठ = 'वह जिसको चाहेगा क्षमा करेगा, जिसको चाहेगा दण्ड देगा'

झज्जरी और भगवती में वाक्य का उत्तरार्द्ध लिखा–'जिसको चाहे पापी बनावेगा।' और अजमेरी में इसी बाद के वाक्य खण्ड को ऐसे लिखा–'जिसको चाहे पानी बनावेगा।'

समीक्षा–ऋषि पाठ के वाक्य की रचना कह रही है कि क्षमा का विरोधी दण्ड ही है, पाप नहीं। अतः ऋषि पाठ ही ठीक है। अजमेरी वाले ने तो कमाल ही कर दिया कि परमात्मा जिसको चाहेगा पानी बनावेगा। यदि यह सच है तो वह इन भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं को पानी क्यों नहीं बनाता ताकि ऋषि ग्रन्थ भ्रष्ट होने से बच जायें।

(25) ऋषि पाठ ='ईश्वर ने धोखा दिया, ईश्वर बहुत मकर करने वाला है।'

समीक्षक –जो धोखा देता और मकर करता है वह ईश्वर नहीं हो सकता।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'देता' को 'खाता' कर दिया तथा ताम्रपत्रानुसारी एवं सिद्धान्ती का पाठ भी देखिये–"जो धोखा खाता अर्थात् छल और दम्भ करता है।"

समीक्षा –'धोखा खाता' इसलिये गलत है कि समीक्षा से पहले आयत में लिखा है 'ईश्वर ने धोखा दिया।' अतः 'धोखा दिया' ही ठीक है। यदि आयत में 'ईश्वर ने धोखा खाया' होता तो 'धोखा खाता' चल सकता था। बीज के अनुसार ही वृक्ष होता है। बोये पेड़ बबूल के, आम कहां से खाये। दूसरे ताम्रपत्रानुसारी और सिद्धान्ती में धोखा खाने कां अर्थ छल और दम्भ करना लिखा सो सर्वथा ही गलत है। इन भ्रष्ट लोगों की मण्डली की परिभाषा देखिये–

मैं पहले तो समझता था कि मण्डली है समझदारों की।
पर इनकी करनी मुझे बताती है कि मण्डली है मूर्ख यारों की।।

(26) ऋषि पाठ = 'अल्लाह तुम को परोक्षज्ञ नहीं करता।'

ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'परोक्षज्ञ' को 'सर्वज्ञ' लिख दिया

समीक्षा—'सर्वज्ञ' तो सर्वव्यापक परमात्मा ही है। हां, परमात्मा योगियों को 'परोक्षज्ञ' (छुपे हुए के ज्ञाता) कर देता है। अतः ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(27) ऋषि पाठ = 'एक त्रसरेणु की बराबर भी अल्लाह अन्याय नहीं करता और जो भलाई होवे उसका दुगुण करेगा। समीक्षक—जो एक त्रसरेणु भी खुदा अन्याय नहीं करता तो पुण्य को द्विगुण क्यों देता ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त पहले 'त्रसरेणु' की जगह 'परमाणु' तथा दूसरे 'त्रसरेणु' की जगह 'अणु' लिख के अपनी महामूर्खता का परिचय दे ही दिया।

समीक्षा—उपरोक्त परिवर्तन से मालूम हुआ कि दैवकरणि परमाणु अणु और त्रसरेणु को एक ही समझता है। जबकि यह तीनों पृथक–पृथक हैं। देखो सत्यार्थप्रकाश समुल्लास आठ (प्रश्न) जगत की उत्पत्ति में कितना समय व्यतीत हुआ ? के उत्तर में 'साठ परमाणुओं के मिले हुए का नाम अणु, दो अणु का एक द्वयणुक, तीन द्वयणुक का त्रसरेणु'। ये कागजी पहलवान यों ही बेकार में अपना लङ्गोट घुमाते फिर रहे हैं। इन्हें आता जाता कुछ नहीं । निरे मूर्ख हैं ।

(28) उपरोक्त संख्या (15) की तरह यहां भी झज्जरी, अजमेरी और भगवती (पृष्ठ 380) में शैतान की जगह 'फरिश्ता' लिख दिया जबकि प्रकरण शैतान का चल रहा है और इसी परिच्छेद में 'शैतान' शब्द चार बार आया भी है। मालूम होता है ये भ्रष्ट अपनी गलत हरकतों से बाज नहीं आयेंगे और अगर बाज आ भी गये तो

ये बेचारे किस चीज की कमाई खायेंगे।

(29) ऋषि पाठ ='जिसको वह गुमराह करे उसको कदापि मार्ग न पावेगा।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'कदापि' के स्थान पर 'कदाचिदपि' कर दिया।

समीक्षा–'कदाचिदपि' हिन्दी की डिकशनरि में कोई शब्द नहीं। कदाचित् (शायद) शब्द तो है। इसमें 'अपि' (भी) शब्द मिलाने से 'कदाचिदपि' शब्द बन गया। इसका अर्थ हुआ 'शायद भी' अर्थात् 'हो भी सके'। यह अर्थ उपरोक्त ऋषि पाठ से मेल नहीं खाता। अतः परिवर्तन गलत है। 'कदापि' का अर्थ है 'कभी भी' जो ऋषि पाठ के लिये सर्वथा समुचित है। अतः ऋषि का पाठ ही ठीक है।

(30) ऋषि पाठ ='तुम पर हराम किया गया दरिन्दे का खाया हुआ।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती का पाठ ='तुम पर हराम किया गया गोश्ते खाने वाले।'

समीक्षा–हिन्दी की डिक्शनरि में 'गोश्ते' कोई शब्द नहीं है। गोश्त (मांस) शब्द है। परन्तु यह प्रकरण के विरूद्ध है। अतः गलत है। कुरान का मतलब है कि दरिन्दे (मांसाहारी जानवर) का खाया हुआ शेष मुसलमानों को हराम है।'गोश्ते खाने वाले' का यहां कोई प्रसंग नहीं। अतः यह बेहूदा बकवास है।

(31) ऋषि पाठ='डरावे'

वेदानन्दी (पुष्ठ 540) और सिद्धान्ती का पाठ ='डरपावे'

समीक्षा–यह तो सच है कि डरपना =डरना और डरपाना= डराना तथा डरपावे =डरावे ये हिन्दी के शब्द हैं। परन्तु उपस्थित सज्जन गण! क्या आपको पता है कि इन दोनों महात्माओं ने 'डरावे' की जगह 'डरपावे' क्यों दिया है ?

उत्तर –हां, हमको पता है। यह इसीलिये दिया है कि सारी दुनियां जान

जावे कि स्वामी वेदानन्द और जगदेव सिंह सिद्धान्ती ये दोनों ही महर्षि दयानन्द से ज्यादा कठिन भाषा जानते हैं।

एक भाषण देने वाला अपने लेक्चर में बहुत कठिन भाषा बोल रहा था। बीच में लोगों ने पुकारा कि हमारे पल्ले तो कुछ भी नहीं पड़ता। व्याख्यान देने वाले ने कहा कि यदि तुम्हारे पल्ले पड़ेगा तो मेरे पल्ले क्या रहेगा ? इसी प्रकार पढ़ने वालों के पल्ले चाहे कुछ न पड़े, परन्तु इनकी आन बान शान स्वामी दयानन्द से ऊँची रहनी चाहिये।

(32) ऋषि पाठ= 'अपने मालिक को याद कर धीमी आवाज़ से।'

समीक्षक –कहीं कहीं कुरान में लिखा हैं कि बड़ी आवाज़ से अपने मालिक को पुकार।"

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त दोनों स्थानों की 'आवाज़' की जगह 'वाज़' लिख दिया।

समीक्षा–लिखने वाला कुछ भी लिख दे। किस किस को वाज़ दें कि यहां पर आवाज़ ही ठीक है। देखिये हिन्दी में 'वाज़' का अर्थ = शिक्षा, उपदेश, सलाह। और 'आवाज़' का अर्थ = ध्वनि, स्वर, वचन, वाणी। इसलिये अर्थ और प्रसंग दोनों की दृष्टि से यहां पर 'आवाज़' ही ठीक है। जैसे–

आवाज़ देके हमें तुम बुलाओ।
मोहब्बत में इतना न हमको सताओ।।

(33) ऋषि पाठ= 'डरो अल्लाह से ।'

भगवती में पाठ = ' डरो अल्लाह से। डरो थप्पड़ लात से।'

समीक्षा = कहते हैं, हंसी हंसी में हसनगढ़ बस गया था। दैवकरणि ने तो शायद –'डरो थप्पड़ लात से' मजाक में लिखा हो। परन्तु इस बुद्धू सिंह को यह पता नहीं कि ऐसे अनुचित मजाक से कितनी बड़ी हानि हो गई है। इससे पूछिये कि यदि

अल्लाह (परमात्मा) के थप्पड़ लात हैं तो सिर, धड़ और पेट आदि भी होंगे इसने निराकार सर्वव्यापक परमात्मा को शरीर धारी साकार और एक देशी बना दिया। यों मजाक की आड़ में नास्तिक मत और पोपलीला का प्रचार करना महापाप है।

(34) ऋषि पाठ = 'यदि काफिर वे ही हैं कि जो नमाज़ आदि को न मानें तो यह बात केवल पक्षपात की ठहरे।'

अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'नमाज़' की जगह 'निवाज़' कर दिया।

समीक्षा–निवाज़ का अर्थ =दयालु, कृपालु, उपकारक।
नमाज़ का अर्थ =ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, उपासना,। प्रकरणानुसार नमाज़ ही ठीक है। यहां 'निवाज़' लिखना लड़कपना ही दिखाना है।

(35) ऋषि पाठ = कहा यह ऊँटनी है वास्ते उसके , पानी पीना है एक बार।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'पीना' की जगह 'पाना' कर दिया।

समीक्षा–'पाना' के दो अर्थ हैं – एक जैसे सिंहमार पाना अर्थात् सिंहमारों का मोहल्ला, वार्ड। और 'पाना' का दूसरा अर्थ है =मत पाओ, प्राप्त मत करो। उपरोक्त पानी के साथ इन दोनों अर्थों में से कोई सा भी ठीक नही लगता। अतः पानी के साथ 'पीना' शब्द ही ठीक जंचता है। इसीलिये तो ऋषि पाठ ही ठीक है।

(36) ऋषि पाठ ='असावधानी'

अजमेरी और भवगती में ='असावधानीता' और झज्जरी में = 'असावधानता'

समीक्षा–हिन्दी की डिक्शनरि में न तो 'असावधानीता' है। और न

ही 'असावधानता' है बल्कि 'असावधानी' है। अतः ऋषि पाठ ही करैक्ट है।

(37) ऋषि पाठ = 'क्या नूह आदि पैगम्बरों ही को खुदा संसार में भेजता है ?'

झज्जरी और भगवती में उपरोक्त बहुवचन 'पैगम्बरों' का एकवचन ' पैगम्बर' लिख कर खुली आँखों वाले अन्धे कहलाये। जब नूह के साथ आदि लगा हुआ है तो बहुवचन आना चाहिये।

(38) ऋषि पाठ = 'निश्चय उपर तेरे लानत है मेरी दिन ज़ज़ा तक।'

झज्जरी, और भगवती में उपरोक्त ' ज़ज़ा' का 'ज़ज़ात' कर दिया।

समीक्षा–ययाति से बन गया जजाती, जजाती से बन गया जजात, जजात से बन गया जात और जात से बन गया जाट। राजा ययाति चान्द का बेटा था। इसलिये ययाति और उसके बाद के जाट आदि चन्द्रवंशी हैं। इसको ऐसे भी कहते हैं कि ययाति की सन्तान कहलाती हैं ययात्य, ययात्य से बन गया जजात्य, जजात्य से बन गया जात्य, जात्य से बन गया जात और जात से बन गया जाट।

परन्तु ऋषि पाठ में 'ज़ज़ात' हो ही नहीं सकता क्योंकि कुरान अरबी भाषा में है। ज़ज़ात न तो अरबी भाषा का है और न ही उर्दू या हिन्दी भाषा का है। यह तो दैवकरणि की कपोल कल्पना से निकला हुआ मनघड़न्त शब्द है। दो शब्द हैं सज़ा और ज़ज़ा। सज़ा का अर्थ = दण्ड और ज़ज़ा का अर्थ =क्षमा इत्यादि । इसलिये उपरोक्त पाठ में 'ज़ज़ा' ही ठीक है 'ज़ज़ात' गलत है।

(39) ऋषि पाठ ='गद्दी'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, झज्जरी, अजमेरी और भगवती में परिवर्तन ='गादी'

समीक्षा–गादी के दो अर्थ हैं। (1) गद्दी (2) मिठाई। उपरोक्त छः महापुरूषों का मतलब तो केवल ऋषि का विरोध करने से है। इनको यह चिन्ता नहीं कि लोग 'गादी' के अर्थों में उलझ जायेंगे। कोई मिठाई समझेगा कोई गद्दी। क्योंकि ऋषि ने 'गद्दी' के समीप ही 'मेवे' भी लिखा है। मेवे मिष्ठान्न का जोड़ा समझा जाता है। अतः अधिकतर लोग 'गादी' का अर्थ मिठाई ही लेंगे। दूसरे आसान शब्द की जगह कठिन शब्द का प्रयोग करना क्षुद्राशय और घमण्डी लोगों का काम है।

क्यों घमण्ड करे इनसान, घमण्ड से दूर हटे भगवान, घमण्डी मरा करै।

नम्रता गुण की खान, विनय से ऊँचा हो इनसान, दुःखों से तिरा करै।।

नर की अरू नल नीर की करि गति एक ही होय।
जेतो नीचो होई चलै तेतो ऊंचो होय।।

अब जैसे कोई 'गादड़' की जगह 'गारर' लिख दे तो महामूर्ख ही कहलायगा। इसलिये कि इन दोनों शब्दों का अर्थ एक होते हुए भी 'गारर' का अर्थ लोगों की समझ में नहीं आयगा। बेचारे डिक्शनरि देखते फिरेंगे और सब के पास डिक्शनरि होती भी नहीं। 'गारर' को गार (कीचड़) समझकर उसमें धँस जायेंगे। इसलिये भाई गादड़ लोगो 'गद्दी' को गद्दी ही रहने दो।

(40) ऋषि पाठ = 'अथवा बहिश्त की रहने वाली हैं।'
भगवती में पाठ ='अथवा बहिश्त की रहीस हैं।'

समीक्षा– 'रहीस' हिन्दी भाषा का शब्द नहीं है। अतः ऋषि का पाठ ही ठीक और आसान है। 'रहीस' को 'रईस' समझकर कोई लुटेरा लूट लेगा। अतः नफरती हरकतों से बाज आ जाओ रे कुदक्कड़ो!

(41) ऋषि पाठ = 'अपना पूर्वापर काम नियम विरुद्ध क्यों किया।'

वेदानन्दी, सिद्धान्ती, ताम्रपत्रानुसारी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'काम' शब्द छोड़कर सवाल खड़ा कर दिया कि नियम विरुद्ध क्या कर दिया ? अतः वाक्य अधूरा बना दिया। अधूरे मनुष्य अधूरे ही काम करते हैं। नीम हकीम खतरा जान।

(42) ऋषि पाठ = 'और कर देता है जिसको चाहे बांझ'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य से 'कर देता है' ये तीन शब्द छोड़कर वाक्य को अर्थहीन बना दिया।

(43) ऋषि पाठ ='यह कुरान किसी विद्वान् वा ईश्वर कृत है वा किसी अविद्वान् मतलब सिन्धु का बनाया ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य के अन्तिम दो शब्दों 'का बनाया' को 'की बनाई' करके पुल्लिंग वाक्य को स्त्रीलिंग में बना दिया।

समीक्षा–विरजानन्द दैवकरणि को आगे पीछे का लिखा हुआ याद नहीं रहता। इन्होंने जगह जगह अर्थात् अनेकों जगह अपनी स्मृति दोष के प्रदर्शन किये हैं। एक उदाहरण चख लिजिये। इसी भगवती के पृष्ठ 364 पर इन्होंने स्वयं सम्पादन किया कि 'यह कुरान खुदा का कहा है।' यहां पर कुरान को पुल्लिंग में देकर पृष्ठ 406 पर स्त्रीलिंग में देना या तो स्मृति दोष है या ज़ानबूझकर की गई गुस्ताखी है। परन्तु एक बात हो सकती है कि पृष्ठ 364 से पृष्ठ 406 तक आने में काफी समय लगा होगा। इस बीच में विज्ञान ने इतनी उन्नति तो कर ही ली होगी कि पुरुष से स्त्री बना सके। विज्ञान वालों से यह नुस्खा दैवकरणि ने लिखकर कुरान का लिंग बदल दिया मालूम होता है। यह तो बड़ा उपकारक नुस्खा है। आजकल पुरूषों की संख्या स्त्रियों से ज्यादा हो गई है। अतः बहुत से पुरूषों को बिना विवाह के ही जीवन बीताना पड़ रहा है। यदि अविवाहित पुरूषों में से आधे पुरूषों से स्त्रियां दैवकरणि बना देवे तो सब के घर बस जावें।

(44) ऋषि पाठ ='सौगन्ध'

वेदानन्दी (पृष्ठ 573–574) और ताम्रपत्रानुसारी में दो जगह 'सौगन्ध' का 'सौगन्द' कर दिया।

समीक्षा–इन्होंने इस परिवर्तन द्वारा अपना शुभ परिचय दिया है। दर्शन कीजिये।

सौगन्द =सौ+गन्द। सौ=शत्=असंख्य। 'गन्द' का अर्थ =गन्दगी का ढेर।

इस प्रकार सौगन्द का अर्थ हुआ 'गन्दगी के सैकड़ों ढेर'। इनके भ्रष्टीकरणों को देखकर निश्चित हो गया कि इनके मन में गन्दगी के असंख्यों अनगिनत ढेर भरे हुए हैं। यह हुआ इन श्रीमानों का शुभ परिचय। ऋषि का पाठ ही ठीक है। इनका परिवर्तन कतयी गलत है।

(45) ऋषि पाठ ='चढ़ते हैं फरिश्ते और रूह तर्फ उसकी।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'चढ़ते' का 'पढ़ते' कर दिया।

समीक्षा–आयत का अर्थ है कि खुदा जो सातवें आसमान पर रहता है उसकी रूह (आत्मा) की तरफ फरिश्ते (देवता) 'चढ़ते' हैं। राक्षस वहां नहीं पहुँच सकते।

यहां 'चढ़ते' की जगह 'पढ़ते' लगाना बिल्कुल ही बेमाने है।

(46) ऋषि पाठ = उनके पास सम्मन कबरों में क्योंकर पहुंचेंगे ?

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'पहुंचेंगे' भविष्यत् काल की जगह 'पहुंचा' भूतकाल कर दिया।

समीक्षा–देखो उपरोक्त ऋषि पाठ की आयत में भविष्यत् काल के लिये वर्णन है। इसीलिये ऋषि ने इस आयत की समीक्षा में भविष्यत् काल के लिये 'पहुंचेंगे' लिखा है। दैवकरणि का भूतकाल

का 'पहुंचा' गलत है। हां, हो सकता है कि ऐसा सम्मन दैवकरणि को बुलाने के लिये इनके पास पहुँच चुका हो । इसीलिये इन्होंने पहुँचा लिखा। यदि ये मुझे अग्रिम दक्षिणा दे दें तो मैं दैवकरणि का अन्त्येष्टि दाह संस्कार वैदिक विधि से करा दूंगा।

(47) ऋषि पाठ ='इस ऊंटनी के लेख से यह अनुमान होता है कि अरब देश में ऊंट ऊंटनी के सिवाय दूसरी सवारी कम होती है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'कम' की जगह 'नहीं' कर दिया।

समीक्षा–अरे साहब ! झूठा बनने से पहले अरब देश वालों से मोबाइल पर पूछ तो लिया होता कि उनके देश में ऊंट ऊंटनी के सिवाय दूसरी सवारी होती है या नहीं ।

(48) ऋषि पाठ = "हम बुलावेंगे फरिश्ते दोज़ख के को।"

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'के' को हवा में उड़ा कर यह शंका पैदा कर दी कि शायद दोज़ख (नरक) भी कोई फरिश्ता है। दैवकरणि जी ! यह फरिश्ता दोज़ख कौन सी चिड़िया का नाम है जिसे आप बुलावेंगे ?

(49) ऋषि पाठ = 'निश्चय उतारा हमने कुरान बीच रात कदर के।'

झज्जरी, अजमेरीं और भगवती में उपरोक्त 'कुरान' को हटाकर शंका पैदा कर दी कि पता नहीं कदर की रात के बीच में क्या उतारा है ?

(50) ऋषि पाठ = यों जो न रूकेगा अवश्य घसीटेंगे उसको हम साथ बालों माथे के।

वेदानन्दी में उपरोक्त वाक्य से 'बालों' शब्द हटा दिया।

समीक्षा–माथे का अर्थ है 'सिर'। अब पाठक ही बता देंगे कि सिर के बालों से पकड़ कर घसीटना बुद्धिमानी है या सिर पकड़ कर

घसीटना बुद्धिमानी है ?

(51) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ ='अब इस कुरान के विषय को लिख के बुद्धिमानों के सम्मुख स्थापित करता हूँ कि यह पुस्तक कैसा है ?'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'इस' शब्द को हटाकर इसके स्थान पर 'यह' शब्द धर दिया।

समीक्षा–किसी गांव में एक छाकटा बदमाश बूढ़ा था। वह अपने परिवार और सारे गांव को तंग करता रहता था। कभी किसी के खिलाफ पुलिस में झूठी रिपोर्ट कर देता कि उसके पास नाजायज पिस्तोल है। पुलिस उसकी खूब पिटाई करती। वह बूढ़ा कभी किन्हीं की एक दूसरे से झूठी चुगली करके उन्हें आपस में लड़ा देता और थाने में रिपोर्ट करने के लिये दोनों को उकसा देता। कभी कभी बूढ़ा किसी के झूठे मुकदमे में गवाह बन जाता। कभी यह टन खोपर बूढ़ा किसी लड़की की ससुराल में जाकर झूठी खबर दे देता कि लड़की का भाई मर गया है। जब वे रोते पीटते लड़की के गांव में आते तो बड़े दुःखी होते। परिवार वालों ने बूढ़े की कई बार धुनाई की, पर वह अपनी हरकतों से बाज नहीं आया। इस प्रकार सारा गांव और परिवार वाले बूढ़े से बहुत तंग थे।

अचानक बूढ़ा सख्त बीमार हो गया। लम्बी बिमारी के बाद बूढ़े के मरने का समय समीप आ गया। उसके बड़े लड़के ने पूछा, "बापू ! मरते समय आपकी कोई आखरी इच्छा हो तो बताओ।" बूढ़े ने कहा कि मैंने इस परिवार और सारे गांव को बहुत दुःख दिये हैं। इसका मुझे बहुत पछतावा है। अतः मैं चाहता हूँ कि जब मुझे अर्थी पर ले जाया जाय तब बड़े अपमान पूर्वक ले जाया जाय और उसका तरीका ऐसे करना कि अर्थी ले जाते समय मेरा मुंह मत ढ़कना और मेरे मुंह में एक लम्बा सा डण्डा खड़ा कर देना

ताकि सारा गांव देखे। सारे परिवार ने खुश होकर कहा, " बापू आप की यह आखरी इच्छा जरूर पूरी करेंगे।" बुरी बात जल्दी फैलती है। बुढ़े की यह डण्डे वाली बात शीघ्र ही सारे गांव में फैल गई। सारे गांव ने बूढ़े के डण्डा जलूस में शामिल होने के लिये अपने सभी रिश्तेदारों को भी बुला लिया। एक दो दिन बाद बूढ़ा मर गया। परिवार वाले बूढ़े के मुख में डण्डा खड़ा कर अर्थी ले जा रहे थे। बूढ़े की पूर्व योजना (परीप्लानिङ्ग) के अनुसार हजारों पुलिस वालों ने आकर सब को बीच रास्ते घेर कर अर्थी नीचे उतरवा ली। पुलिस ने बुढ़े के मुख से डण्डा निकालकर कहा, " बताओ इसके मुंह में डण्डा ठोककर बूढ़े को किसने मारा है। जब पुलिस सबकी धुनाई कर रही थी तब बूढ़े के परिवार वाले रो रो कर कह रहे थे, " हाय हाय बापू ! तू मरा मरा भी सेध गया।"

इसी प्रकार सत्यार्थप्रकाश का आखरी चौदहवां समुल्लास भी खत्म हो गया। परन्तु यह दुष्ट दैवकरणि बूढ़े की तरह अब भी भ्रष्टीकरणों द्वारा दुःख देता ही जा रहा है। देखो इसका बदला हुआ पाठ। क्या 'इस' की जगह 'यह' खप सकता है ? कभी नहीं ! कभी नहीं !! कभी नहीं खप सकता !!!



20 स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश के भ्रष्टीकरण

स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश में भ्रष्टीकरणों की कम से कम संख्या=

1.	वेदानन्दी में	=	16
2.	ताम्रपत्रानुसारी में	=	6
3.	झज्जरी में	=	81
4.	अजमेरी में	=	90
5.	भगवती में	=	97
6.	सिद्धान्ती में	=	16

मारी थी लागी नहीं गया निशाना ऊक।
गुरु बिचारा क्या करे जब चेले ही में चूक।।

संसार में दो चीजें होती हैं। एक दिखाने वाली और दूसरी देखने वाली। दिखाने वाली जैसे सूर्य और दीपक है तथा देखने वाली आँख है। यदि दीपक की कम रोशनी हो तो आँख की पूरी शक्ति (नेत्र ज्योतिः) होने पर भी कम दिखाई देगा और यदि दीपक की पूरी रोशनी हो तथा आँख की दृष्टि मन्द हो तो भी कम दिखाई देगा। एवम् यदि दीपक और आँख दोनों की ज्योतिः पूरी हो तो पूरा दिखाई देगा यही दशा गुरु और शिष्य की समझ लेना। गुरु चाहे सूर्य के समान पूर्ण प्रकाश (ज्ञान) रखता हो और शिष्य की बुद्धि की आँख फूटी हुई हो तो गुरु सारा जोर लगाने पर भी शिष्य को कुछ नहीं सिखा सकता। जैसे ऋषि सत्यार्थप्रकाश द्वारा भी भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं को कुछ भी न सिखा सके। उपरोक्त वर्णन तो सही यथार्थ ज्ञान होने का है। अर्थात् जितनी जिसकी शक्ति होगी उतना ही ज्ञान सीख सिखा सकता है। इसके अतिरिक्त सीखने और सिखाने में एक और प्रकार होता है। वह यह है कि गुरु तो सीधी सिखावे, परन्तु शिष्य के

उलटी समझ में आवे और गुरु उलटी सिखावे परन्तु शिष्य के सीधी समझ में आवे। यह विपरीत ज्ञान तभी होता है जब पाप कर्म करने से आत्मा के संस्कार और मनुष्य की इन्द्रियां दूषित हो जाती हैं। वैशेषिक दर्शन 9–2–10 में महर्षि कणाद ने कहा है कि "इन्द्रियों और संस्कार के दोष से अविद्या अर्थात् विपरीत ज्ञान उत्पन्न होता है।"

उपरोक्त कारण से ही सभी भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं की बुद्धि (ज्ञान) उलट हो गई है। ये वेदशास्त्र आदि पढ़ कर भी ऋषियों के ग्रन्थों को भ्रष्ट कर रहे हैं। प्राचीन काल में ऐसे लोगों को पढ़ाया ही नहीं जाता था। क्योंकि अनपढ़ बदमाश से पढ़ा लिखा बदमाश समाज को ज्यादा हानि करता है। जैसे रावण ने वेदशास्त्रों का विद्वान् होते हुए भी राक्षसी कार्य ही किये। प्राचीन काल में एक बार विद्या ब्राह्मण (विद्वान्) के पास गई। विद्या ने ब्राह्मण अर्थात् विद्वान् से कहा कि हे देव ! मेरी रक्षा करो। मेरी रक्षा करो। मुझे किसी बुद्धिहीन मूर्ख और इन्द्रियों के दास को मत देना अन्यथा वह दुष्ट विद्यारूपी शस्त्र से ऋषि मुनियों की ही हानि करेगा।

उपरोक्त कारण से ही गुरु लोग शिष्य बनने के इच्छुक व्यक्ति की पहले परीक्षा लेते थे कि यह विद्या देने के योग्य है या नहीं। यदि विद्यार्थी सुपात्र होता तो उसे विद्यादान देते थे अन्यथा नहीं। इसमें एक दृष्टान्त उपयुक्त रहेगा। एक बार दो बालक एक आचार्य के पास पढ़ने के लिये गये। गुरु जी ने उनको एक एक छालनी (चलनी, झारनी) देकर कहा कि कल सूर्य निकलने से पहले उस तालाब पर चले जाना तथा तालाब से अपनी अपनी छालनी पानी की भरके मेरे पास ले आना। उसके बाद तुम्हें पढ़ाना आरम्भ करूंगा।

अगले प्रातःकाल ही दोनों बच्चे तालाब पर पहुँच गये। दोनों ने अपनी अपनी छालनी पानी से भरी और गुरु की तरफ

चल पड़े। छालनी में भरा हुआ सारा पानी एक मिन्ट में ही इसके सुराखों में से निकलकर जमीन पर गिर गया। दोनों छालनी खाली हो गई। उन्होंने फिर छालनी भरी और चल पड़े। पानी फिर निकल गया। जब जब वे पानी भरकर चलते थे तो हर बार झरनी के सुराखों में से पानी निकल जाता था। दोनों बड़े परेशान हुये। थोड़ी देर में एक बालक ने धैर्य छोड़ दिया और कहा, " गुरु जी ने हमें बहका दिया है। सुराखों वाली छालनी में पानी रुक ही नहीं सकता।" ऐसा कहकर वह बालक खाली छलनी लेकर गुरु के पास गया और कहा कि बहकाने वाले गुरु के पास मुझे नहीं पढ़ना। ये लो अपनी छालनी। मैं चला अपने घर को। इतना कहकर वह अपने घर को चला गया। दूसरे बालक ने धीरज नहीं छोड़ा। वह बार बार छालनी पानी से भरता और गुरु की ओर चल पड़ता था। ऐसा करते करते दोपहर हो गई। न बालक रुकता था और न पानी रुकता था। जब दिन तीन घण्टे के लगभग बाकी रह गया तब छलनी में कुछ कुछ पानी रुकने लग गया। पहले पहल पानी पांच कदम की दूरी तक रुकता। फिर धीरे धीरे पानी दश कदम की दूरी चलने तक रुकने लगा। जब सूर्य छिपने को जा रहा था उस समय तक छालनी से पानी निकलना बिल्कुल बन्ध हो गया। बालक ने चलनी को पानी से भरा और धीरे धीरे चलकर गुरु जी के सामने जा खड़ा हुआ। गुरु जी ने प्रसन्नता पूर्वक खड़ा होकर पानी से भरी हुई चलनी बालक के हाथों से अपने हाथों में लेकर कहा, "देखो यह चलनी बांस के तारों से बनी हुई है। बार बार पानी लगने से तार फूलकर सुराख बन्ध हो गये और छलनी से पानी निकलना भी बन्ध हो गया।" फिर बालक से गुरु जी ने कहा, "तेरे को गुरु में श्रद्धा और विश्वास है, तेरे को जरूर पढ़ाऊँगा। तू धीरज वाला है, तेरे को जरूर पढाऊँगा। तू बुद्धिमान् है, तेरे को जरूर पढाऊँगा। तू सुपात्र है, अतः तेरे को अवश्य ही पढाऊँगा।" गुरु

जी ने उसे पढ़ा लिखाकर दयानन्द सा विद्वान् और योगी बना दिया।

इसी प्रकार यदि इन भ्रष्टीकरणकर्त्ता कुपात्रों की पढ़ाना आरम्भ करने से पहले ही परीक्षा की जाती तो आज यह दुर्दिन देखना नहीं पड़ता। इन्होंने संसार की इतनी बड़ी हानि की है कि इनको हजारों लाखों बार मृत्यु दण्ड देने पर भी इस कृत हानि का बदला नहीं उतर सकता। देखिये, महर्षि दयानन्द ने चारों वेदों और ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि तक के लगभग तीन हजार संस्कृत धर्म ग्रन्थों का सार निकाल कर स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश शीर्षक के नीचे 51 (इक्यावन) अनमोल रत्न लिखे थे। इन दुष्टात्माओं ने ये रत्न भी अपनी गन्दीमनोवृत्ति के फोड़े की सड़ी हुई राध (पीप) में लथपथ कर दिये। साढ़े चार पृष्ठों में लिखे 51 (इक्यावन) अनमोल रत्नों में कम से कम 97 (सतानवें) भ्रष्टीकरण कर दिये। नमूने के लिए कुछ भ्रष्टीकरण नीचे दिये जाते हैं–

(1) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ = जो जो आर्यावर्त्त वा अन्य देशों में अधर्मयुक्त चालचलन है उसका स्वीकार और जो धर्मयुक्त बातें हैं उनका त्याग नहीं करता।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'अन्य' की जगह 'इन' रख दिया।

समीक्षा – बदले हुए पाठ में हो गया 'इन देशों में' ऐसा तो तब आ सकता है जब किन्हीं देशों के वा कुछ देशों के नाम ऊपर आ चुके हों। ऊपर किसी भी देश का नाम नहीं आया है। ऋषि जी बता रहे हैं कि आर्यावर्त में या दूसरे देशों में जो गलत चलन है उसका मैं स्वीकार नहीं करता। अतः 'दूसरे देशों में और अन्य (दूसरे) देशों में दोनों एक ही बात है। इसलिये 'अन्य' के बदले 'इन' देना वाक्य रचना को बिगाड़ना है।

(2) ऋषि पाठ ='अन्यायकारी बलवान् से भी न डरे।'

अजमेरी का पाठ = अन्यायकारी बलवान् ने भी न डरे।

समीक्षा – जब इन बदमाशों ने हद से ज्यादा गदर मचा दिया तभी तो इनकी शरारत पकड़ी गई। यदि थोड़े थोड़े परिवर्तन करते तो शायद पता भी न चलता। ऊपर अजमेरी में 'से' की जगह 'ने' रखने से वाक्य रचना, व्याकरण व अर्थ इत्यादि की दृष्टि से वाक्य सब तरह से गलत हो गया। ऋषि के वाक्य में अपादान कारक एवं पञ्चमी विभक्ति है। परन्तु दैवकरणि की शरारत कुछ भी औचित्य नहीं दिखा रही। क्या ऋषि दयानन्द ऐसा अर्थहीन वाक्य बना सकते थे ? कभी नहीं ।

(3) ऋषि पाठ = इन्हीं महाशयों के श्लोकों के अभिप्राय के अनुकूल निश्चय रखना सबको योग्य है।

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'अभिप्राय' शब्द के बाद वाले 'के' की जगह 'से' कर दिया।

समीक्षा – 'से' का प्रयोग या तो तृतीया विभक्ति में आता है, जिसका अर्थ है 'के द्वारा' जैसे मैं पैन से लिखता हूँ अर्थात् मैं पैन के द्वारा लिखता हूँ। या 'से' का प्रयोग पांचवीं विभक्ति में आता है जिसका अर्थ 'पृथक् होना' है जैसे वृक्ष से पत्ता गिरता है अर्थात् पत्ता वृक्ष से पृथक् होता है।

श्रीमान् जी यहां ऋषि पाठ में न तो तीसरी विभक्ति है और न ही पाँचवीं विभक्ति है यहां तो केवल छठी विभक्ति है। जिसका अर्थ 'का' 'के' 'की' आदि होता है। इसीलिए ऋषि ने 'अभिप्राय' के बाद 'के' का प्रयोग किया है। आप दूसरे के घर में किसी अन्य को घुसेड़ने की अनधिकार चेष्टा क्यों कर रहे हैं।

(4) ऋषि पाठ ='ईश्वर कि जिसके ब्रह्म, परमात्मादि नाम हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ ='ईश्वर कि जिसको ब्रह्म, परमात्मा आदि नामों से कहते हैं।'

समीक्षा—ये महाराज यदि यह लिखते कि 'जिसको ब्रह्म, परमात्मादि नामों से पुकारते हैं' तो भी कुछ ठीक था। इन्होंने यह गोलमोल परिवर्तन करके यह सवाल पैदा कर दिया कि ईश्वर को ब्रह्म, परमात्मा आदि नामों से क्या कहते हैं ? ऋषि का वाक्य बिल्कुल सीधा, सरल और सार्थक है। अतः इनका परिवर्तन गलत है।

(5) ऋषि का पाठ ='चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'वेदों' के बाद 'को' लगा दिया तथा ब्रैकिट (कोष्ठ, बन्धनी) हटा दी।

समीक्षा—ऋषि पाठ में बन्धनी के भीतर का पाठ वेदों का अर्थ समझाने के लिये दिया है कि वेद किसे कहते हैं अर्थात् 'विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग' को वेद कहते हैं यानी चाहे 'वेद' कहो या 'विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग' कहो, दोनों एक ही वस्तु के नाम हैं। परन्तु दैवकरणि के उपरोक्त परिवर्तन से दोनों अलग अलग दो वस्तु बन गई। जैसे चारों वेदों को और विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीत संहिता मन्त्र भाग को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूँ। इसीलिये जब तक खुद ऋषि न हो जाय तब तक ऋषियों के ग्रन्थों के साथ छेड़छाड़ करना नैतिक पतन है, कानूनन अपराध है और धार्मिक दृष्टि से महापाप है।

(6) ऋषि पाठ ='इन तीनों को प्रवाह से अनादि मानता हूँ।'

भगवती में उपरोक्त 'को' शब्द को बन्धनी में [को] ऐसे दे दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि ऋषि दयानन्द ने यह 'को' शब्द इस वाक्य में नहीं लिखा था। यह कृपा तो केवलमात्र दैवकरणि ने की है जिससे वाक्य पूरा और सार्थक बन गया, पहले अधूरा और निरर्थक था। परन्तु मैं इनको कहता हूँ कि आँखों के बटन अच्छी तरह दबाकर देखो कि तुम्हारे द्वारा सम्पादित ताम्रपत्रानुसारी,

झज्जरी, अजमेरी में यह 'को' शब्द बिना बन्धनी के ही लिखा हुआ है और आर्ष सत्यार्थप्रकाश में भी ऋषि के पाठ में 'को' शब्द बिना बन्धनी के लिखा हुआ है। तुम व्यर्थ का रोना धोना छोड़ दो क्योंकि–

दयानन्द के एक आंसु पर हजारों तिलक उठते थे।
दैवकरणि का उमर भर रोना यों ही बेकार जायेगा।।

(7) अजमेरी के पृष्ठों के शीर्ष पर जहां स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश लिखना चाहिये था वहां चतुर्दश समुल्लासः लिख दिया जबकि चतुर्दश समुल्लास तीन पृष्ठ पहले ही सम्पूर्ण समाप्त हो चुका था। इसी को कहते हैं भङ्गड़ों का गीत।

(8) ऋषि पाठ = 'वर्णाश्रम गुण कर्मों की योग्यता से मानता हूँ।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में पाठ= 'वर्णाश्रम गुण कर्मों के योग से मानता हूँ।'

समीक्षा – भाई भ्रष्टीकरणकर्त्ता भ्रष्ट ! आपने यह नहीं लिखा कि 'योग' की कौन सी अवस्था से मानते हैं। एकाग्र अवस्था से मानते हैं या निरुद्ध अवस्था से मानते हैं और यह भी नहीं लिखा कि सम्प्रज्ञात योग मानते हैं या असम्प्रज्ञात योग मानते हैं। यह तो ठीक है कि योग का अर्थ जोड़, मेल आदि हैं। पर भाई जी ! जीव और परमात्मा तथा प्रकृति में गुण और कर्म तो नित्य ही जुड़े रहते हैं। इनमें आपके मानने या न मानने से कोई फर्क नहीं पड़ता । देखो स्वमन्तव्यामन्तव्यप्रकाश के क्रमाङ्क छः में महर्षि जी लिखते हैं, "जो नित्य पदार्थ हैं उनके गुण, कर्म स्वभाव भी नित्य हैं।" अतः ईश्वर, जीव और प्रकृति में गुण कर्मों का योग तो हमेशा ही रहता है। इससे क्या ईश्वर और प्रकृति के भी वर्णाश्रम मानोगे। गुण कर्मों का योग तो पशु पक्षी कीड़े मकोड़े सभी में है तो क्या इन सबके भी वर्णाश्रम मानोगे ? ऋषि पाठ का

तात्पर्य है कि जिस मनुष्य में जिस वर्णाश्रम की योग्यता हो उस को उसी वर्णाश्रम में रक्खा जावे। मेरे विचार में आपको अपना अपमान करवाने का परमिट मिला हुआ है। अन्यथा ऋषि पाठ ही हर तरह से ठीक है।

(9) ऋषि पाठ ='जो साङ्गोंपाङ्ग वेद विद्याओं का अध्यापक सत्याचार का ग्रहण और मिथ्याचार का त्याग करावे वह आचार्य कहाता है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त वाक्य के अन्तिम दो शब्द 'कहाता है' हटा दिये।

समीक्षा–ऋषि ने पहले आचार्य के कर्तव्य बताकर यह बताया कि जो ये कार्य करता है वह आचार्य कहाता है। परन्तु व्याकरणाचार्य ने 'वह आचार्य' इतना रखकर वाक्य को अधूरा बना दिया। कोई इनसे पूछे कि वह आचार्य क्या ? वह आचार्य होता है या वह आचार्य खड़ा है, दौड़ता है, लम्बा है, ठिगना है या क्या है वह आचार्य ? इस प्रकार सैकड़ों प्रश्न खड़े कर दिये। ऋषि का पाठ सर्वांश में पूर्ण और सही है। दैवकरणि की कलाकारी चली नहीं।

(10) ऋषि पाठ = 'ये संक्षेप से स्वसिद्धान्त दिखला दिये हैं।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'ये' की जगह 'यह' कर दिया। केवल भगवती में एक छलांग और लगाई है, वह यह कि ऋषि पाठ के 'दिखला' के आगे एक 'दिखला' शब्द और रख दिया।

समीक्षा – इन भ्रष्टीकरणकर्त्ता प्रकाशकों तथा सम्पादक महाशय को केवल एक एक आंख से ही दिखाई देता है अर्थात् ये सभी काणे हैं। एक और बड़े कमाल की बात है कि इन सब की दाईं आँख ही फूटी हुई है। इसीलिये तो इन सब ने ऋषि वाक्य के बाईं तरफ के 'ये' (बहुवचन) शब्द का 'यह' (एकवचन) तो कर

दिया परन्तु वाक्य के दाईं तरफ का 'हैं' शब्द दिखाई न देने से एकवचन 'है' किये बिना ही रह गया।

एक काणा आदमी बाजार में सैर सपाटा करने को गया। एक किलोमीटर जाकर वापस आ रहा था कि रास्ते में किसी मित्र ने पूछा, "भाई साहब! क्या हाल है ?" काणे ने कहा,"भाई साहब, हाल तो सब ठीक है लेकिन आज एक अचम्भे की बात देखी और वह यह कि जबं मैं जा रहा था तब तो बाजार की दुकानें पूर्व की तरफ थीं और जब मैं वापस आने लगा तब दुकानदारों ने एक दम अपनी अपनी दुकानें उठाकर पश्चिम की तरफ रख लीं।" इस पर दोनों ठहाका मार कर हंस पड़े और एक दूसरे की तरफ देख देख काफी देर तक खिलखिला खिलखिला कर हंसते रहे। पर दोनों के हंसने के कारण अलग अलग थे। पाठक ! आप समझते होंगे कि मैं भ्रष्टीकरणकर्त्ताओं का बोगस मजाक कर रहा हूँ। परन्तु ऐसी बात नहीं है। जिसमें जो नुक्श होता है वह बताया ही जाता है। जैसे – एक गंजे की शादी एक काणी औरत से हो गई । जब गंजा आदमी काणी औरत से खाना मांगता तब कहता था, "श्रीमती काणी जी ! खाना लाना।" और वह काणी गंजे के सामने खाना रखकर कह देती, " लो श्रीमान् गंजे ! खाना खा लो।" इस तरह उनका जीवन सुख से बीत रहा था। बड़ी मौज से रह रहे थे।

एक दिन की बात है कि उस गांव में भजन गाने वाले आ गये । गंजा काणी को खबर दिये बगैर भजन सुनने चला गया। काफी रात गये आया तो दरवाजा खटखटा कर दरवाजा खोलने को कहा । काणी ने अन्दर से पूछा," कहां गया था ?" गंजे ने कहा कि भजन सुनने गया था। काणी ने पूछा कि भजनी क्या कह रहा था ? गंजे ने उत्तर दिया कि वो यों कह रहा था कि काणगढ में आग लग गई। काणी ने कहा, " फिर तो गंज के गंज जले होंगे।" इस पर दोनों जोर से हंस पड़े और काफी देर तक

हंसते रहे। मेरी तो हमेशा यही हार्दिक इच्छा रहती है कि इन भ्रष्टीकरण करने वालों के काणगढ़ में आग लग जाय और गंज के गंज जल जायें।

अब भगवती के पाठ में दो 'दिखला' लिखने का अर्थ = दिखला दिखला दिये हैं = दिखाकर दिखा दिये हैं। लगता है इन सबने शर्म हया बेच खाई है।

(11) आर्ष सत्यार्थप्रकाश में ऋषि का पाठ ='जिससे सब लोग सहज से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की सिद्धि करके, सदा उन्नत और आनन्दित होते रहें यही मेरा मुख्य प्रयोजन है।'

झज्जरी, अजमेरी और भगवती में उपरोक्त 'यही' शब्द हटा दिया।

समीक्षा – उपरोक्त में 'यही' हटाने के बाद 'मेरा मुख्य प्रयोजन है' से ऐसा लगता है कि इसके बाद प्रयोजन बताया जायगा जबकि 'यही' न हटाने से 'यही मेरा मुख्य प्रयोजन है' इस वाक्य से ऐसा लगता है कि प्रयोजन बताया जा चुका है जिसकी तरफ 'यही' कहकर इशारा किया गया है। और सच भी यही है कि 'यही' शब्द से पहले प्रयोजन बताया भी जा चुका है। ये भ्रष्टीकरणकर्त्ता प्रकाशक और सम्पादक यों ही तीस मार खां बने फिरते हैं। किसी का तीस मार खां नाम इसीलिये निकला था कि वह अपने मुख पर बैठी हुई तीस मक्खियों को एक ही थप्पड़ में मारकर एक ही बार में खा जाता था। जैसे दीपक काले अन्धेरे को खाता है। इसीलिये काजल जैसा काला धूँआ उगलता है। गन्दे विचारों वाले ऋषियों के ग्रन्थों को गन्दा ही करेंगे। जैसा अन्न वैसा मन।।

ध्यान दीजिये और मजा लीजिये :–

समीक्षाओं के वचन ये, ज्यों नाविक के तीर।
देखन में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।।



21 अस्ताचल

खण्डन कर भ्रष्टीकरणों का दे देकर युक्ति प्रमाण।
पहुंचा अस्त गिरि मंच पर वृद्ध ज्ञान का भान।।

भ्रष्टीकरणों का खण्डन पूरा करके ज्ञान सूर्य अस्ताचल पर आ गये हैं। भूमि के जिस भाग की आड़ में सूर्य देव छुपते हैं उस भूभाग को अस्ताचल कहते हैं। सूर्य छुपने का अर्थ यह नहीं है कि सूर्य नष्ट हो जाता है या कहीं जलादि में डूब जाता है। सूर्य छुपने का अर्थ इतना ही है कि यह हमारी दृष्टि से ओझल होकर दूसरे गोलार्द्ध में उदित हो जाता है। तब यह परलोक अर्थात् दूसरे स्थान में अपना कार्य करता है। इसी प्रकार ज्ञान सूर्य भ्रष्टीकरणों का खण्डन सम्पूर्ण होने के बाद दूसरे क्षेत्र में अपना कर्तव्य कर्म करेगा।

अस्त समय यहां पर एक खास बात विशेष रूप से देखने की है। वह खास बात यह है कि सूर्य जिस रंग में निकला था उसी रंग में अस्त हो रहा है। अर्थात् उजले मुख आया था और उजले मुख ही जा रहा है। इससे मालूम होता है कि यह सूर्यरूपी ज्ञान परलोक (दूसरे स्थान या जन्म) में भी उजले मुख उदय होकर स्वर्ग (सुख) में रहेगा क्योंकि 'अन्त मता सो गता' यानी मरते समय मनुष्य के जैसे विचार होते हैं अगला जन्म भी वैसा ही होता है। यदि मरते समय मनुष्य के विचार तमोगुणी हैं तो अगला जन्म तमोगुणी योनि अर्थात् पशु पक्षी और कीड़े मकोड़ों की योनि में होगा। मरते वक्त रजोगुणी (आधे अच्छे आधे बुरे) विचार होने से साधारण मनुष्य का जन्म होगा और यदि मरते समय सतोगुणी विचार हैं तो अगला जन्म ऐसे स्थान पर होगा जहां पर सरलता पूर्वक विद्वान् और योगी बनकर मुक्ति प्राप्त कर सकेगा।

जीवन में जैसे कर्मों का अभ्यास प्रधान रूप से किया है वैसे ही विचार मरते समय मनुष्य की आत्मा पर छा जाते हैं, उसे जबरन् घेर लेते हैं। जिस मनुष्य ने सारी उमर तमोगुण के कार्य प्रधान रूप से किये हैं, यदि वह चाहे कि मरते समय गीता पाठ आदि सुनने से उसके विचार सतोगुणी हो जायें तो कभी नहीं हो सकते। इस बात को एक दृष्टान्त से अच्छी तरह समझा जा सकता है–

एक लड़की को उसकी शादी में घर वालों ने कुछ रूपये दिये ताकि ससुराल में जरूरत पड़ने पर काम आ सकें। लड़की पूरी कंजूस और मक्खी चूस थी। मक्खी चूस उसे कहते हैं जो घी में पड़ी हुई मक्खी को उठाकर चूस कर फैंक दे। लड़की ने सुसराल में जाकर वे सब रूपये अपनी सन्दूक में कपड़ों के नीचे रख दिये। जब जब वह लड़की अपने मां बाप के घर जाती तब तब हर बार कुछ न कुछ रूपये मिलते ही थे। वह लड़की उन सबको पोटली में बान्धकर उसी सन्दूक में रखती रही। जब कोई रिश्तेदार लड़की से मिलने लड़की की ससुराल में आता तब लड़की को थोड़े बहुत पैसे देता तो उन पैसों को भी लड़की उसी पोटली में बान्धकर सन्दूक की तली में रखती रही। पहले समय में चान्दी के रूपये होते थे। लड़की के बूढ़ी होने तक उन रूपयों की एक खासी गठड़ी सी बन गई। उस बुढ़िया ने उन में से एक रूपया भी खर्च नहीं किया। कंजूस मक्खी चूस ऐसे ही करते हैं। कहा भी है–

टेक =कृपण मूंजी पूंजी धन को खोवै ना खोवण दे।
जहरी सर्प मणी तैं न्यारा होवै ना होवण दे।।

कली = एक सूम सखी की जड़ में बैठजा धन बांटै ना बांटण दे।
डिगे हुए मन बेईमान को डाटै ना डाटण दे।।

एक हीजड़ा राखै तेग हाथ में सिर काटै ना काटण दे।

मूर्ख साझी माल खेत में छांटै ना छांटण दे।।
करदे रौला बीज बखत पै बोवै ना बोवण दे।
जहरी सर्प मणी तैं न्यारा होवै ना होवण दे।।

इस प्रकार बुढ़िया सत्तर दो बहत्तर वर्ष की हो गई। जब कभी बुढ़िया को अपनी मौत का खयाल आता था तो उसे यही चिन्ता सताती थी कि मरने के बाद रूपयों की गठड़ी का क्या होगा। मरना तो सभी को है। कहा भी है–

आये हैं सो जायेंगे राजा रंक फकीर।
एक सिंहासन चढ़ चला एक बन्ध चला जंजीर।।
लोगो इस संसार में मौत सभी को खाई।
उड़ती लार से पंछी को बाज झपट ले जाई।।
बाज झपट ले जाई ना कोई चारा जोई।
ब्राह्मण क्षत्रीय वैश्य चाहे शूद्र हो कोई।।
कह रतिराम कविराय इस मौत से डरियो।
परलोक लेवो सुधार शुभ कर्मों को करियो।।

उपरोक्त बुढ़िया बीमार हो गई और उसकी बीमारी काफी लम्बे समय तक चली। उसकी लम्बी और सख्त बीमारी के कारण परिवार भी बिल्कुल तंग हो गया। अन्त में बुढ़िया की हालत बहुत ही खराब हो गई। बुढ़िया को यकीन हो गया कि अब मौत नजदीक ही है। तब बुढ़िया ने बड़ी बहू को छोड़ कर सबको अपने कमरे से चले जाने को कहा। जब सब बाहर चले गए तब बुढ़िया ने बड़ी बहु को अपने पास बुलाकर उसके कान में फुसफुसाते हुये कहा, " यह मेरी सन्दूक की चाबी लो। सन्दूक में कपड़ों के नीचे रूपयों की गठड़ी रक्खी है। मेरे मरने के बाद यह गठड़ी तुम ले लेना। परन्तु ख्याल रखना कि एक भी रूपया खर्च न होने पावे।" बहू ने चाबी लेकर अपनी जेब में डाल ली।

परिवार को निश्चय हो गया कि बुढ़िया मरने वाली है।

उन्होंने पण्डित जी को बुलाकर बुढ़िया को गीता पाठ सुनाना आरम्भ कर दिया। परन्तु बुढ़िया की सुरति तो रूपयों की गठड़ी में लगी हुई थी। उसका ध्यान गीता पाठ में गया ही नहीं। गीता पाठ करते हुए कई दिन बीत गये पर बुढ़िया न मरी । जब सारा परिवार अति तंग हो गया तब बड़ी बहू ने कहा कि इस के प्राण पूरे होने का नुस्खा तो मेरे पास है। परिवार जनों ने कहा कि कोई सत्कार पूर्वक मरने का नुस्खा हो तो तुम भी आजमा कर देख लो। बड़ी बहू ने सन्दूक से रूपयों की गठड़ी निकालकर बुढ़िया की छाती पर रख दी और बुढ़िया के दोनों हाथ गठड़ी पर लगा दिये। बुढ़िया ने अपने दोनों हाथों से गठड़ी को कसकर पकड़ लिया और सोचा कि अब गठड़ी मेरे साथ ही जायेगी। उसी समय बुढ़िया के प्राण पखेरू उड़ गये।

इस दृष्टान्त का यही तात्पर्य है कि सारे जीवन में जैसे कार्य प्रधान रूप से किये हैं, मरते समय वैसे ही विचार जीवात्मा के होते हैं और इन्हीं के अनुसार अगला जन्म होता है।

प्रश्न–क्या ऐसा भी कोई उपाय है कि किसी के मरते समय वहां उपस्थित लोगों को यह पता लग जाय कि मरने वाला अगले जन्म में दुःख की योनियों में जायेगा या सुख की योनियों में ?

उत्तर –हां, यह तो आसानी से पता लग सकता है। जब कोई मनुष्य मरने को होता है तब प्रायः उसका बोल और आँखें आदि बन्ध हो जाते हैं। उस समय उसके मन में सारे जीवन में किये हुए कर्मों की रील घूमती है, सब कर्मों की क्रमशः याद आने लगती है। जब उसको किसी बुरे कर्म किये की याद आती है तब वह सोचता है कि मैंने यह पाप कर्म किया था। अब मैं जा रहा हूँ। परमात्मा इस पाप के फलस्वरूप बहुत दुःख देगा। ऐसा विचार आते ही उसका चेहरा गम से मुरझा जाता है और जब कोई अच्छा काम किया हुआ याद आता है तब वह सोचता है कि यह बहुत भलाई का

काम किया था इस शुभ कर्म के बदले में बहुत सुख मिलेगा। तब उसका चेहरा खुशी से खिल उठता है। इसी प्रकार सब अच्छे बुरे कर्मों की यादें आती रहती हैं और उसके चेहरे पर खुशी और गमी आती रहती है। पास में बैठे या खड़े हुए आदमी यदि उसके चेहरे पर आने वाली खुशी और गमियों को गिन लें तो पता लग जायगा कि यदि चेहरे पर आने वाली गमियां खुशियों से ज्यादा हैं तो वह नरक (दुःख) के स्थान में जन्म लेगा और यदि चेहरे पर आने वाली गमियों से खुशियां ज्यादा हैं तो मरने वाला स्वर्ग (सुख) के स्थान में जन्म लेगा। जब अगले जन्म में पाप और पुण्यों के भोग बराबर रह. जायेंगे तब उस जन्म से भी मर कर साधारण मनुष्य का जन्म धारण करेगा। प्रमाण के लिये देखो सत्यार्थप्रकाश नौवें समुल्लास में (प्रश्न) मनुष्य का जीव पशु आदि में और पशु आदि का मनुष्य के शरीर में और स्त्री का पुरुष के और पुरुष का स्त्री के शरीर में जाता आता है वा नहीं ? का उत्तर।

यह तो हुई मनुष्य जीवन के अस्त समय की स्मृतियों की परीक्षा। अब यह भी देखिये कि ज्ञान सूर्य के अस्त समय की स्मृतियां स्वर्ग में जाने की हैं या नरक में जाने की–

इस भाण्डाफोड़ पुस्तक में इक्कीस पाठ लिखे हैं। पहले पाठ का नाम उदयाचल रक्खा। उदयाचल के अन्दर सात पाठ लिखे। पहले पाठ में बताया कि मेरी आत्मा ही उदयाचल है। जिस प्रकार उदयाचल की आड़ से सूर्य निकलकर संसार के अन्धकार को मिटाते हुए अन्धेरे में छिपे हुए भयंकर प्राणियों और कांटे, गढ़े, ठोकर लगने के स्थानों इत्यादि को दिखा देता है, इसी तरह मेरे आत्मा रूपी उदयाचल से निकला हुआ ज्ञान सत्यार्थप्रकाश में किये गये भ्रष्टीकरणों को दिखा देगा। ताकि लोग भ्रष्टीकरण रूपी कांटों से बचकर चलें अर्थात् भ्रष्ट किये सत्यार्थप्रकाशों को न पढ़ें।

इतना लिखकर आगे लिखा कि आकांक्षा, योग्यता, आसत्ति और तात्पर्य ये चार वाक्यार्थ बोध के साधन हैं। इन चारों को वहां विस्तार पूर्वक समझाया है। इनको वहीं पर अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये अन्यथा मेरी यह पुस्तक अच्छी प्रकार समझ में नहीं आयेगी।

उदयाचल के दूसरे पाठ 'भाण्डाफोड़' में बताया कि भाण्डाफोड़ का क्या मतलब है और इस पुस्तक का लठमार नाम 'भाण्डाफोड़' क्यों रक्खा है। इसी के बाद वाले तीसरे पाठ में भ्रष्टीकरण का स्पष्टीकरण किया है और बताया है कि सत्यार्थप्रकाश में मिलावट, हटावट, बदलावट और टहलावत आदि को मैंने भ्रष्टीकरण अर्थात् भ्रष्ट करने की क्रिया कहा है। तत्पश्चात् चौथे पाठ में भ्रष्टीकरण कर्त्ता श्रीमानों का शुभ परिचय आरती द्वारा तथा गद्य में देकर बताया है कि ऐसे ऐसे खतरनाक जानवर भी इस संसार में पाये जाते हैं।

उदयाचल के पांचवें पाठ 'सत्यार्थप्रकाश की हस्तलिखित मूलप्रति' में युक्ति और प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया है कि महर्षि दयानन्द द्वारा लिखवाई और अपने हाथ से संशोधित यह मूल प्रति बुरी तरह से भ्रष्ट करके इसमें 10947 (दश हजार नौ सौ सन्तालीस) भ्रष्टीकरण कर दिये हैं। छठे पाठ में भी युक्ति प्रमाण दे देकर सिद्ध किया है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती के जीवनकाल में छपा सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण' ही प्रामाणिक है। आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारी बावली दिल्ली ने इस प्रामाणिक सत्यार्थप्रकाश को फोटो–प्रिन्ट से छपवा दिया है। सभी प्रकाशकों व सम्पादकों को आगामी सत्यार्थप्रकाश इसी प्रामाणिक सत्यार्थप्रकाश के अनुसार छपवाने चाहियें और उदयाचल का सातवां पाठ 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुणबा जोड़ा' बड़ा सार गर्भित पाठ है। बार बार पढ़ना चाहिये।

उदयाचल के बाद सत्यार्थप्रकाश में किये भ्रष्टीकरणों की

समीक्षा करनी प्रारम्भ की। सर्वप्रथम सत्यार्थप्रकाश के सूचीपत्र के भ्रष्टीकरणों की समीक्षा करके भूमिका में पहुँच गया । भूमिका की समीक्षा में बताया कि ऋषि ग्रन्थों के साथ दुश्मनी नहीं करनी चाहिये। जैसे ऋषि ने 'हठते' लिखा। परन्तु भ्रष्ट लोगों ने 'हठते' के 'ठ' की जगह 'ट' कर दिया। यदि 'हठते' गलत था तो भगवती के पृष्ठ 347 पर ऋषि के 'हटते' का 'हठते' क्यों किया। और एक बार नहीं बल्कि वहीं पर चार बार 'हटते' का 'हठते' किया है। महर्षि ने आर्ष सत्यार्थप्रकाश लार्ज साइज के पृष्ठ 3 (भूमिका), 100 (षष्ठ समुल्लास), 228 (एकादश समुल्लास), 425 (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश) में भी 'हठ' शब्द दिया है । उपरोक्त पृष्ठ 100 में तो दो बार हठ लिखा है। यदि 'हठ' शब्द गलत होता तो क्या तीन बार मूलप्रति देखने पर भी महर्षि को पता न चला कि यह बार बार गलती हो रही है। वास्तव में 'हठ' और 'हट' दोनों शब्द ही संस्कृत के धातु हैं और दोनों ही ठीक हैं। परन्तु इन हठियों ने तो हठ पकड़ रक्खा है कि यदि दयानन्द 'हठ' लिखते हैं तो हम उसका 'हट' कर देंगे और यदि 'हट' लिखते हैं तो हम 'हठ' कर देंगे । क्या दयानन्द से कोई दुश्मनी है। या किसी ने ऋषि के ग्रन्थ भ्रष्ट करने के लिये आपकी वही सेवा की है जो ऋषि को कांच मिश्रित घातक जहर दूध में पिलाने के लिंये ऋषि के रसोइये की की थी ?

इसके बाद प्रथम समुल्लास के भ्रष्टीकरणों की समीक्षा करते हुए बताया कि यजुर्वेद अध्याय 13 मन्त्र 18 के अन्त में 'पुरूषञ्जगत' इतना बढाकर पाठ भेद कर दिया। तत्पश्चात् दूसरे और तीसरे समुल्लास के भ्रष्टीकरणों की समीक्षा करके चौथे समुल्लास में एक महान् अपमानजनक बात देखी । दैवकरणी ने अपने सम्पादित सत्यार्थप्रकाशों के इस चौथे समुल्लास में पाठ परिवर्तन करके लिखा – इन पन्द्रह मन्त्रों से पन्द्रह भाग भोजन के भूमि पर रखकर किसी अतिथि को खिलावें । इसमें सोचने की

बात है कि हलुवा खीर आदि भूमि पर रखकर अतिथी को खिलाना उसका अपमान करना नहीं तो क्या है ? भूमि पर रखकर तो कुत्तों को खिलाते हैं। क्या ऐसी बातें ऋषि की हस्त लिखित मूलप्रति में हो सकती हैं ? कभी नही।

इसी समुल्लास में अजमेरी पृष्ठ 116 में पाठ परिवर्तन करके लिखा कि 'पुरुष लडकों को तथा लडकियों को पढावें।' ऋषि ने यहां लिखा था कि 'पुरुष लडकों को तथा स्त्री लड़कियों को पढावें ।' दैवकरणि ने ऋषि की इस मान्यता को तीसरे समुल्लास में मानकर भी यहां विरोध इसीलिए किया है कि लोग यह कहें कि ऋषि के ग्रन्थों में एक ही विषय में परस्पर विरोध है।

आगे बढते हुए पांचवें और छठे समुल्लास के भ्रष्टीकरणों की समीक्षा करके सातवें समुल्लास के परिवर्तनों में दो विशेष बदलावट देखीं।

(1) –'फल भोगने में जीव स्वतन्त्र है।' चारों वेदों तथा ब्रह्मा से लेकर जैमिनी मुनि तथा महर्षि दयानन्द तक के लगभग तीन हजार ग्रन्थों का यही मानना है कि 'फल भोगने में जीव 'परतन्त्र' है।' इन अनाड़ियों का परिवर्तन घृणा योग्य है।

(2) महर्षि ने लिखा था कि 'वेद पुस्तक पत्रे का बना हुआ है।' परिवर्तन करने वाले ने 'पत्र' की जगह 'कागज' लिखकर ऋषि की गहराई न समझने का परिचय दे दिया है क्योंकि 'पत्र' से तात्पर्य भोजपत्र, ताम्रपत्र, कागज पत्र आदि का है। 'कागज' तो कोरा कागज ही रह गया।

आठवें समुल्लास में भी दो परिवर्तन देखने योग्य हैं।

(1) प्रथम समुल्लास के स्थान में प्रथम अध्याय कर दिया जबकि ऋषि के किसी भी ग्रन्थ में अध्याय नहीं हैं। और सत्यार्थप्रकाश में तो समुल्लास ही हैं, अध्याय नहीं। दैवकरणि ने अपना खुद का अपमान करवाने का लाइसैन्स ले रक्खा है ऐसा मालूम होता है।

(2) (परमेश्वर जगत को) 'न बनाता तो आनन्द में बना रहता।' इस

पाठ में 'बना' के स्थान पर 'बैठा' लिखकर सर्वव्यापक ईश्वर को एक देशी बना दिया।

'जो मुक्ति में से कोई भी लौटकर जीव इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद अर्थात् जीव निश्शेष हो जाने चाहिये।' दैवकरणि ने नौवें समुल्लास के इस ऋषि पाठ में दो जगह 'निश्शेष' की जगह 'कमती' कर दिया। उच्छेद =सर्वनाश तथा निश्शेष = एक भी न बचे = यहां के सब जीव समाप्त हो जायें। 'कमती' लिखने से तो न तो संसार का सर्वनाश हो और न ही सारे जीव खत्म हों बल्कि कुछ न कुछ बचे ही रहेंगे। अतः यह परिवर्तन गलत है।

दशवें समुल्लास के भी दो परिवर्तन द्रष्टव्य हैं–

(1) यजुर्वेद मन्त्र का एक शब्द हटा कर पाठ भेद कर दिया।

(2) बदला हुआ वाक्य = 'भैंसें गाय से दूध में अधिक उपकारक होती है।' विचारने योग्य है कि जब भैंस का दूध बुद्धि को तमोगुणी बना कर बुद्धि को बिगाड़ता है और इस शरीर में बुद्धि ही सबसे अधिक कीमती है तो भैंस का दूध तो उपकारक नहीं बल्कि अपकारक (हानिकारक) है।

ग्यारहवें समुल्लास में वैष्णवों को शराब पीने वाले लिखकर ऋषि दयानन्द और वैष्णव सम्प्रदाय का विरोध किया है।

इसी प्रकार बारहवें समुल्लास में आगे का पाठ पीछे, पीछे का आगे, बीच का आरम्भ और अन्त में तथा आरम्भ और अन्त का बीच में देकर पूरे समुल्लास को गड़बड़ा दिया है। इसकी विस्तार पूर्वक समीक्षा की गई है। वहीं देख लेना।

तेरहवें समुल्लास में कुछ आयतें बढ़ा दीं, 54 आयतों के पते भ्रष्ट कर दिये तथा और भी बहुत सी गड़बड़ें कर दीं। इसी समुल्लास की समीक्षा में ये सब देख लेना।

चौदहवें समुल्लास में 229 आयतों के पतों में मिलावट, हटावट और बदलावट आदि कर दिये और कई आयतों के दो दो

तीन तीन भाग कर दिये। कुरान के पाठ बदल दिये, ग्यारह समीक्ष्य विषय तथा इनकी समीक्षाएं बढ़ा दीं। कोई विषय आधा लिखकर फिर दूसरा विषय लिख दिया तथा इसके बाद पहला शेष विषय लिख दिया इत्यादि। और भी बहुत सी गड़बड़ियां कर दीं जिनकी समीक्षा वहीं पर विस्तार से कर दी है।

मेरे द्वारा भ्रष्टीकरणों की समीक्षा की हुई इन छः सत्यार्थप्रकाशों में अनेकों जगह मन्त्र, श्लोक और सूत्रों में पाठ भेद कर दिये, प्रश्नोत्तर बढ़ा दिये, प्रश्नोत्तरों के पूर्व पक्ष उत्तर पक्ष कर दिये, असली पैरे निकाल कर नकली भर दिये। इत्यादि जो कुछ भी भ्रष्टीकरण कर सकते थे सब कर दिये। इस सब कुछ की समीक्षा इस पुस्तक के उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक बार बार पढ़ पढ़ाकर और सुन सुनाकर सब आर्यों को परम धर्म करके पुण्य कमाना चाहिये।

जिस प्रकार जीवन के अस्त समय में मनुष्य मुसाफिर अपने सारे जीवन में किये हुए शुभ कर्मों की स्मृति रूपी रील को पढ़कर किये शुभ कर्मों के फलस्वरूप परलोक में मिलने वाले सुख की भावना से आनन्द में मग्न होकर अपने चेहरे पर उजाला ले आता है, उसी प्रकार मेरी आत्मा का ज्ञान सूर्य उदयाचल से लेकर अस्ताचल तक किये शुभ कर्मों को याद कर करके प्रसन्नता पूर्वक चेहरे पर उजाला ले आया है और जैसे उजले मुख से उदयाचल पर उदय हुआ था वैसे ही उजले मुख से अस्ताचल की आड़ में अस्त हो गया तथा अगले कर्मक्षेत्र में व्यस्त हो गया।।

यह दुनियां कर्मक्षेत्र है, कोई सैर गाह नहीं।
गफलत में पड़के बन्दे, इसे भुला नहीं।।

सदा नहीं रहना गुलाबी रंग तेरा।
शुभ कर्म ही कमाना मुक्ति का मिले बसेरा।।

इति भाण्डाफोड़।।



22 साक्षियां

1. आर्य विद्वान्
एक नवीन सत्यार्थप्रकाश पर ध्यान देवें

अशोक आर्य, सहमन्त्री सत्यार्थ न्यास, उदयपुर

'आदरणीय विद्वद्वर, उदयपुर 16 जून 2003

सादर नमस्ते

पिछले दिनों भगवती लेजर प्रिंट (दिल्ली) तथा पूज्य महात्मा गोपालस्वामी जी के ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित Pocket Size (जेबी) सत्यार्थप्रकाश पढ़ने में आया। जिसमें आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश से मिलाने पर जगह-जगह पाठ-भेद ही नहीं, पैरा के पैरा परिवर्तित या गायब थे। मैं स्तब्ध रह गया। पुस्तक में कहीं भी यह संकेत नहीं था कि इस संस्करण का आधार क्या है। कोई सम्पादकीय नहीं कहीं इस विशद् परिवर्तन के कारण नहीं।

तभी मुझे परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 37वें संस्करण का स्मरण हुआ। उपरोक्त प्रकाशित जेबी सत्यार्थप्रकाश के प्रथम पृष्ठ पर परोपकारिणी सभा के अधिकारियों तथा आ० विरजानन्द जी दैवकरणि को धन्यवाद दिया गया है इससे प्रतीत हुआ कि यह उसी 37वें संस्करण की अनुकृति है।

मुझे याद आया कि 5-6 वर्ष पूर्व सत्यार्थप्रकाश महोत्सव के अवसर पर डा० ज्वलन्त जी शास्त्री तथा आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय पधारे थे तब एक अनौपचारिक चर्चा में दोनों विद्वानों ने इस संस्करण को भ्रष्ट तथा जला देने योग्य

बताया। उन्होंने बताया कि 20 विद्वानों की यही सम्मति है कि इस संस्करण को नष्ट कर देना चाहिये। मैंने 37वां संस्करण देखा न था पर जब उक्त विद्वान् ऐसा अभिमत प्रकट कर रहे थे, अतः परोपकारिणी के इस कृत्य पर बड़ा क्षोभ हुआ और आश्चर्य भी कि डा॰ धर्मबीर जी के रहते ऐसा कैसे हो पाया ? मैंने न्यास के बड़ों के सामने यह चिन्ताजनक स्थिति रख इस विषय में समुचित कार्यवाही करने को कहा। न्यास अध्यक्ष पूज्य स्वामी तत्त्वबोध जी ने डा॰ धर्मवीर जी को पत्र लिखा कि सत्यार्थप्रकाश की पाण्डुलिपियों की फोटो स्टेट भेज दें, पर उनका उत्तर आया कि ये उपलब्ध नहीं है, बाढ़ में खराब हो गयी। श्री धर्मवीर जी के दिनांक 24–7–98 के पत्र के इस प्रसंग में Exat वाक्य–'सत्यार्थप्रकाश के पाण्डुलिपि के छाया प्रति के संदर्भ में निवेदन है कि 1975 के बाढ़ में खराब होने से उसकी छाया प्रति उपलब्ध कराना संभव नहीं है। अब पूज्य महात्मा गोपाल स्वामी जी ने बताया है कि पाण्डुलिपि की फोटो कापी गुरुकुल गौतमनगर, श्री विरजानन्द जी दैवकरणि तथा अब भगवती लेजर प्रिंट्स वालों के पास भी है। आदरणीय धर्मबीर जी भी उपरोक्त उद्धृत पत्र में ऐसी सूचना दे देते तो वहाँ से मंगवा लेते। जब इतनी जगह फोटो स्टेट है तो न्यास में भी हो जाती। अस्तु ! भगवती लेजर द्वारा प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश पढ़ उसे 37वें संस्करण की अनुकृति जान सारी बातें स्मृत हो गयी। इस पठन–पाठन, चिन्तन–मनन में निम्न तथ्य सामने आये हैं–

(1) द्वितीय संस्करण में ग्रन्थकार (महर्षि दयानन्द) की अनुमति से मुन्शी समर्थदान ने उर्दू–फारसी के शब्दों के स्थान पर आर्य भाषा के शब्द रख दिये हैं। कतिपय स्थानों पर मुंशीजी ने

टिप्पणियाँ भी दी हैं। जो हस्तलेख में नहीं हैं। (पं॰ युधिष्ठिर जी मीमांसक, साम्पदकीय–सत्यार्थप्रकाश–रा॰क॰ ट्रस्ट)

(2) द्वितीय संस्करण के रूप में परिष्कृत ग्रन्थ प्रथम बार छपा है, किन्तु मुद्रण पत्र संशोधन में पूरी सावधानता न रखने के कारण यह बहुत अशुद्ध छपा है। पुनरपि इसमें संशोधक पण्डितों द्वारा अदला–बदली न होने से मूल ग्रन्थ के 'रूप में यही प्रमाण भूत संस्करण है। (यु॰ मी॰ वही)

(3) (मुंशी समर्थदान) वैदिक यंत्रालय के प्रबन्धक पर वे लगभग 4 वर्ष रहे और मार्च 1886 से इस पद से मुक्त हो गये। उनके कार्यकाल में ही सत्यार्थप्रकाश का संशोधित द्वितीय संस्करण 1884 में छपा (ध्यान रहे कि सत्यार्थप्रकाश के 11 समुल्लास तो महर्षि जी के जीवनकाल में छप चुके थे)................. 'सत्यार्थप्रकाश तथा संस्कारविधि के जो संस्करण मुंशी समर्थदान की देख रेख में छपे थे वे प्रायः प्रामाणिक तथा निर्दोष छपे। मुद्रण तथा लिपिका की भूलें तो अपवाद हैं। (मुंशी समर्थदान शीर्षक से विद्वद्वरेण्य आदरणीय डॉ0 भवानी लाल भारतीय का लेख–परोपकारी मई 2001)

(4) 'इस ग्रन्थ में कई स्थलों में टिप्पणिका की आवश्यकता थी इसलिये मैंने जहाँ जहाँ उचित समझा वहां–वहां लिख दी है। ....छापते समय ग्रन्थ के शोधने और विरामादि चिन्हों के देने में जहाँ तक बना बहुत ध्यान दिया परन्तु शीघ्रता के कारण से कहीं भूल रह गयी हो तो पाठकगण ठीक कर लें. ....सूचना–चौदहवें समु0 में जो कुरान की मंजिल सिपारा सूरत में दो चार के आगे–पीछे का अन्तर होना सम्भव है अतएव पाठकगण क्षमा करें। (सत्यार्थप्रकाश आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट–चौबीसवां संस्करण (जुलाई 1981) के साथ आश्विन

कृष्ण पक्ष संवत् 1939 को लिखा गया मुंशी समर्थदान जी का निवेदन)

(5) मुंशी समर्थदान स्वामी जी के अत्यन्त निकट के विश्वासपात्र व्यक्ति थे। उनको एक बड़ा सुन्दर प्रशस्ति पत्र स्वामी जी द्वारा दिया गया। महर्षि जी को मुंशी समर्थदान जी की योग्यता व निष्ठा पर इतना विश्वास था कि उन्होंने मुंशी जी को यह अधिकार भी दिया था कि सत्यार्थप्रकाश के टाइटल पेज पर उनका (मुंशी समर्थदान जी का) नाम रहना चाहिये। (आधार–परोपकारी मई 2001 में छपा डॉ॰ भारतीय जी का पूर्व उद्धृत लेख)

उपरोक्त विवरण प्रचलित द्वितीय संस्करण को प्रामाणिक मानने में सहायक है। ध्यान रहे कि 1874–75 में सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण के समय–लेखक तथा मुद्रकादि किस प्रकार धोखा न खायें, यह बात सदैव उनके ध्यान में रही होगी। महर्षि स्वयं भी लिखते हैं–'**हाँ जो प्रथम छपने में कहीं भूल रही थी वह निकाल शोधकर ठीक–ठीक कर दी गयी है।** (सत्यार्थप्रकाश भूमिका) महर्षि ने अबकी बार जिम्मेदारी अपने परम विश्वसनीय मुंशी समर्थदान को सौंपी थी, अतः मुंशी जी पर किसी संभावित मिलावट के शक का कोई स्थान नहीं है। हाँ प्रूफ रीडिंग जन्य त्रुटियाँ तो होती रही हैं, होती रहती है इन्हें पहचानना कठिन नहीं है।

(6) (स्व0) श्री दीपचंद जी आर्य, आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, नई दिल्ली वालों का अभिमत 'ऋषि के मूल ग्रन्थ में कोष्ठक ( ) देने तथा ऋषि की इच्छा के विरूद्ध अपने नाम से टिप्पणी चढ़ाने एवं पाठ परिवर्तन करने के पक्ष में हम नहीं हैं।..........
....ऋषि दयानन्द के निर्वाण के पश्चात् उनकी अनुपस्थिति में

इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा करना क्या आत्म विरुद्ध आचरण नहीं है ? ....'एक संस्थान प्रचार संस्करण के नाम से इस ग्रन्थ को छाप रहा है। जिसमें मूल ग्रन्थ के शीर्षकों को निकालकर उनके स्थान पर अपनी और से अधूरे अशुद्ध विषय लिख दिये हैं। ....**यदि संशोधकों के ये दुष्कृत्य नहीं रोके गये तो भविष्य में महर्षि के ग्रन्थों में अन्य आर्ष ग्रन्थों की भाँति प्रक्षेपों का पता लगाना दुष्कर हो जायेगा।'** ....प्रेस अशुद्धियां ठीक करने और पाठ संशोधन करने में महान् अन्तर होता है। छपने–छपाने की अशुद्धियां तो ठीक करनी ही चाहियें।'

(प्रकाशकीय–सत्यार्थप्रकाश–जुलाई 1981)

पर परोपकारिणी सभा तथा अन्य प्रकाशनों से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के संस्करणों से स्पष्ट होता है कि **आर्य विद्वानों को श्री दीपचंद जी आर्य का अभिमत स्वीकार नहीं रहा।** यही कारण है कि प्रायः प्रत्येक संस्करण में पाठ–भेद मिलते हैं। अकेले परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 34वें संस्करण में द्वितीय संस्करण से 100 पाठ भेद व लगभग 100 अंग्रेजी शब्दों की अभिवृद्धि मिलती है। (पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक) परोपकारिणी सभा तथा अन्य प्रकाशनों से प्रकाशित सत्यार्थप्रकाश के विभिन्न संस्करणों के सम्पादकगणों में निम्न विख्यात् वैदिक विद्वानों के नाम उल्लेखनीय हैं–सर्व श्री पं० ज्वालादत्त, पं० भीमसेन शर्मा, पं० लेखराम, पं० भगवद्दत्त, पं० विश्वनाथ वेदोपाध्याय, पं० महेशप्रसाद, मौलवी आलिम फाजिल, पं० भद्रसेन, कविराज धर्म सिंह कोठारी, पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, डा॰ भवानीलाल भारतीय, पं० जयदेव जी विद्यालंकार, स्वामी वेदानन्द जी, पं० उदयवीर शास्त्री आदि। (पं युधिष्ठिर मीमांसक)

पं0 युधिष्ठिर जी मीमांसक के अनुसार उक्त मनीषियों द्वारा किये गये संशोधन कार्य कई उपयोगी थे तो कई ऋषि के अभिप्राय के विरूद्ध भी थे। पर सबसे चिन्तनीय बात तो यह है कि संशोधकों द्वारा दी गई टिप्पणियों और मूल ग्रन्थस्थ टिप्पणियों में भेद दर्शाने वाला कोई संकेत किसी भी संस्करण में नहीं दिया। इस कारण सभी नई टिप्पणियां भी ग्रन्थकार (महर्षि जी) की ही समझी जायेंगी, और उससे ग्रन्थकार का अज्ञान प्रकट होगा। ग्रन्थकार के साथ वर्ता गया संशोधकों का यह अन्याय अक्षम्य है। (पं0 युधिष्ठिर जी मीमांसक)

पं0 युधिष्ठिर जी की यह टिप्पणी सर्वांग में सत्य है। संशोधकों के पाठभेद अलग से पहचान आवें ऐसे चिन्ह यथा( ) आदि में यह संशोधित पाठभेद हो, विवेच्य सत्यार्थप्रकाश में भी यही समस्या है। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट होता है कि सत्यार्थप्रकाश के संशोधक आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान् तथा ऋषि भक्त रहे हैं। **इन सभी ने प्रचलित द्वितीय संस्करण को ही प्रामाणिक माना है।** परोपकारिणी सभा का 34वां संस्करण मान्य विद्वानों की समिति द्वारा अनुमोदित होकर छपा था जिसमें पं0 ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और पं0 भगवद्दत्त रिसर्च स्कॉलर जैसे परम ऋषि भक्त मूर्धन्य विद्वानों का नाम भी है। अच्छा होता संशोधनों की यह प्रक्रिया यहीं रुक जाती अन्यथा इसका कोई अन्त नहीं। आर्य विद्वान् तो आजकल ऋषि की मान्यताओं में भी परिवर्तन करने की मांग करने लगे हैं। (यथा– धायी प्रकरण)। किसी को ऋषि भाषा सभ्य और प्रांजल नहीं लगती। (इस प्रकरण की विस्तारभय से यहां चर्चा नहीं करूंगा) अतः ऐसी अभिलाषाओं पर कठोर पाबन्दी लगाना आवश्यक है।

तो ऊपरलिखित संस्करणों में पाठ भेंद अवश्य हैं पर Pocket Size (जेबी) संस्करण जितने व्यापक नहीं। न ही इस व्यापक संशोधन के कारण दिये हैं। बड़ी चिन्तनीय बात है।

(दयानन्द सन्देश, अगस्त 2003 से उद्धृत)



2. आपको कौन सा सत्यार्थप्रकाश चाहिए ?

(ले0 श्री अशोक आर्य, श्री मद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास, उदयपुर, राजस्थान–313001)

पाठक गण शीर्षक पढ़कर चौंक गए होंगे। स्वाभाविक है। **ऋषिकृति चार प्रकार की कैसे हो सकती है** ? अतीव दुर्भाग्य है पर सत्य यही है। **(हमारी जानकारी में निम्न चार प्रकार ही हैं हो सकता है और भी हों)**

(1) द्वितीय संस्करण (1884) की फोटोकापी कराके, तदनुरूप ही आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, दिल्ली द्वारा छापे गए 'सत्यार्थप्रकाश' जिनमें द्वितीय संस्करण से पाठभेद न करने की प्रतिज्ञा का निर्वहन किया जा रहा है।

(2) 1884 से लेकर 1990 तक महर्षि जी की उत्तराधिकारिणी सभा श्रीमती परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 36 संस्करण तथा अन्य प्रकाशकों द्वारा भी प्रकाशित दसियों संस्करण जिनमें सम्पादक विद्वानों ने मुद्रण–त्रुटि तथा द्वितीय संस्करण के प्रूफ – शोधन में हुई अनवधानता तथा कतिपय असंगतियों को देखकर कतिपय पाठभेद किये गए, पर वे अधिक व्यापक नहीं हैं। इनमें भी कुछ विद्वान् सम्पादकों (उदाहरण के लिए विद्वद्वरेण्य पं0 युधिष्ठिर जी मीमांसक) ने शब्दभेद भी किये हैं तो उसे पृथक दर्शाने की व्यवस्था की, जिससे पाठक मूलपाठ तथा संशोधक पण्डित द्वारा किये गए पाठभेद को पहचान सके। अन्य कईयों ने ऐसा पृथक् भेद नहीं दर्शाया। इन सम्पादकों में आर्यजगत् के नामचीन ऋषिभक्त विद्वानों में से कुछ इस प्रकार हैं। सर्व श्री पं0 लेखराम, पं0 भगवद्दत्त, पं0 युधिष्ठिर जी मीमांसक, स्वामी वेदानन्द जी, पं0 ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु, आचार्य उदयवीर शास्त्री, कविराज धर्मसिंह कोठारी,

डॉ0 भवानीलाल भारतीय आदि। पर कुल मिलाकर उक्त दोनों प्रकार के सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण पर आधारित होने के कारण ज्यादा भेद नहीं रखते तथा 100 वर्ष तक इन्हीं को आर्यजनों/विद्वानों द्वारा प्रामाणिक माना जाता रहा। इनके एक–एक शब्द की रक्षा में आर्य विद्वानों ने अपनी पूर्ण शक्ति लगा दी तथा प्रतिपक्षी इनमें कोई दोष 100 वर्ष में भी न दिखा पाये।

आजकल बहुप्रचारित भगवती लेजर प्रिंट्स् दिल्ली का संस्करण, जिन्हें उन्होंने भिन्न–भिन्न आकार में तथा अच्छे कागज पर सुन्दर प्रकार से मुद्रित कराया है। इस संस्करण में द्वितीय संस्करण से सहस्रों पाठभेद ही नहीं, पैराभेद हैं। (जिज्ञासावश हमने द्वादश समुल्लास के एक प्रकरण मात्र की अन्तर–तालिका बनायी, घोर आश्चर्य 10–12 पृष्ठ में ही 139 पाठभेद तथा पैराभेद मिले। यह तालिका हमने विद्वानों की सेवा में भेजी। अभी तक जिनके पत्र प्राप्त हुए हैं। उन्होंने प्रकाशक के इस कृत्य की घोर निन्दा करते हुये इसे अक्षम्य बताया है)। भगवती वालों द्वारा इस संस्करण को मूल से मिलान कर अब तक का शुद्धतम संस्करण घोषित करते हुए 'मानक संस्करण' का नाम दिया गया है। अभिप्राय यह है कि गत 100 वर्ष से जिस सत्यार्थप्रकाश को विश्व भर के आर्य प्रामाणिक मानते रहे वह अब इनके अनुसार अप्रामाणिक है। इसी क्रम में ज्ञात हुआ कि भगवती वालों का यह सत्यार्थप्रकाश तो परोपकारिणी सभा द्वारा छापे गए तथा **श्री विरजानन्द जी दैवकरणि** द्वारा सम्पादित 37वें संस्करण की अनुकृति मात्र है। **अर्थात् इस कार्य के मूल में परोपकारिणी सभा है।** हमारी जानकारी में समय समय पर विद्वानों ने सभा के इस कृत्य का

विरोध किया पर नतीजा कुछ न निकला। हम जानते हैं जब विद्वत्ता का अहंकार प्रभावी होता है तो नतीजा निकलता भी नहीं । पर हमने अनेक आर्यों से बातचीत में पाया कि उन बेचारों को तो यह पता तक नहीं कि उनकी आस्था के केन्द्र ऋषिवर की इस अनुपम कृति के साथ विद्वानों द्वारा क्या व्यवहार किया जा रहा है। इसलिए इस विषय में कुछ लिखने का साहस किया।

(4) विद्वद्वरेण्य पूज्य स्वामी जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती द्वारा आधुनिक हिन्दी में रूपान्तरित सत्यार्थप्रकाश ऋषि की हिन्दी परिष्कृत नहीं है (विद्वानों की राय में) इसलिये यह कार्य किया गया है । सत्यार्थप्रकाश के 22 या 23 भाषाओं में अनुवाद हो चुके हैं। पर हिन्दी से हिन्दी में रूपान्तरण का यह प्रथम प्रयास है। साधारण ग्रन्थों के अनुवादकों की भी जिम्मेदारी बहुत अधिक होती.है तिस पर हमारी राय में ऋषि के ग्रन्थों का अनुवाद तो अत्यधिक जिम्मेदारी व सतर्कता का काम है। हम विद्वान् नहीं इसलिये नहीं जानते कि अनुवादक की क्या सीमाएं या स्वतन्त्रताएं होती है ? पर पूज्य स्वामी जी ने अपने अनुवादक स्वरूप को क्या अनुशासन में रखा है ? यह विद्वान ही निर्णय करें, हम एक उदाहरण दे रहे हैं– महर्षि जी ने नवम् समुल्लास में मुक्ति के साधनों का वर्णन करते हुये 'विवेक' के अन्तर्गत तीन अवस्थाओं व तीन शरीरों का वर्णन करते हुये चौथे शरीर तुरीय शरीर का भी वर्णन किया है। पर स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने इस प्रकरण में तीन की जगह चार अवस्थाएं लिखकर (पृष्ठ 181) तुरीय अवस्था चौथी बतायी है। आर्यजन इस पर विचार करें। सत्यार्थप्रकाश के हर कठिन स्थल को स्वबुद्धि के अनुसार असंगत मान, सभी

विद्वान् सुधार करने में प्रवृत्त हो जायेंगे तो क्या होगा ? अभी भी जो कुछ प्रारम्भ हो गया है, उसकी अन्तिम परिणति निश्चित कुछ ऐसी ही होने वाली है। स्वामी जगदीश्वरानन्द जी ने इस रूपान्तरित सत्यार्थ प्रकाश को (सर्वश्रेष्ठ संस्करण) व 'अभिनव संस्करण' घोषित किया है।

इस सारे प्रकरण में जो सर्वाधिक चिन्तनीय बिन्दु है, जिसकी उपेक्षा की जा रही है वह यह है कि आर्य समाज विरोधियों ने जब द्वितीय संस्करण प्रकाशित हुआ तो यह फतवा दिया कि इसके 13 व 14वें समुल्लास स्वामी जी द्वारा रचित नहीं हैं, आर्य समाजियों ने पीछे से मिला दिये हैं। इसका समुचित उत्तर विद्वानों ने दे दिया। पर विरोधी पक्ष सदैव इस ताक़ में रहता है कि कोई अवसर मिले तो सत्यार्थप्रकाश पर हमला करें। अब हम यह अवसर उन्हें थाली में रखकर परोस रहे हैं।

आगे आने वाले समय में जब भी सत्यार्थप्रकाश की चर्चा आवेगी तब विरोधियों का पक्ष तोप–गोला यही होना है–'पहले असली सत्यार्थप्रकाश लाओ' तब हमारी क्या अवस्था होनी है ? तब मूल प्रति प्रेस प्रति का पिटारा खोल निर्णय करते रहना। और जब इस संशोधन प्रवृति की तरफ से शिरोमणि सभा उदासीन है, उत्तराधिकारिणी सभा स्वयं संलग्न है, तब क्या आश्चर्य ऐसे 5–10 प्रकार के सत्यार्थप्रकाश और सामने आ जावें।

हमने अन्तर–तालिका सहित कई विद्वानों की सेवा में विस्तृत निवेदन किया है, कईयों की चिन्ता भरी त्वरित प्रतिक्रिया प्राप्त हुई तो कईयों को मञ्च शूरता से अवकाश नहीं। विश्वभर के आर्यजनों की आस्था में हमें पूर्ण विश्वास है। अतः

उन तक यह सारी जानकारी पहुँचे इस हेतु से यह लेख है। सभी आर्यपत्र/पत्रिकाओं के माननीय सम्पादकों से आशा करते हैं कि वे इसे अपनी पत्रिका में प्रकाशित कर सहायक बनेंगे। न्यास अध्यक्ष पूज्य स्वामी तत्त्वबोध जी सरस्वती इस सम्बन्ध में हर सम्भव प्रयास करने को तत्पर हैं। हमें आर्यविद्वानों, आर्य बहिन–भाईयों के सुझावों का इन्तजार रहेगा। जिस पाठभेद–तालिका का हमने जिक्र किया है, आप अवलोकन करना चाहें तो हमें लिखें हम भेज देंगे।

अन्त में सम्पूर्ण आर्यजगत से निवेदन है कि 'सत्यार्थप्रकाश' स्वामी दयानन्द जैसे ऋतम्भरा प्रज्ञा से युक्त ऋषि की कालजयी कृति है, इसे अक्षुण्ण रहने दें। अपने अन्वेषण पृथक् से प्रकाशित करें, तो बड़ा उपकार होगा। सभी विद्वान् व सम्मानित नेतागण सब प्रकार की दलबन्दी–भाव से ऊपर उठकर सोचें तो उन्हें वह सत्यपथ मिल जावेगा, जिसका अवलम्बन करने पर, आज से बीस वर्ष बाद का सत्यार्थप्रकाश प्रेमी यह कहने पर मजबूर न होगा, 'काश ! सत्यार्थप्रकाश में पाठसंशोधन कभी न हुए होते'।

(वेदवाणी, आश्विन सं॰ 2060 वि0 से उद्धृत)



3 सत्यार्थप्रकाश का 37वां संस्करण

(लें0–श्री चान्दरतन दम्माणी, 'संस्कृति' 215 बांगुरपार्क, रिशरा, कलकता–712248)

'परोपकारी' अप्रैल 1992 में छपा उसके अवै0 सम्पादक एवं सं0 मन्त्री परोपकारिणी सभा श्री धर्मवीर का 'भ्रमोच्छेदन' शीर्षकान्तर्गत सात पृष्ठों का लेख मेरे हाथ में है। वेदवाणी में छपा श्रद्धेय पं0 युधिष्ठिर मीमांसक का सत्यार्थप्रकाश के 37वें विवादस्पद संस्करण की आलोचना मूलक वक्तव्य भी आर्यजगत (22 मार्च 92) की कृपा से हम देख सके हैं। अत्यन्त दुःख से निवेदन कर दूँ कि श्री धर्मवीर, जिनकी लेखन एवं सम्पादन शैली पर हम गर्व कर सकते हैं ने अपनी लेखनी से न केवल आर्यसमाज अपितु अनेक पौराणिक विद्वानों में श्रद्धाप्राप्त एवं अथोरिटी समझे जाने वाले ऋषिभक्त वेदज्ञ विद्वान् श्री पं0 युधिष्ठिर मीमांसक के प्रति अनेकशः एवं अनेकत्र अवांछित व्यंग्यात्मक शैली एवं शब्दों का प्रयोग कर स्वयं अपने एवं परोपकारिणी सभा के अधिकारियों के बारे में जो चाटुकारिता एवं अतिशयोक्ति भाव का आश्रय लेकर आर्यजनों को दिग्भ्रमित करने का प्रयास किया है, उससे स्वयं उनकी एवं 'परोपकारी' की गरिमा घटी है। 'सर्वहितकारी' 28 मार्च के अंक में निकले सत्यार्थप्रकाश के उक्त विवादास्पद संस्करण के संशोधन कार्यवाहक श्री विरजानन्द दैवकरणि के लेख में भी वैसा कुछ सफाई प्रयास है, जैसा श्री धर्मवीर के लेख में है।

सुधी पाठक जान सकते हैं कि कहाँ श्री युधिष्ठिर मीमांसक की वेदार्थ की विविध प्रक्रियाओं की ऐतिहासिक मीमांसा एवं ऋषि ग्रन्थों में प्रयुक्त शब्दों एवं वाक्यों की संगतिकरण क्षमता एवं तदनुरूप किये गये कार्यों का एक

मननीय एवं दिव्य स्वरूप और कहाँ इन लोगों का ऋषिवाणी को सार्थक करने में योगदान । दुर्भाग्य कि सभा के वर्तमान अधिकारी, जो निश्चय ही आर्यजगत में सम्मान्य एवं प्रतिष्ठा के योग्य हैं, स्थिति को इस रूप में सहन करने को शायद बाध्य हो गये हैं और अब वे इससे निकल नहीं सकते जब तक इस मुद्दे को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाने से ऊपर न उठ जायें एवं ऋषि का उतराधिकारी होने के नाते ऋषिगौरव को ही सर्वोपरि न मान लें। वे ऐसा कदापि नहीं चाहेंगे कि सौ वर्ष से भी अधिक समय तक महर्षि एवं उनके ग्रन्थों में प्रयुक्त वाक्यों की संगति बैठा कर आर्यसमाज को अब तक अभेद्य दुर्ग में आदृत कर देनेवाले विद्वानों के अनुपम एवं महान् योगदान को अपनी प्रसिद्धि के लालच में झुठला दें। तदर्थ वे **श्री धर्मवीर एवं श्री दैवकरणि** को भी सत्परामर्श देकर सन्मार्ग में प्रेरित करने में सक्षम होंगे, ऐसी हमें आशा करनी चाहिये।

फिर, यद्यपि ऐसा है नहीं परन्तु दुर्जनतोष न्याय से मान लें कि **सत्यार्थप्रकाश के उक्त 37वें संस्करण में जो उन्होंने किया या अन्य ग्रन्थों में वे जो करने जा रहे हैं,** वह ठीक है तो भी इस प्रकार के परिवर्तनों के पूर्व वेदविद्यानिष्णात आर्य विद्वानों को उनकी पूरी प्रतिष्ठा, श्रद्धा एवं सम्मान के साथ बुलाकर उनके मार्गदर्शन में ही ऐसा कुछ किया जा सकता है—ज्ञात रहे इस दिशा में अब तक कार्य कर चुके विद्वानों का मार्गदर्शन प्राप्त करने का दायित्व परोपकारिणी सभा का है व रहेगा और किसी भी परिस्थिति में सभा के ट्रस्टी एवं अधिकारी उससे बच नही सकेंगे तथा अन्ततोगत्वा उनमें से प्रत्येक को इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ेगा। अतः जितना शीघ्र वे ऐसा करेंगे, ऋषिमर्यादा की रक्षार्थ उत्तम होगा।

मुझे विश्वास है, ऋषिभक्त आर्यगण संस्थाएँ, संस्थान एवं उनके कर्णधार स्थिति को गम्भीरता से लेकर पूर्ण विवेक के साथ इस नाजुक पहलू से उत्पन्न संकट से ऋषि मिशन को उबारने में सक्षम होंगे एवं ऋषि की उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा एवं उसके सक्षम एवं निष्कपट ट्रस्टीगण इसी परिप्रेक्ष्य में चिन्तनशील होकर कार्य करके भविष्य की अपनी योजनाओं को समुचित स्वरूप देने में सबल एवं सक्षम होंगे।

यह भी चिन्तनीय है कि श्री पं0 युधिष्ठिर मीमांसक के वक्तव्य आर्यजगत 22 मार्च में अभिव्यक्त भावों को न तो ऋषि मिशन के हित में गम्भीरता से लिया गया न ही उसका युक्तियुक्त उत्तर ही हो पाया है। निश्चय ही सत्यार्थप्रकाश के इस कार्य के लिए नियुक्त व्यक्ति में श्रद्धेय मीमांसक जी द्वारा निर्दिष्ट अपेक्षित योग्यता के अभाव ने ही आज इस अवांछनीय प्रसंग को इस रूप में ला खड़ा किया है। यह ठीक है कि मुंशी समर्थदान के समक्ष आयी अनेकानेक कठिनाइयों , जिनका जिक्र स्वामी दयानन्द एवं मुंशी जी के आपसी पत्रों में भी हुआ है एवं कुछ स्वाभाविक भूलों से कहीं कुछ अंश छूट गये या दुबारा आ गये, जिनका परिज्ञान होते ही प्रकाशकीय निवेदन के साथ उन्हें जोड़ा या घटाया जा सकता था परन्तु ग्रन्थकार की आज्ञा व आदेशान्तर्गत एवं उनके मन्तव्यानुकूल समर्थदान द्वारा जोड़े अंशों, टिप्पणियों को निकाल देना पाप कर्म ही कहा जायेगा और इस पाप कर्म को जितना शीघ्र दूर कर लिया जाय, ऋषि मिशन की रक्षार्थ उत्तम होगा।

श्री धर्मवीर एवं श्री दैवकरणि दोनों ने अपने अपने लेखों में सत्यार्थप्रकाश के तृतीय समुल्लास में गायत्री जप विधान

सम्बन्धी एक पंक्ति का मुद्दा अनावश्यक यहाँ उठा कर **अपने पाप कर्म से जनता का ध्यान हटाने का प्रयास किया है**—चूंकि स्वयं परोपकारिणी सभा द्वारा सत्यार्थप्रकाश के काफी पूर्व के संस्करणों से यह प्रंसग –'जप मन से करना उत्तम है' ठीक प्रकाशित होता आ रहा है अतः ग्रन्थ की वर्तमान संशोधन प्रक्रिया से असम्बद्ध एवं अप्रासंगिक होने के कारण कोई निष्पक्ष विचारक इस समय इस पर ध्यान नहीं देगा।

जैसा मैं संकेत कर चुका हूं, जहाँ श्री धर्मवीर ने श्रद्धेय पं0 युधिष्ठिर मीमांसक के प्रति पदे पदे व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग कर ऋषि मिशन में समर्पित आर्यों की भावनाओं को ठेस पहुंचाई है, वहीं श्री दैवकरणि अपने लेख में विद्वानों के अब तक के स्तुत्य कार्यों की एवं श्री मीमांसक जी के साथ हुई उनकी बातचीत, जो अत्यन्त उपयोगी है एवं जिसका उल्लेख स्वयं श्री दैवकरणि ने किया है, से मार्गदर्शन लेकर कार्य करने की संकल्पाभिव्यक्ति तो दूर, उलटे उनके खण्डन का रवैया अपना कर यह प्रश्न कि – अनार्ष ग्रन्थों, पुराणों आदि का 'खण्डन क्या ऋषि दयानन्द को नहीं करना चाहिये था' इत्यादि अनेक युक्तिविहीन, असमीचीन कुतर्कों का आश्रय लेने के कारण स्वयं आपत्तियों के घेरे में आ गये हैं, जिस ओर अनेकों का ध्यान जाये बिना नहीं रहेगा, ऐसा मैं समझता हूं।

(वेदवाणी, आषाढ़ सम्वत् 2050 वि0 से उदधृत)



4 सत्यार्थप्रकाश के 37वें संस्करण से सम्बद्ध विवाद

(ले0–म0 म0 युधिष्ठिर मीमांसक 1342–ए/29, फरीदाबाद)

पिछले एक वर्ष से परोपकारिणी सभा अजमेर द्वारा छपवाया हुआ सत्यार्थप्रकाश का 37वां संस्करण विशेष चर्चा का विषय बना हुआ है। इसका प्रधान कारण यह है कि विगत द्वितीय संस्करण से लेकर 36वें संस्करण तक सबका पाठ प्रायः समान रहा है। द्वितीय संस्करण ऋषि दयानन्द के जीवन काल में मुंशी समर्थदान की देखरेख में लगभग तीन–चौथाई छप चुका था। प्रथम संस्करण के प्रकाशन के लिये ऋषि दयानन्द ग्रन्थ लिखकर छपवाने के लिये मुरादाबाद के राजा जयकृष्णदास को दे गए थे। छापते समय पण्डितों ने उसमें कई स्थानों पर ऋषि दयानन्द के मन्तव्य के विरुद्ध भी छाप दिया था। इस स्थिति पर विचार करके ऋषि दयानन्द ने परोपकारिणी सभा की स्थापना की और उसे अपने ग्रन्थों के यथावत् प्रकाशन करने का अधिकार दिया। तब से लेकर दो वर्ष पहले तक ऋषि दयानन्द के ग्रन्थ जैसे छापने चाहियें, वैसे तो नहीं छापती रही, परन्तु उसमें कुछ गड़बड़ भी विशेष नहीं हुई। इसका प्रमुख कारण चिरकाल तक श्री हरविलासजी सारड़ा जैसे ऋषिभक्त मन्त्री का बना रहना है।

गत वर्ष सत्यार्थप्रकाश का जो 37वाँ संस्करण सभा ने छपवाया, वह पूर्व संस्करणों से पर्याप्त भिन्न है। जहाँ तक हमें ज्ञात हुआ है, यह संस्करण द्वितीय संस्करण के लिये लिखी गई प्रथम रफ कापी के अनुसार है। ऋषि दयानन्द ने छपवाने के लिये जो द्वितीय कापी तैयार की, उसे उन्होंने प्रेस में क

बार करके (थोड़ा-थोड़ा) भेजा। यह उनके समर्थदान को लिखे हुए पत्रों से स्पष्ट प्रतीत होता है। कोई लेखक किसी भी स्वपुस्तक को चाहे कितनी बार लिखे, परन्तु जिस प्रति को वह छपने के लिये भेजता है, वही प्रामाणिक मानी जाती है। उसके पूर्व चाहे उसने उस पुस्तक की कितनी ही प्रतियाँ क्यों न की और करवाई हों। कोई भी लेखक प्रारम्भ में लिखी हुई कापी को यथावत् प्रमाण नहीं मानता । इतना ही नहीं, जब स्वयं लेखक ही दूसरी प्रति तैयार करता है या करवाता है, तब उसमें प्रथम कापी से कुछ न्यूनाधिक होना स्वाभाविक है। इस बात पर वे लोग कभी भी विचार ही नहीं कर सकते, जिन्होंने अपने जीवन में माईयों, भाईयों और बहनों द्वारा उपदेश ही दिया हो लेखन का गम्भीर कार्य कभी भी अपने जीवन में न किया हो। यही कारण है कि वर्तमान सभा के अधिकारियों ने बिना सोचे-समझे ऋषि दयानन्द के द्वारा स्वयं प्रेस में भेजी गई सत्यार्थप्रकाश की कापी को अप्रामाणिक मानकर उसके पूर्व लिखी हुई (जिसमें द्वितीय बार लिखते हुए पर्याप्त संशोधन कर दिया था) कापी को प्रमाण मानकर उसके अनुसार सत्यार्थप्रकाश का 37वां संस्करण छपवा दिया। ऐसा यह कार्य अपरीक्षितकारक के समान कालान्तर में उसके लिये ही दुःखदायी बन गया।

37वां संस्करण ऋषि दयानन्द के लेखानुसार पूरी तरह प्रामाणिक है या नहीं, इस पर विचार न करके अपनी बुद्धि के अनुसार छपवा बैठे। जिस ग्रन्थ के 36 संस्करण स्वयं सभा छपवा चुकी हो और लाखों की संख्या में आर्य जनता प्रकाशित कर चुकी हो, उसके साथ ऐसा खिलवाड़ करना कहाँ तक उचित है, इस पर विचार नहीं किया गया।

वस्तुतः सत्यार्थप्रकाश पर पूरा अधिकार रखने वाले तीन ही व्यक्ति हुए हैं–एक पं० भगवद्दत्तजी लाहौर, द्वितीय श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु और तीसरे श्री महेशप्रसाद जी आलिम फाजिल (हिन्दू यूनिवर्सिटी, बनारस)। इन तीनों के अतिरिक्त किसी विद्वान् ने सत्यार्थप्रकाश का कभी भी गम्भीर अध्ययन नहीं किया। मेरा इन तीनों के साथ विविध रूप का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। लगभग सन् 1944 में श्री हरविलास जी सारडा ने श्री पं० महेशप्रसाद जी को अजमेर बुलाकर 14वें समुल्लास के कुरान की आयतों के अनुवाद की पड़ताल करायी थी। तब उन्होंने स्पष्ट कहा था कि स्वामी जी का अनुवाद लगभग ठीक है। इसके संशोधन की कोई आवश्यकता नहीं।

विगत वर्षों में पं० धर्मसिंह कोठारी ने सत्यार्थप्रकाश के दोनों हस्तलिखित प्रतियों से पाठ भेद मिलाकर सभा के निश्चय के अनुसार श्री पं० ब्रह्मदत्तजी जिज्ञासु के पास कई–कई दिन रहकर 'कौन सा पाठ रखना है' का निश्चय करके जो संस्करण छापा, वह प्रामाणिक कहा जा सकता है। परन्तु इस बार 'अहमप्यस्मि' रूपी अहंकार के वशीभूत होकर और कोठारी के किये हुए महत्वपूर्ण कार्य को तिरस्कृत करने के लिये नया उद्यम किया गया। यही सत्यार्थप्रकाश के परिवर्तन का मूल कारण बना। जब पू० स्वामी ओमानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश ताम्रपत्र पर खुदवाया था, तब श्री पं० विरजानन्द दैवकरणि ज़ी शुद्धपाठ के निर्णय के लिये कई बार मेरे पास आते रहे और विचार करते रहे। परन्तु **ग्रन्थ में आमूलचूल परिवर्तन करते समय प्रमुख कार्यकर्त्ता दैवकरणि जी ही थे,** लेकिन इस काल में मुझसे सम्पर्क नहीं किया गया। नये

संस्करण की रूपरेखा की मुझे हवा भी न लगने दी।

जब आर्य समाज में विगतवर्ष वेदवाणी में छपे मेरे लेखों से हलचल उत्पन्न हुई, तो उसे शान्त करने के लिए सत्यार्थप्रकाश के प्रश्न पर विचार करने के लिये परोपकारिणी सभा की ओर से विद्वानों की सभाएँ बुलाई गईं। विगत मास में अजमेर में 21 मई से जो मीटिंग बुलाई गई, उसमें सभा की ओर से मुझे बुलाया तक नहीं गया। सम्भवतः सभा के अधिकारी मुझसे भयभीत थे। वे समझते होंगे कि मेरे न आने से शेष पण्डितों को किसी प्रकार अपने अनुकुल बना लेंगे, परन्तु जहाँ तक मुझे सूचना मिली है, वे इस कार्य में भी सफल न हो सके। अब तीसरी मीटिंग सम्भवतः कभी अन्यत्र हो।

वस्तुतः निर्णय का स्वरूप अत्यन्त स्पष्ट सामने आ जाता है, यदि स्वामी दयानन्द सरस्वती के सत्यार्थप्रकाश के मुद्रण के सम्बन्ध में समर्थदान को लिखे हुए पत्रों को निर्णायक माना जावे। श्री पं0 भगवद्दत्त जी ने ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन छपवाने का जो निर्णय लिया था, वह अभूतपूर्व था। पत्रों और विज्ञापनों में अनेक ऐसे विषय हैं, जिन पर उनके ग्रन्थों और व्याख्यानों आदि से भी प्रकाश नहीं पड़ता। पिछले वर्ष ही ऋषि दयानन्द के एक पत्र पर आर्यपत्रों में विवाद उत्पन्न हुआ था, जिसमें श्री पं0 भवानीलाल भारतीय जैसे विद्वान् भी चक्कर में पड़ गये थे। जब उसका यथोचित समाधान किया गया तो भारतीय जी ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने अपनी भूल स्वीकार करते हुए मेरे समाधान को उचित ठहराया था। अब यद्यपि मेरा स्वास्थ्य ऐसा नहीं कि मैं किसी भी लम्बे विवाद में उलझूँ, परन्तु ऋषि दयानन्द का

जो उपकार मेरे पर है, उसे देखते हुए अधकच्चे आर्यसमाजियों से जब ऋषि दयानन्द के विरुद्ध लिखा हुआ पढ़ता हूँ तो मुझसे सहन नहीं होता। यही कारण है कि आर्यसमाज की गतिविधियों से प्रायः दूर रहते हुए भी मुझे इस प्रकार के झमेलों में पड़ना पड़ता है। यदि अभी ही आर्यसमाज की यह स्थिति है तो आगे चलकर इसका क्या बनेगा, यही विचार मुझे पीड़ा पहुंचाता है।

आशा है कि सत्यार्थप्रकाश के वर्तमान संस्करण को महत्व न देते हुए इस विवाद को जितना कम लम्बा खेचेंगे उतना ही अच्छा होगा। 37वें संस्करण को नष्ट करने की शक्ति तो परोपकारिणी सभा में होगी नहीं, इसलिये इस विवाद को समाप्त कर पूर्व जैसे 36 संस्करण छपे हैं, आगे छपता रहे तो उसमें एक यह संस्करण दब जायगा और आगे का मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।

सत्यार्थप्रकाश का जो 37वाँ संस्करण छपा है, इसके आरम्भ के पृष्ठ तीन बार छपे। जब मैंने इसे प्रथम वार अजमेर में देखा था तब इसमें पं0 विरजानन्द दैवकरणि का कोई वक्तव्य नहीं था। उसके पीछे जो पृष्ठ देखे, उनमें विषयसूची के अन्तिम दो पृष्ठ भूमिका वाले फार्म के साथ छपे हुए थे। जब मैंने देखा कि विषय सूची के अन्तिम दो पृष्ठ प्रथम फार्म के साथ कैसे छप सकते हैं ? छापने में कुछ गड़बड हुई है। तब अन्तिम रूप से छपा जो संस्करण बाजार में आया, उस से पूर्व छपे हुए विषयसूची के दो पृष्ठ अलग कर लिये गये और भूमिका जो 3 से 8 तक छपी है, एक दो पृष्ठ पर कुछ भी नहीं छपा है। यदि कोई पाठक एक–दो पृष्ठ पर छपे लेख को देखना चाहे तो वह कहाँ मिलेगा ? जब आरम्भ के 8–10

पृष्ठों के छपने में ही इतने परिवर्तन हुए तो शेष की कथा कहनी ही व्यर्थ है।

(वेदवाणी, आषाढ़ सम्वत् 2050 वि० से उद्धृत)



5 महर्षि दयानन्द द्वारा सत्यार्थ प्रकाश छपने के लिये प्रेसकापी भेजने का उनके पत्रों में उल्लेख

(ले0–म0म0 युधिष्ठिर जी मीमांसक फरीदाबाद)

सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण से लेकर 36 संस्करण तक प्रायः एक जैसा छपता रहा, परन्तु दो वर्ष पहले 37वाँ संस्करण परोपकारिणी सभा अजमेर ने प्रकाशित किया, वह पूर्व संस्करणों से प्रायः भिन्न है। इसका कारण यह है कि द्वितीय संस्करण , जो ऋषि दयानन्द के जीवन काल में छपना प्रारम्भ हुआ था और उनके निधन तक उसके 364 पृष्ठ छप चुके थे, उसकी ही आवृति उत्तर संस्करणों में प्रायः होती रही।

सत्यार्थप्रकाश द्वितीय संस्करण के लिए जो कापी ऋषि दयानन्द ने लिखवाई, वह ग्रन्थ की रूपरेखा है। इसे आजकल की भाषा में रफकापी कहा जाता है। छपने के लिए जो कापी भेजी गई, वह इसी के आधार पर पुनः ऋषि दयानन्द ने लिखवाई, इसलिए इन दोनों में कहीं–कहीं न्यूनाधिक भेद है। 37वें संस्करण के आरम्भ में सम्पादक का जो वक्तव्य छपा है, उसमें लिखा है कि आज तक किसी ने मूल कापी अर्थात् रफ कापी को देखा ही नहीं, असल में ऋषि दयानन्द की लिखवाई हुई मूल कापी यही है। इसकी प्रतिलिपी करते समय पण्डितों ने अनेक स्थानों पर पाठ न्यूनाधिक कर दिया, अतः यह प्रामाणिक नहीं है। यह विवाद लगभग दो वर्ष से चल रहा है। परोपकारिणी सभा ने दो बार विद्वानों की सभा बुलवा कर इस प्रश्न को हल करने की चेष्टा की, परन्तु सर्वसम्मत कोई निर्णय नहीं हो सका।

हम इस सम्बन्ध में प्रेसकापी से सम्बद्ध ऋषि दयानन्द के द्वारा लिखित पत्रों के उद्धरण दे रहे हैं, जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध है कि प्रामाणिक कापी कौन सी है–

(1) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

........................**आज सत्यार्थप्रकाश के शुद्ध करके 5 पृष्ठ भूमिका के और 32 पृष्ठ प्रथम समुल्लास** के भेजे हैं, पहुंचेंगे।...................भाद्र वदी 1 मङ्गल संवत् 1939।"

–ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ0 609.

(2) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

...................कल तुम्हारे पास **33 पृष्ठ से सत्यार्थप्रकाश** के पत्रे और पारिभाषिक भूमिका सहित.............भेजेंगे।......... संवत् 1939 आश्विन सुदी 3 रवि।"

–ऋ0 द0 स0 के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ0 620।

(3) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

................आज यहाँ से 248 से लेके 278 तक **सत्यार्थप्रकाश**...........भाषा बनाने के लिये भेजे हैं।..........प्रथम **सत्यार्थप्रकाश** के पत्रे 250 तक तुम्हारे पास भेजे थे और तीन पृष्ठ रामसनेही के विषय के पश्चात् धरे हैं।..........और ग्यारह समुल्लास की समाप्ति तक सब पत्रे भेज दिये हैं और इसके अन्त में महाराजे युधिष्ठिर से लेके यशपाल तक आर्यराजाओं की वंशावली पीछे से लिखी है और उसके पृष्ठों के अंक ठीक–ठीक हैं। वैसे ही छाप देना।...............भाद्र वदी 30,संवत् 1940।"

–ऋ0 द0 स0 के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ0 769–770.

(4) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

आर्यराजवंशावली के पत्रे तुमने भेजे, सो पहुंचे। उसी

समय हम सत्यार्थप्रकाश के 12 समुल्लास भेजना चाहते थे। इसलिये हम शोध नहीं सके और तुम इसका जोड़मात्र शोध लेना। जो राजाओं के आयु के वर्ष, मास, दिन हैं, उनको वैसे ही रखना। क्योंकि अन्य पुस्तक से भी हमने इसको मिलाया है, जो कि यहाँ जोधपुर में एक मुंशी के पास था।......272 से लेके 319 तक 12 समुल्लास सत्यार्थप्रकाश का छापने के लिये भेजते हैं।...........मिती आ० वदी 1, सं० 1940।"

—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ० 786—787.

(5) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

..................सत्यार्थप्रकाश जो कि 13 **समुल्लास ईसाइयों के विषय में है**, वह यहाँ से चले पूर्व अथवा मसूदे पंहुचते समय भेज देंगे।.......................मिति आश्विन वदी 8 सोमवार,संवत् 1940।"

—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ० 792.

(6) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

एक भूमिका का पृष्ठ और 320 से लेके 344 तक तौरेत और जबूर का विषय सत्यार्थप्रकाश का भेजते है। ....

मिति आश्विन वदी 13, शनि, संवत् 1940.

—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ० 806, 807.

(7) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

...........थोड़े दिनों के पश्चात् और सत्यार्थप्रकाश के पत्रे शुद्ध करके भेज देंगे।

तुम **सत्यार्थप्रकाश** के छापने का आरम्भ कर दो ।.........भाद्र शुदी 6, सं० 1939."

—ऋ० द० स० के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ० 615.

(8) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

......................5, भूमिका और सत्यार्थप्रकाश के फारम भेजे थे, सो पहुंच गये। ....मि0 मार्ग शुदी 10, मंगल, 1939."

—ऋ0 द0 स0 के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ0 638

(9) "मुंशी समर्थदान जी आनन्दित रहो !

......................तुम हमको यह लिखना कि सत्यार्थप्रकाश के कितने पृष्ठ एक फारम में लगते हैं। सो व्यौरे वार से जब लिख भेजोंगे, तब हम यहां से अनुमान करके लिख देंगे कि सब सत्यार्थप्रकाश के इतने फार्म होंगे।........संवत् 1939 आश्विन सुदी 3 रवि।"

—ऋ0 द0 स0 के पत्र और विज्ञापन, भाग 2, पृ0 620.

वस्तुतः ऊपर जो पृष्ठसंख्या दी गयी है, वह उसी प्रेसकापी की है, जिसके अनुसार 36 बार (प्रथम संस्करण को छोड़कर 35 वार) सत्यार्थप्रकाश परोपकारिणी सभा ने छापा। ऋषि दयानन्द के सत्यार्थप्रकाश की प्रेसकापी भेजने के इन उल्लेखों से स्पष्ट है कि उनके द्वारा भेजी गयी प्रेसकापी ही प्रामाणिक है। उससे पूर्व लिखी रफ कापी प्रामाणिक नहीं। ऋषि दयानन्द के उपर्युक्त पत्रों के उद्धरण के परिप्रेक्ष्य में सत्यार्थप्रकाश के विषय में कोई विवाद ही सम्भव नहीं ।

मेरे विचार में श्री धर्मसिंह कोठारी को दोनों हस्तलिखित कापियां मिलाकर उस सभा के निर्णय के अनुसार पं0 भगवद्दत जी और पं0 ब्रह्मदत जी जिज्ञासु से सलाह करके छापने पर जो श्रेय प्राप्त हुआ है, उसको कम करने के लिये ही यह अप्रासंगिक प्रसङ्ग छेड़ा गया है। परन्तु परोपकारिणी सभा के ये वर्तमान अधिकारी किसी प्रकार कृतकार्य नहीं हो सकते। क्योंकि पूर्व संस्करणों के विषय में ऋषि दयानन्द के पत्रों का

साक्ष्य विद्यमान है, परन्तु इस नए संस्करण के विषय में किसी भी प्रामाणिक व्यक्ति का लेख नहीं मिलता। इस संस्करण के प्रारम्भ में इसकी प्रामांणकता के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह सब कल्पनाप्रसूत है। इसलिये अच्छा यही है कि परोपकारिणी सभा इस संस्करण को वापस लेकर इस सत्यार्थप्रकाश–विषयक विवाद को समाप्त करे, अन्यथा आर्यजनता को और ग्रन्थों के विषय में भी सन्देह होगा। इतना ही नहीं, सत्यार्थप्रकाश के तो केवल दो ही हस्तलेख हैं, परन्तु ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के 6 हस्तलेख हैं। उसमें भी यदि अन्तिम को प्रामाणिक न माना जायेगा, जिसके अनुसार यह ग्रन्थ छपा है, तो कौन से हस्तलेख के विषय में यह कहा जा सकेगा कि अमुक हस्तलेख ऋषि दयानन्द ने स्वयं बोलकर लिखाया है और शेष हस्तलेखों की पण्डितों द्वारा प्रतिलिपी करायी है ?

यद्यपि यह लिखते अच्छा नहीं लगता फिर भी वास्तविकता यह है कि परोपकारिणी सभा के वर्तमान सभासदों को, जिनके द्वारा यह अवाञ्छनीय संस्करण प्रकाशित कराया गया है, ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञान नही है। यह स्वमुख प्रशंसा नहीं है, इसमें पूर्ण सत्यता है कि ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों के सम्बन्ध में जिनको वास्तविक ज्ञान था, वे पं0 भगवद्दत्त और पं0 ब्रह्मदत्त जिज्ञासु इस लोक में नहीं हैं। इनके सम्पर्क में रहने के कारण ही मुझे ऋषि दयानन्द के हस्तलेखों की वास्तविकता का कुछ ज्ञान हुआ तथा 'ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का इतिहास' लिखने की प्रेरणा प्राप्त हुई है। इस ग्रन्थ का संशोधन भी ऋषि दयनन्द के अनन्य भक्त एवं उनके विषय में प्रामाणिक ज्ञान रखने वाले

श्री महेशप्रसाद मौलवी आलिम फाजिल ने किया है । अब कोई मुझे ऐसा विद्वान ज्ञात नहीं कि जो उक्त तीनों विद्वानों के समान ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के हस्तलेखों के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी रखता हो। परोपकारिणी सभा के द्वारा तो इतना भी नहीं हुआ कि 'शिक्षापत्रीध्वान्तिनिवारण' का भाषानुवाद ऋषि दयानन्द रचित मूल संस्कृत से कराती, अपितु उसके प्रथम संस्करण के गुजराती अनुवाद से कराया गया । यह परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित इस ग्रन्थ के मुखपृष्ठ पर छपा है। जब तक परोपकारिणी सभा के मन्त्री हरविलास जी सारडा रहे, उन्होंने ऋषि के ग्रन्थों के वर्तमान संस्करणों में कुछ भी रद्दोबदल नहीं होने दी। यद्यपि इस कठोरता के कारण कुछ उचित संशोधन भी सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में नहीं हो पाये, परन्तु उनका स्वरूप प्रायः सुरक्षित रहा।

(वेदवाणी, आषाढ़ सम्वत् 2050 वि० से उद्धृत)



6. सत्यार्थप्रकाश के सम्पादन के विषय में

(ले0—श्री रामनाथ वेदालकार, वेदमन्दिर, ज्वालापुर)

सत्यार्थप्रकाश का परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 37वाँ संस्करण प्रथम पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादित हुआ है जबकि पूर्व संस्करण द्वितीय पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादित हैं। दोनों सत्यार्थप्रकाशों के प्रथम 11 समुल्लासों का मैंने अक्षरशः मिलान किया है। मिलान करने के अनन्तर मैं निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचा हूँ।

(1) सत्यार्थप्रकाश की द्वितीय पाण्डुलिपि बनाते समय प्रथम पाण्डुलिपि में पदे—पदे संशोधन, परिवर्तन, परिवर्धन किये गये हैं, जिनमें से लगभग 60 प्रतिशत सही दिशा में हुए हैं, अर्थात् साठ प्रतिशत स्थलों में प्रथम पाण्डुलिपि का पाठ शिथिल, अस्पष्ट या असङ्गत है तथा उसकी तुलना में द्वितीय पाण्डुलिपि का पाठ ग्राह्य है। ऐसे स्थलों की संख्या 200 से भी अधिक बैठ सकतीं है। इसलिए प्रथम पाण्डुलिपि के आधार पर सम्पादित 37वें संस्करण को विश्वसनीय एवं अन्तिम स्वीकार नहीं किया जा सकता।

(2) लगभग 15 या 20 प्रतिशत पाठ प्रथम पाण्डुलिपि के ठीक हैं, द्वितीय पाण्डुलिपि में जो परिवर्तन किया गया है, वह शिथिल या असङ्गत है। इनमें ऐसे महत्त्वपूर्ण स्थल भी हैं, जिनके आधार से पूर्व प्रकाशित संस्करणों की विसङ्गतियां दूर की जा सकती हैं।

(3) बहुत से परिवर्तित पाठ ऐसे भी हैं, जिनके विषय में यह कहा जा सकता है कि पूर्वपाठ तथा परिवर्तित पाठ दोनों ही ठीक हैं, यद्यपि प्रयास परिष्कार की दिशा में है।

(4) प्रथम पाण्डुलिपि से द्वितीय पाण्डुलिपि में संशोधन बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से किये गए हैं, जिनमें भाषा तथा विषय की स्पष्टता दोनों पर ध्यान रखा गया है। इनमें शब्दों का आगे–पीछे करना, आवश्यक शब्द बढ़ाना, नये वाक्य जोड़ना, किसी शब्द को हटाकर उसके स्थान पर नया शब्द रखना आदि पाया जाता है।

(5) संशोधनों या परिवर्तनों के प्रायिक औचित्य को देखते हुए अन्तःसाक्ष्य के आधार पर प्रथम पाण्डुलिपि को प्रारम्भिक प्रति तथा द्वितीय पाण्डुलिपि को परिष्कृत प्रति निःसन्देह कहा जा सकता है। प्रथम पाण्डुलिपि की तुलना में द्वितीय पाण्डुलिपि ही अधिक ग्राह्य है।

(6) द्वितीय पाण्डुलिपि एवं उसके आधार से सम्पादित प्रकाशित संस्करणों में भी कई विसंगतियाँ हैं, जिनमें से कुछ प्रथम पाण्डुलिपि से या 37 वें संस्करण से मिलान करके दूर की जा सकती हैं। कुछ विसङ्गतियाँ फिर भी बची रहेंगी, जिनका समाधान सोचना होगा।

मेरा प्रस्ताव

उपर्युक्त निष्कर्षों के आधार पर मेरा सुझाव है कि–

(1) सत्यार्थप्रकाश के किसी पूर्वप्रकाशित अच्छे संस्करण को एवं द्वितीय पाण्डुलिपि को आधारभूत मानकर 37वें संस्करण एवं प्रथम पाण्डुलिपि से मिलान करते हुए पुनः सम्पादन किया जाए। पूर्व संस्करण में जिन स्थलों में पाठ शिथिल, अपरिपक्व अव्यवस्थित या असङ्गत लगें, उन स्थलों का 37वें संस्करण से मिलान करके यदि विसङ्गतियाँ दूर होती हों तो दूर कर ली जाएँ। कई विसङ्गत पाठ 37वें संस्करण के आधार से संशोधित हो सकते हैं।

(2) उसके पश्चात् भी जो विसङ्गतियाँ, अस्पष्टताएँ, भाषा की गड़बड़ी, पतों की अशुद्धियां आदि बचें, उनके समाधान अन्य उपायों से किये जाएँ। अन्य उपाय कोष्ठक में अपेक्षित शब्द देना, टिप्पणी देना, पतों की भूलें स्वयं शुद्ध कर देना, पुनरूक्त पंक्तियों को हटा देना, 'जैसे', 'जो' 'जब' आदि शब्द कहीं अनावश्यक रूप से आ गए हैं तो उन्हें निकाल देना आदि हो सकते हैं।

(3) श्री पं० युधिष्ठिर मीमांसकजी द्वारा सम्पादित संस्करण सत्यार्थप्रकाश के सम्पादन में विशेष सहायक हो सकता है, यद्यपि वह संस्करण भी अन्तिम नहीं है। 37वें संस्करण के आधार से विसङ्गतियाँ दूर कर लेने पर श्री मीमांसकजी के संस्करण की कई टिप्पणियाँ व्यर्थ हो जाती हैं। फिर भी सम्पादन में उस संस्करण की उपयोगिता है।

(4) विराम–चिन्हों के विषय में एक नीति निर्धारित करके सर्वत्र उसी के अनुसार विरामचिन्ह लगाये जाने चाहियें। विराम–चिन्हों के प्रयोग में न अत्याधुनिकता होनी चाहिए, न ही बिल्कुल पिछड़ापन। अत्याधुनिक पद्धति अपनाने पर भाषा के साथ अनुरूपता नहीं रहेगी तथा नियम–रहित, जहाँ चाहे जैसा विराम लगा देने पर वाक्यरचना अव्यवस्थित रहेगी।

(वेदवाणी, आश्विन सम्वत् 2049 वि० से उद्धृत)



